An International Registered Peer Reviewed Bilingual Research Journal

SATRAACHEE

ISSN 2348-8425

सत्राची

शोधांक -2

A UGC-CARE Enlisted
Peer Reviewed Research Journal

Year 11, Issue 27,
Vol 39,
Shodhank - 2
April-June, 2023

Editor
Anand Bihari

Chief Editor
Kamlesh Verma

ISSN : 2348-8425

सत्राची

मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान की पूर्व समीक्षित त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष 11, शोधांक 2, अप्रैल-जून, 2023

प्रधान संपादक
कमलेश वर्मा

संपादक
आनन्द बिहारी

समीक्षा संपादक
आशुतोष पार्थेश्वर, सुचिता वर्मा,
प्रवीन कुमार यादव

सह-संपादक
अर्चना गुप्ता, जयप्रकाश सिंह,
हुस्न आरा

सहायक संपादक
सुशांत कुमार

सलाहकार समिति व समीक्षा मंडल

अनीता राकेश, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, जे.पी.विश्वविद्यालय, छपरा।
मुक्तेश्वर नाथ तिवारी, प्राध्यापक, शांति निकेतन, प.बंगाल।
ब्रज बिहारी पांडेय, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, ओरिएंटल कॉलेज, पटना सिटी।
पुष्पलता कुमारी, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, म.म.कॉ., पटना।
राजू रंजन प्रसाद, असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास, मुजफ्फरपुर।
नीरा चौधुरी, प्राध्यापक, संगीत, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
अरविन्द कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
नीतु चौहान, सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, पटना वीमेन्स कॉलेज, पटना

❑❑❑

SATRAACHEE

SATRAACHEE

Peer Reviewed and Refereed Research Journal

A UGC-CARE Enlisted Journal

मूल्य : ₹ 250

सदस्यता शुल्क :

पंचवार्षिक	:	5,000 रुपए (व्यक्तिगत)
	:	15,000 रुपए (संस्थागत)
आजीवन	:	12,000 रुपए (व्यक्तिगत)
	:	20,000 रुपए (संस्थागत)

बैंक खाते का विवरण :

SATRAACHEE FOUNDATION,
A/c No. 40034072172, IFSC : SBIN0006551,
State Bank of India, Boring Canal Rd.-Rajapool,
East Boring Canal Road, Patna, Bihar, Pin: 800001

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित रचनाओं से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपादन/प्रकाशन : अवैतनिक/अव्यावसायिक

प्रकाशक : सत्राची फाउंडेशन, पटना

संपादकीय संपर्क :

आनन्द बिहारी
कला कुंज, दूसरा तल्ला
बाजार समिति रोड, बहादुरपुर, पटना, पिन : 800016

Website	:	http://satraachee.org.in
E-mail	:	satraachee@gmail.com
Mob.	:	9661792414, 9470738162 (A.Bihari.)
	:	9415256226 (Kamlesh Verma.)

❖❖❖

SATRAACHEE

इस अंक में...

संपादकीय

05 :: शोध की गुणवत्ता... – *आनन्द बिहारी*

शोधालेख

07 :: अविवाहित युवाओं की वैवाहिक अपेक्षाओं का आकलन : एक शोध अध्ययन – *अंशु शुक्ला*

16 :: शैक्षणिक भ्रमण : समस्या तथा संभावनाओं का अंतर्वेशीय विश्लेषण – *संतन कुमार राम*

23 :: युवा सशक्तीकरण : एक समाजशास्त्रीय अधययन – *प्रिया मिश्रा*

26 :: सामाजिक प्रगति का यथार्थ : एक पुनरावलोकन – *सीता पांडेय*
अजीत प्रताप सिंह

33 :: 21वीं सदी के परिप्रेक्ष्य में भारतीय नारी का क्रांतिकारी कदम एवं कामकाजी विषमताओं की पहल – *वालेन्तिना प्रिया*

40 :: शिक्षा के माध्यम से महिलाओं में सशक्तीकरण : एक अधययन – *हसन बानो*
अरुणा कुमारी

46 :: मुस्लिम होने के मायने : सूखा बरगद – *चितरंजन कुमार*

50 :: संजीव की कहानियों में बदलते पारिवारिक मूल्य – – *संदीप कुमार*

55 :: मोटे अनाज के स्वास्थ्य लाभ – *प्रो. (डॉ.) आशा*

61 :: ग्रामीण भारत के नव-निर्माण में क्षेत्रेय ग्रामीण बैंकों की भूमिका – *सर्वेश कुमार सिंह*

65 :: भारतीय जनजातियों का बदलता स्वरूप – *अंजना सिंह*

70 :: बुद्ध की परंपरा के वाहक कबीर – *रीता सिंह*

75 :: ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य में बौद्ध संदर्भ – *अनामिका सिंह*

80 :: खेलों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग : क्रांति की ओर – *सौरभ सिंह*

85 :: पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववादी चिंतन – *अनुभा श्रीवास्तव*

92 :: कुम्भ : भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिचय, प्रयागराज के संदर्भ – *अंजना सिंह*
श्वेता

103 :: वृद्धावस्था की समस्याओं पर आधारित इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास – *मंजुला अशोक बिसनाल*
अमरनाथ प्रजापति

108 :: हिंदी भाषा का आधुनिकीकरण : भाषा और साहित्य में नवीन परिवर्तन – *मिथिलेश कुमार*

❖❖❖

संपादकीय

शोध की गुणवत्ता...

सामाजिक समस्याओं के समाधान और ज्ञान के विस्तार के लिए शोध की आवश्यकता होती है। यदि समस्याओं की सही पहचान कर ली जाए तो समाधान ढूंढना आसान हो जाता है। यह तभी संभव है जब शोध पूरी ईमानदारी और निष्ठा के साथ किया जाए। दुर्भाग्य से भारत में शोधकर्ता निष्ठा और ईमानदारी में पिछड़ गए हैं। शोध कार्य पूरा करने के पीछे इन शोधकर्ताओं का केवल एक ही उद्देश्य होता है और वह है, जल्द से जल्द नौकरी पाना। इस उद्देश्य से किए गए शोध की गुणवत्ता हमेशा संदिग्ध रहती है। जाहिर है कि इस तरह के शोधों में शॉर्टकट तरीके अपनाए जाते हैं, किसी भी चीज के बारे में गहराई से नहीं सोचा जाता। जबकि किसी भी अच्छे शोध के लिए अपार धैर्य और विचारशीलता की जरूरत होती है। इसके बिना उच्च गुणवत्ता वाले शोध की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए सभी शोधकर्ताओं से अपील है कि वे थीसिस तैयार करते समय उसकी उपयोगिता का विशेष ध्यान रखें। शोध को उपयोगी बनाने के लिए कुछ बातें हैं जिन्हें ध्यान में रखना चाहिए। पहली आवश्यकता है धैर्य के साथ निरंतर परिश्रम। जिस क्षेत्र में शोधकर्ता शोध कर रहा है, उस विशिष्ट क्षेत्र में किए गए सभी पूर्व कार्यों का शोधकर्ता द्वारा गहन अध्ययन किया जाना चाहिए। यह शोध कार्य की मूल प्रक्रिया है। शोधकर्ता को यह पता होना चाहिए कि संबंधित क्षेत्र में अब तक कितना काम हुआ है और उन कार्यों का दायरा और सीमाएँ क्या हैं। जिन क्षेत्रों और विषयों पर कम काम हुआ है, उन पर काम करना फायदेमंद हो सकता है और ज्ञान के विस्तार के लिहाज से भी यह एक बड़ी उपलब्धि साबित हो सकती है। सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में सामाजिक सरोकारों से जुड़े शोध की ज्यादा जरूरत है। वर्तमान में पूंजीवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण शिक्षा महंगी होती जा रही है। ऐसे में झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले बच्चों के लिए कम खर्च में शिक्षा का प्रभावी मॉडल क्या हो, उच्च शिक्षण संस्थानों का राजनीतिक दुरुपयोग और शिक्षकों की पेशेवर नैतिकता आदि विषय आज के समय में प्रासंगिक हैं। इन विषयों के विभिन्न पहलुओं को शोध विषय के रूप में चुना जाना चाहिए। आजकल सामाजिक विज्ञान शोध में स्थिति को ज्यों का त्यों बताने का चलन है।

विश्लेषण पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया जाता है। जबकि शोधकर्ता को स्थिति और उससे जुड़ी समस्या का विश्लेषणात्मक चित्र बनाकर उसका संभावित समाधान प्रस्तुत करना चाहिए। ऐसा करने से शोध की उपयोगिता सिद्ध होगी और शोध कार्य का उपयोग समाज की समस्याओं के समाधान में किया जा सकेगा। बीमारी के साथ-साथ संपूर्ण उपचार की भी बात होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, अनेक स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर हम यह बता सकते हैं कि बिहार में शिक्षा का स्तर क्या है। लेकिन, यदि हम कोई समाधान नहीं दे सकते, तो बिहार में शिक्षा की दयनीय स्थिति का वर्णन करने का क्या मतलब है। जाहिर है, हमें इसके कारणों और समाधानों का भी पता लगाना होगा। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि शोधकर्ता को अपने शोध कार्य के सैद्धांतिक पक्ष पर गहरी पकड़ होनी चाहिए। पिछले अंक के संपादकीय में चर्चा की गई थी कि शोध का वास्तविक उद्देश्य इसके सैद्धांतिक पक्ष को समझना और उसे परिष्कृत करना है। यदि आपका शोध संबंधित सिद्धांत को छूने में सक्षम नहीं है, तो आपका शोध स्तरीय नहीं हो सकता, इसलिए शोध के सैद्धांतिक पक्ष पर हमेशा मजबूत पकड़ बनाने का प्रयास करना चाहिए। गुणवत्तापूर्ण और उपयोगी शोध के लिए सामग्री का चयन भी एक महत्वपूर्ण कार्य है। यदि संग्रहित सामग्री स्तरीय नहीं है, तो शोध के निष्कर्ष पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। विश्वसनीय सामग्रियों का उपयोग करके ही हम विश्वसनीय या प्रामाणिक निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। इसलिए सामग्री संग्रह में उपयोग किए जाने वाले उपकरणों और विधियों की गुणवत्ता, विश्वसनीयता और प्रामाणिकता सुनिश्चित की जानी चाहिए। संक्षेप में, यह कहना आवश्यक है कि शोधकर्ता को शोध लेख और रिपोर्ट के बीच अंतर को भी समझना चाहिए। शोध आलेख की मूल संरचना तथ्यों पर आधारित होती है, जिससे हम पूर्व में किए गए शोध के आधार पर कुछ कह सकें, इसीलिए शोध आलेखों में उचित संदर्भ अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। जबकि रिपोर्ट में आप अपने शोध कार्य का विवरण प्रस्तुत करते हैं। इस अंतर को समझे बिना पूर्ववर्ती शोधकर्ता अपने आलेखों को आंकड़ों और आंकड़ों से भर देते हैं, लेकिन उनके पास कहने के लिए तार्किक रूप से कुछ नहीं होता। सत्राची के पिछले अंक की तरह यह अंक भी आकर्षक और संग्रहणीय बन पड़ा है, जिसमें साहित्य और सामाजिक विज्ञान से संबंधित विविध आलेख हैं। आशा है आपको पसंद आएगा।

– आनन्द बिहारी
30.06.2023

अविवाहित युवाओं की वैवाहिक अपेक्षाओं का आकलन : एक शोध अध्ययन

❍ अंशु शुक्ला[1]

संक्षिप्ति

वैवाहिक संबंधों में प्रत्येक साथी दूसरे साथी के प्रति एक पूर्वाग्रह से ग्रसित होता है, यह पूर्वाग्रह उसके आसपास उपस्थित व्यक्तियों के वैवाहिक सम्बन्धों के अनुभवों पर आधारित होता है। विवाह पूर्व ही अपने साथी के प्रति एक धारणा बना ली जाती है कि उसमें कौन-कौन से गुण होने चाहिए। उम्मीदों का ये जखीरा व्यक्ति के पारिवारिक पृष्ठभूमि, मित्रों, और रिश्तेदारों के प्रेक्षित अनुभवों पर आधारित होता है। वर्तमान अध्ययन में शुक्ल वैवाहिक अपेक्षा पैमाने (Shukla Marital Expectation Scale) के प्रयोग से 207 अविवाहित युवाओं के नमूने में उपयुक्त साथी पसंद में प्रभावी भावनाओं की श्रेणियों की जांच की गई है। यह अध्ययन ICSSR से प्रायोजित एक प्रोजेक्ट (P2784)पर आधारित है।

परिचयः

दुनिया के लगभग सभी समाजों में विवाह एक महत्वपूर्ण संस्था है। इसे अधिकांश लोगों के जीवन के सामाजिक ताने-बाने का एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है। जहाँ तक विवाह योग्य यौवन का संबंध है, आरम्भिक युवावस्था वह समय है जब व्यक्ति पहली बार विवाह और वैवाहिक जीवन के लिए अपनी अपेक्षाओं और इच्छाओं को तैयार करना शुरू करते हैं। यह जीवन का बहुत ही अशांत और महत्वपूर्ण विकासात्मक चरण है जब युवा वयस्क स्वयं को जीवनसाथी और माता-पिता होने की स्वस्थ जिम्मेदारी सहित अधिक से अधिक जिम्मेदारियों को निभाने के लिए तैयार कर रहा है। वह अपने भावी जीवन में वैवाहिक संतुष्टि की तलाश करता है। ऐसे कई कारक हैं जो वैवाहिक संतुष्टि में योगदान करते हैं (ब्रैडबरी, फिंचम और बीच, 2000)[1]. भावनात्मक विनियमन (इमोशनल रेगुलेशन) को आम तौर पर सफल पारस्परिक संबंधों के लिए एक महत्वपूर्ण घटक माना जाता है, (ईसेनबर्ग, होफर, और वॉन, 2007)[2]; (अंग्रेजी, जॉन, और ग्रॉस, 2013)[3]; लेवेन्सन, हासे, बलोच, होली, एंड सीडर, प्रेस में; थॉम्पसन, 1991)[4] और सामाजिक संबंधों में संतुष्टि का एक प्रमुख घटक भी है (ग्रॉस, 2002; ग्रॉस एंड जॉन, 2003; जॉन एंड ग्रॉस, 2004; लोप्स एट अल।, 2005)[5-8]। वैवाहिक अंतरंगता में भागीदारों की भावनाएँ रिश्ते के समग्र विकास (ग्रीनबर्ग एंड गोल्डमैन, 2008; जॉनसन एंड ग्रीनबर्ग, 1994)[9-10] और भागीदारों की व्यक्तिगत भलाई (नोलर पी, 2003) दोनों के लिए केंद्रीय महत्व रखती हैं।

1. अंशु शुक्ला, एसोसिएट प्रोफेसर एवं प्रोजेक्ट निदेशक, वसंत कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी।

विवाह के बाद संबंधों की गुणवत्ता या द्वंद्वात्मक समायोजन को मापने का प्रयास करने से अधिक आवश्यक है विवाह पूर्व वैवाहिक जीवन के प्रति धारणा या दृष्टिकोण को मापने की। विडंबना यह है कि कुछ शोध अध्ययनों ने विवाहित जोड़ों में भावना विनियमन की जांच की है लेकिन विवाह पूर्व विवाह के प्रति अभिवृत्ति की जाँच बहुत कम शोधकर्ताओं द्वारा की गई है।

भारत में, विवाह को एक आजीवन साझेदारी माना जाता है जिसे उस आधारशिला के रूप में माना जाता है जिस पर परिवार का निर्माण होता है। मूल रूप से यह जीवन भर साथ रहने के लिए दो लोगों के बीच एक सामाजिक अनुबंध है लेकिन भावनाएँ, परंपराएँ, संस्कृति, धर्म, जाति और समुदाय के दबाव सभी विवाह और परिवार की संस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जाति और संयुक्त परिवार प्रणाली भारतीय समाज में एक प्रमुख भूमिका निभा रही है। विस्तृत मानदंडों और नियमों के माध्यम से भोजन, पोशाक, व्यवसाय, विवाह और जाति समूह के भीतर और बाहर बातचीत सहित जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यक्ति के व्यवहार को विनियमित किया जाता है।

यहाँ विवाह को एक राज्य, एक संगठन, एक धार्मिक प्राधिकरण, एक आदिवासी समूह, एक स्थानीय समुदाय या साथियों द्वारा मान्यता प्राप्त है। भारतीय संस्कृति में विवाह न केवल दो व्यक्तियों के पवित्र मिलन का प्रतीक है, बल्कि दो परिवारों और विस्तारित परिवारों के एक साथ आने का भी प्रतीक है। उनकी भागीदारी का स्तर इतना गहरा है कि आम तौर पर परिवार वर/वधू का फैसला करता है। इस प्रकार के अरेंज मैरिज सख्ती से अंतर-धर्म और अंतर-जाति हैं, कुंडली के आधार पर जोड़ों की अनुकूलता का आकलन किया जाता है और यदि अच्छा है, तो गठबंधन की मांग की जाती है।

लेकिन शहरी क्षेत्रों में, युगल बातचीत करने के लिए एक कदम आगे जाते हैं और देखते हैं कि क्या उनकी रुचियाँ और स्वभाव मेल खाते हैं और यदि गठबंधन दोनों पक्षों के लिए सहमत है, तो वे शादी की योजना बनाने के लिए आगे बढ़ते हैं। विवाह एक बहुत ही नाजुक मसला है जिसमें पारंपरिक दृष्टिकोण और व्यक्तिगत अपेक्षाएँ बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। लोग कई कारणों से शादी करते हैं जिनमें कानूनी, सामाजिक, कामेच्छा, भावनात्मक, वित्तीय, आध्यात्मिक और धार्मिक कारण शामिल हैं, जिनसे एक शादी अनाचार के सामाजिक रूप से निर्धारित नियमों, आदेशात्मक विवाह नियमों, माता-पिता की पसंद और व्यक्तिगत इच्छाओं से प्रभावित हो सकती है।

विवाह मुख्य रूप से तीन उद्देश्यों, यौन जरूरतों को पूरा करने, बच्चों को पालने और महिलाओं की आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए किया जाता है। लेकिन पिछले कुछ दशकों के दौरान, बड़े सामाजिक परिवर्तनों के कारण विवाह की जनसांख्यिकी में बदलाव आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि शहरी क्षेत्रों में युवा अपनी अभिव्यक्ति के लिए और अपने निर्णय स्वयं लेने के लिए अधिक स्वतंत्रता और स्वाधीनता की मांग कर रहे हैं। विवाह के प्रति युवा व्यक्ति के दृष्टिकोण, संबंध आशावाद और संबंध कौशल अधिग्रहण में निस्संदेह कई कारक योगदान कर रहे हैं। इन कारकों में मीडिया, माता-पिता का प्रभाव, एक व्यक्ति के अपने संबंध अनुभव और लिंग शामिल हैं।

लोगों के पास आमतौर पर व्यक्ति के प्रकार के बारे में कुछ पूर्व धारणाएँ होती हैं। एक साथी में जिन गुणों की आमतौर पर सराहना की जाती है, वे हैं पैसा, स्थिति, शैक्षणिक डिग्री बेहतर नौकरी के अवसर या संभावनाएँ और प्रतिष्ठा। लड़के आमतौर पर ऐसी लड़की की ओर आकर्षित होते हैं जिसके पास सुंदरता, यौन प्रतिक्रिया और ऐसे गुण होते हैं जो एक अच्छी गृहिणी बनाती हैं। दूसरी ओर लड़कियाँ मुख्य रूप से सुरक्षा, स्नेह और कोमलता की तलाश करती हैं। हालाँकि, व्यापक शिक्षा और जनसंचार माध्यमों के प्रभाव में, साथी चयन के बारे में रूढ़िवादी अवधारणाएँ बदल गई हैं। आज महिलाएँ परिवार से बाहर काम कर रही हैं और इस प्रकार

अपने पति की आर्थिक प्रदाता की भूमिका को साझा कर रही हैं। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप साझेदारों के बीच स्पष्ट भूमिका अंतर दिखने लगा है। भारतीय समाज पितृसत्तात्मक होने के कारण, महिलाओं के लिए यह प्रथा है कि वे अपने पति का उपनाम अपने साथ जोड़े और शादी के बाद अपने पति और ससुराल वालों के साथ रहें। हालाँकि, बढ़ते शहरीकरण और औद्योगीकरण के साथ संयुक्त परिवार धीरे-धीरे टूट रहे हैं और एकल परिवार की अवधारणा तेजी से लोकप्रिय हो गई है। हमारी परिवार प्रणाली के पारंपरिक मूल्य अभी भी बहुत महत्वपूर्ण हैं और इन्हें आसानी से नहीं छोड़ा जाना चाहिए। हालाँकि, यह अपरिहार्य है कि कुछ पारंपरिक रीति-रिवाज और आदतें समय के साथ परिवर्तित हो जाएँगी। आने वाली पीढ़ियों की जरूरतों और अपेक्षाओं का जवाब देने के लिए पारिवारिक जीवन और इसके सदस्यों के बीच संबंधों के नए मॉडल आवश्यक हैं।

सौभाग्य से, धार्मिक विश्वास और अनुष्ठान अभी भी सामाजिक ताने-बाने का हिस्सा हैं और सख्त नैतिक संहिताओं की छूट पर एक निरोधक शक्ति के रूप में प्रतीत होते हैं। जिस संस्कृति में एक किशोर का पालन-पोषण होता है, उसका उसके विवाह व्यवहार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है।

अब एक किशोर या एक युवा वयस्क के विवाह व्यवहार या वैवाहिक व्यवहार को समझने के लिए हमें इस आयु वर्ग के व्यक्तित्व और विभिन्न विकासों के बारे में ज्ञान होना चाहिए।

जहाँ तक किशोरावस्था का संबंध है, यह जीवन का एक समय है जिसके दौरान व्यक्ति सीखते हैं कि "वे कौन हैं" और वयस्क भूमिकाओं के साथ प्रयोग करना शुरू करते हैं। किशोरावस्था बचपन से स्वतंत्र वयस्कता तक यौन विकास के साथ चिह्नित दस वर्षों की अवधि है। किशोरावस्था शब्द का अर्थ ही 'परिपक्वता की ओर बढ़ना' है। परिपक्वता की ओर बढ़ने में शारीरिक विकास, एक परिपक्व संरचना की प्राप्ति, शारीरिक और मानसिक विशेषताओं की परिपक्वता और द्वितीयक यौन विशेषताओं का विकास शामिल है। वे यौन पहचान के बारे में जागरूकता विकसित कर रहे हैं और यह समझ रहे हैं कि हमारे समाज में पुरुष या महिला होने का क्या मतलब है। इसमें समय लगता है और एक परिपक्व पहचान प्राप्त होने तक अपने अनुभव से सीखना पड़ता है। आमतौर पर किशोरावस्था अपने आप को अपने हमउम्र समूह में डुबो देती है। उनकी सामाजिक दुनिया बढ़ जाती है और वे मूल्यों और दृष्टिकोणों की एक विस्तृत श्रृंखला के बारे में सोचने लगते हैं। मनोविज्ञान के पिता के रूप में जाने जाने वाले फ्रायड ने 'किशोरावस्था' को मनो-कामुकता के जननांग चरण के रूप में माना। इस अवधि के दौरान विपरीत लिंग के सदस्यों के प्रति जागरूकता और भावनाएँ बढ़ जाती हैं और सामाजिक और यौन आचरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

यह कहा गया है कि "किशोरावस्था जीव विज्ञान में शुरू होती है और संस्कृति में समाप्त होती है"।

आत्मगौरव का प्रश्न किशोरावस्था में टिका होता है और यह शारीरिक, संज्ञानात्मक, सामाजिक और भावनात्मक विकास से संबंधित होता है। जीवन की विभिन्न घटनाओं से संबंधित विकल्प आसान नहीं होते हैं और वे अक्सर भावनात्मक उथल-पुथल के कारक होते हैं। किशोरों की दो प्रमुख विशेषताएँ- पहचान और अंतरंगता हैं। माता-पिता के लिए भी ये साल आसान नहीं हैं। किशोर अक्सर उतने ही अनिश्चित और अप्रत्याशित होते हैं जितने पक्षी घोंसले से अपनी पहली उड़ान भरते हैं। उन बंधनों पर झगड़ते हुए जो उन्हें एक पुरानी पीढ़ी से बांधते हैं, वे अक्सर माता और पिता को सहायक से अधिक निरोधात्मक रूप में देखते हैं। हालाँकि, जब युवा किशोर अपने साथियों को स्वतंत्रता के संघर्ष में साथी के रूप में देखते हैं, तब भी वे महत्वपूर्ण मार्गदर्शन और भावनात्मक समर्थन के लिए अपने माता-पिता पर ही निर्भर करते है। पहचान की तलाश एक आजीवन यात्रा है, जो बचपन में शुरू हुई और किशोरावस्था में आगे बढ़ी। जैसा कि एरिक एरिकसन (1950) स्वयं और दुनिया को समझने के लिए इस प्रयास पर जोर देते हैं । जीवन के इस चरण का मुख्य कार्य पहचान बनाम पहचान निष्कर्ष के संघर्ष को हल करना है- जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका के साथ एक अद्वितीय वयस्क

बनना वयस्कावस्था की मुख्या आवश्यकता है। एक पहचान बनाने के लिए अहंकार व्यक्ति की क्षमताओं, जरूरतों और इच्छाओं को व्यवस्थित करता है और उन्हें समाज की मांगों के अनुकूल बनाने में मदद करता है। इस पहचान संकट से उत्पन्न होने वाला मौलिक 'सद्गुण' 'निष्ठा का गुण' है – निरंतर वफादारी, विश्वास या किसी प्रियजन और साथियों के प्रति अपनेपन की भावना। निष्ठा में मूल्यों के एक समूह, एक विचारधारा, एक धर्म, एक राजनीतिक आंदोलन के साथ पहचान करना भी शामिल है। एक रचनात्मक खोज या एक जातीय समूह की आत्म पहचान तब उभरती है जब युवा लोग माता-पिता से पूरे संस्कार स्वीकार करने के बजाय मूल्यों और लोगों के प्रति वफादार होने का चयन करते हैं। निष्ठा विश्वास की व्यापक रूप से विकसित भावना का प्रतिनिधित्व करती है। शैशवावस्था में, दूसरों पर, विशेषकर माता-पिता पर भरोसा करना महत्वपूर्ण था; अब खुद पर भरोसा करना जरूरी है। इसके अलावा, किशोर अब अपने विश्वास को माता-पिता से अन्य लोगों जैसे प्रियजनों में स्थानांतरित कर देते हैं, जो जीवन के माध्यम से उनकी सहायता और मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं। किसी अन्य व्यक्ति के साथ अंतरंग होकर और विचारों और भावनाओं को साझा करके, किशोर अपनी स्वयं की संभावित पहचान बनाते हैं, इसे अपने प्रियजन में परिलक्षित देखते हैं और स्वयं को बेहतर ढंग से स्पष्ट करने में सक्षम होते हैं। किशोर अंतरंगता परिपक्व अंतरंगता से भिन्न होती है, जिसमें प्रतिबद्धता, त्याग और समझौता शामिल होता है। परिपक्व अंतरंगता तब तक नहीं हो सकती जब तक कि किसी व्यक्ति ने एक स्थिर पहचान हासिल नहीं कर ली हो। एक किशोर के जीवन में एक गहरा परिवर्तन केवल समान लिंग के लोगों के साथ घनिष्ठ मित्रता से दूसरे लिंग के सदस्यों के साथ दोस्ती और रोमांटिक जुड़ाव की ओर बढ़ना है।

अपने आप को एक यौन प्राणी के रूप में देखना, अपनी यौन उत्तेजनाओं के साथ समझौता करना और एक घनिष्ठ संबंध विकसित करना यौन पहचान प्राप्त करने के महत्वपूर्ण पहलू हैं। बचपन और किशोरावस्था के दौरान के अनुभव परिवार निर्माण से संबंधित भविष्य के व्यवहार के प्रति अपेक्षाओं और दृष्टिकोण के विकास को प्रभावित करते हैं। किशोरावस्था वह समय है जब युवा व्यक्ति सबसे पहले विवाह के लिए अपनी उम्मीदों और इच्छाओं को तैयार करना शुरू करता है। समाजीकरण का सिद्धांत उस तंत्र को बताता है जो विवाह की अपेक्षाओं और दृष्टिकोणों के विकास में काम करता है। यह सिद्धांत बताता है कि परिवार और समुदाय में विभिन्न समाजीकरण एजेंट बच्चों और किशोरों के विकास को कैसे प्रभावित करते हैं। समाजीकरण का मुख्य कार्य युवाओं को उन मूल्यों, दृष्टिकोणों और व्यवहारों के मानदंडों को उजागर करना या सिखाना है जो उस सामाजिक समूह द्वारा सबसे अधिक मूल्यवान हैं या अपनाए गए हैं जिसमें युवाओं को इन मूल्यों और मानदंडों को शामिल करने वाली वयस्क भूमिकाओं को ग्रहण करने के लिए तैयार किया जाता है। समाजीकरण एजेंटों में परिवारों में माता-पिता और भाई-बहन और सामुदायिक वातावरण में साथियों, पड़ोसियों और संस्थानों को शामिल किया जाता है। समाजीकरण एजेंटों के रूप में, माता-पिता, पड़ोसी, सहपाठी और दोस्त रोल मॉडल के रूप में प्रतीत होते हैं जो भविष्य की भूमिकाओं और जीवन शैली के बारे में किशोरों और युवा वयस्कों की धारणाओं को आकार देते हैं। वे यह मानने की संभावना रखते हैं कि एक पारिवारिक संरचना जिसमें किशोर बड़े होते हैं, उसपे प्राथमिक, समाजीकरण का प्रभाव होता है। किशोरों में प्रचलित परिवार रूप, दोस्तों के बीच सामाजिक वातावरण, स्कूल में और पड़ोस में स्वीकार्य संघ निर्माण के मानदंड भी प्रसारित करते हैं।

जिस संस्कृति में एक किशोर का पालन-पोषण होता है उसका भी उसके विवाह के दृष्टिकोण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है। इन सामाजिक प्रभावों के अनुकूल होने में, किशोर स्वयं को, अपने परिवेश को या दोनों को बदलते हैं। Vaillant (1990) ने कई महत्वपूर्ण बिंदुओं की ओर इशारा किया जैसे कि किशोर पूरी अवधि में बदलते और विकसित होते हैं और उनका जीवन अलग-अलग दर्दनाक घटनाओं से नहीं बल्कि महत्वपूर्ण लोगों के साथ निरंतर संबंधों की गुणवत्ता और परिस्थितियों को अपनाने के लिए उपयोग किए जाने वाले तंत्र

से संबंधित होता है। यह उनके मानसिक स्वास्थ्य का स्तर को प्रभावित करता है। Vaillant (1990) ने चार विशिष्ट तरीकों की पहचान की जिसमें किशोर अनुकूलन करते हैं: (i) परिपक्व, (ii) अपरिपक्व, (iii) विकृत वास्तविकता, (iv) चिंता से मुक्ति। जो किशोर प्रकृति के अनुकूल तंत्र का अधिक उपयोग करते हैं वे कई मायनों में अधिक सफल होंगे। किशोर और युवा वयस्कता की पूरी अवधि के दौरान अंतरंग संबंध स्थापित करने की युवाओं की क्षमता बढ़ जाती है। यह वैवाहिक संबंधों को संभालने में उनकी अक्षमता को प्रभावित कर सकता है। यह जीवन का बहुत अशांत और महत्वपूर्ण विकासात्मक चरण है जब युवा वयस्क खुद को जीवनसाथी और माता-पिता होने की स्वस्थ जिम्मेदारी सहित बड़ी जिम्मेदारियों को निभाने के लिए तैयार कर रहा होता है।

आज के युवा वयस्कों के जीवन के अनुभव पिछले दशकों में युवा वयस्कों से भिन्न हैं। युवा वयस्कता जीवन का एक और विशिष्ट चरण बन गया है। जितने भी युवा परिवार से संबंधित बदलाव को स्थगित करते हैं और शिक्षा और रोजगार पर ध्यान केंद्रित करते हैं। युवा वयस्कता का विकासात्मक चरण आज भी पहचान की खोज की एक विस्तारित अवधि के लिए अनुमति देता है। यह अवधि अब और भविष्य में संबंध और परिवार बनाने की नींव के रूप में कार्य करती है। नि:संदेह विवाह के प्रति युवा वयस्कों के दृष्टिकोण, संबंध आशावाद और संबंध कौशल अधिग्रहण में योगदान देने वाले कई कारक हैं। इन कारकों में मीडिया, माता-पिता का प्रभाव, एक व्यक्ति के अपने संबंधों के अनुभव और लिंग शामिल हैं। यह अन्वेषण, साहसिक कार्य और स्वयं के शरीर, क्षमताओं और संभावनाओं की खोज का समय है। किशोरों के दृष्टिकोण को आकार देने में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार में माता-पिता और वयस्कों को विकास के उन वर्षों के दौरान किशोरों के लिए एक सुरक्षित, सुरक्षित और सहायक वातावरण सुनिश्चित करना चाहिए। किशोरों के साथ बातचीत करने, उनकी शंकाओं पर स्पष्टीकरण और सही जानकारी देने के लिए माता-पिता और परिवार के सदस्यों के बीच एक सकारात्मक और प्रोत्साहित करने वाला रवैया विश्वास और विश्वास के बेहतर संबंध को सुगम बनाएगा। हमारा भारतीय समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा है, पश्चिमीकरण की ओर तेजी से बढ़ रहा है। सबसे कमजोर आबादी हमारा किशोर आयु वर्ग है और इसलिए हमारे सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन हमारे युवा मन के दृष्टिकोण को प्रभावित कर रहे हैं।

जहाँ तक वैवाहिक दृष्टिकोण का संबंध है, कोई व्यक्ति अपने माता-पिता को देखकर या दूसरों को प्रेमालाप और विवाह की प्रक्रिया पर बातचीत करते हुए देखकर व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से वैवाहिक जीवन के बारे में दृष्टिकोण और अपेक्षाएँ बना सकता है। वैवाहिक दृष्टिकोण और अपेक्षाएँ अनुभव द्वारा लाए गए संबंधों के बारे में एक संज्ञानात्मक योजना बनाती हैं। रिश्तों के बारे में दृष्टिकोण और अपेक्षाएँ व्यक्तिगत संबंधों में धारणाओं और व्यवहारों के बारे में महत्वपूर्ण संज्ञान हैं (रिगियो और वीजर, 2008)। अत्यधिक एम्बेडेड सकारात्मक विवाह व्यवहार को प्रभावित कर सकता है और अत्यधिक एम्बेडेड नकारात्मक विवाह दृष्टिकोण भी रिश्तों के बारे में विश्वासों को प्रभावित कर सकता है

रिश्ते की गुणवत्ता या रंगारंग समायोजन को मापने के प्रयास के बजाय वैवाहिक जीवन के प्रति धारणा या दृष्टिकोण को मापने की एक मजबूत आवश्यकता है।

प्रेमालाप के पारंपरिक पैटर्न में स्पष्ट रूप से चित्रित चरण शामिल होते हैं जो विवाह से जुड़ाव तक प्रगति करते हैं। हालाँकि, हाल के वर्षों में यह पैटर्न अधिक जटिल हो गया है। शादी के प्रति युवाओं के नजरिए और व्यवहार में जबरदस्त बदलाव आया है। रूढ़िवादी से उदार यौन व्यवहार में परिवर्तन की प्रक्रिया या विवाह भागीदारों के बीच समानता से संबंधित एक स्वागत योग्य व्यवहार परिवर्तन स्पष्ट रूप से स्पष्ट है। व्यापक शिक्षा और जनसंचार माध्यमों के प्रभाव के कारण, युवा साथी चयन के संबंध में अपना निर्णय लेने के लिए अधिक

स्वतंत्रता और स्वतंत्रता की मांग कर रहे हैं।

वर्तमान अध्ययन में दोनों लिंगों में विवाह योग्य युवाओं की भावनाओं की धारणाओं का आकलन करने के लिए एक विश्लेषणात्मक ढांचे का उपयोग किया गया है। पार्टनर्स की भावनाएँ रिश्ते के कामकाज और पार्टनर की भलाई से जुड़ी होती हैं जो एक अंतरंग रिश्ते में एक मूल्यवान भागीदार के रूप में एक व्यक्ति की पहचान का निर्माण करती है।

कार्य विधि:

नैतिक दृष्टिकोण : यह ICSSR IMPRESS प्रायोजित अनुसंधान मानव प्रयोग (संस्थागत या क्षेत्रीय) पर जिम्मेदार समिति के नैतिक मानकों के अनुसार और 1975 की हेलसिंकी घोषणा के अनुसार आयोजित किया गया था। (http://www.wma.net/e/policy/17-c-e.html)। शोधकर्ता ने शोध क्षेत्र के विश्वविद्यालय के अधिकारियों से पूर्व स्वीकृति ली और इस अध्ययन के प्रत्येक प्रतिभागी ने अपनी लिखावट में सहमति फॉर्म भरा है। परिणाम और चर्चा में प्रत्येक प्रतिभागी की गोपनीयता सुनिश्चित की जाती है।

शोध सरंचना :

प्रतिभागी : वर्तमान अध्ययन के लिए वाराणसी जिले के उच्च शिक्षा संस्थानों से 207 अविवाहित इच्छुक युवाओं का चयन किया गया था। दोनों लिंग (महिला - 120, पुरुष - 87) और 18-21 वर्ष (औसत आयु - 19.30) के बीच के प्रतिभागियों को शामिल किया गया था।

तकनीकी जानकारी : शुक्ल वैवाहिक अपेक्षा पैमाने (ISBN-978-93-84764-30-2) का उपयोग प्रतिभागियों से उनकी भावनात्मक, सामाजिक और व्यक्तिगत अपेक्षाओं के विभिन्न स्तरों का आकलन करने के लिए किया गया था।

परिणाम और चर्चा :

वैवाहिक अपेक्षा को शुक्ल वैवाहिक प्रत्याशा पैमाने का उपयोग करके मापा गया था जिसमें भावी विवाहित जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का आकलन करने के लिए 31 आइटम शामिल हैं। इस पैमाने में कई मदों में समग्र स्कोरिंग किया गया था और प्रत्येक प्रतिक्रिया को 1-5 से लेकर स्कोर मान दिया गया था। 207 उत्तरदाताओं में से, कुल 167 (80.7%) -पुरुष (67) महिला (100) का वैवाहिक अपेक्षा स्कोर औसत था। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि वर्त्तमान परिवेश में विवाह के प्रति युवाओ का दृष्टिकोण औसत है। इस विश्लेषण को उपभागों द्वारा भी समझने का प्रयास किया गया।

सारणी 1: वैवाहिक अपेक्षा अंक

क्रमांक	स्कोर नामकरण	बारम्बारता	प्रतिशत
1.	निम्न वैवाहिक अपेक्षा	26	12.6
2.	मध्यम वैवाहिक अपेक्षा	167	80.7
3.	उच्च वैवाहिक अपेक्षा	14	6.8
		Total - 207	

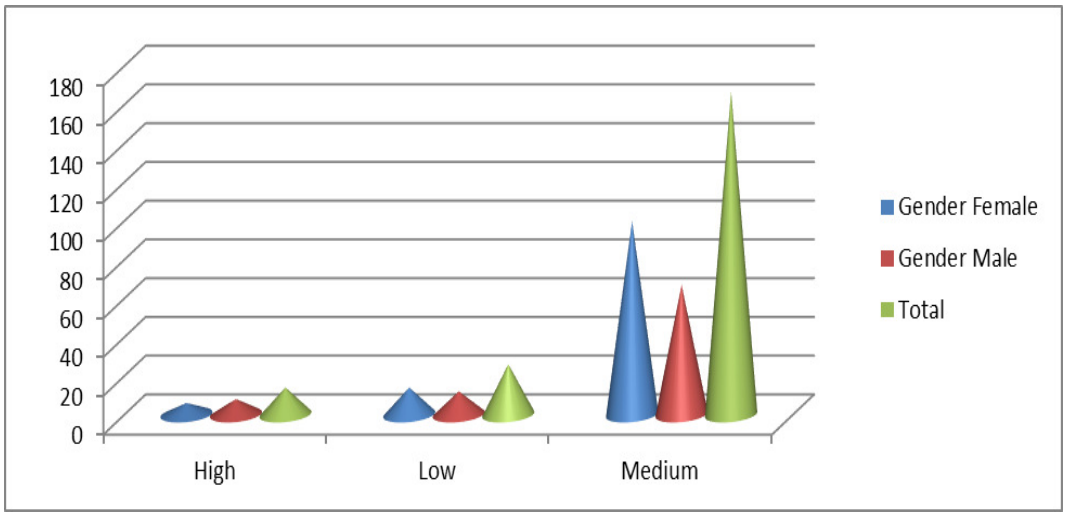

सारणी 2 : भावी वैवाहिक जीवन के क्षेत्र

क्रमांक	क्षेत्र	आइटम नंबर
1.	व्यक्तिगत प्राथमिकताएँ	2, 4, 7, 18, 28, 30, 31
2.	सामाजिक उत्तरदायित्व	15, 16, 22, 23, 26, 29
3.	सामाजिक अपेक्षाएं	3, 9, 10, 11, 12, 14, 21, 24, 25
4.	खुद की भावनाएँ	1, 5, 6, 8, 13, 17, 19, 20, 27

1. व्यक्तिगत प्राथमिकताएँ : युवाओं की कई गुणात्मक रूप से अलग प्राथमिकताएँ होती हैं, जो संभवत: पार्टनर के चयन के संबंध में वास्तविक निर्णय लेने के लिए किसी तरह संयुक्त होती हैं। जीवन साथी चुनते समय ऐसे कई कारक हैं जिन पर व्यक्तिगत आधार पर विचार किया जा सकता है। इस अध्ययन में शिक्षा, रोजगार, धन, शारीरिक बनावट कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिन्हें 5 बिन्दु पैमाने पर मापा गया। सभी व्यक्तिगत वरीयता मदों में शिक्षा, रोजगार और प्रतिबद्धता को लगभग साठ प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था जबकि साथी की शारीरिक उपस्थिति सबसे कम महत्वपूर्ण वस्तुओं में से थी।

2. सामाजिक उत्तरदायित्व : भारत में शादी के बाद ससुराल वालों के साथ रहने की परंपरा हमेशा से रही है। शादी के बाद पति और ससुराल में रहने वाली महिलाओं की प्रथा के पीछे एक मजबूत ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। हालांकि, आधुनिक आकांक्षाएँ हमेशा विभिन्न कारकों जैसे दोहरे करियर वाले परिवारों, स्थान और समय की कमी आदि के कारण परंपराओं से टकराती रही हैं। इस खंड में यह देखा गया कि अधिकांश उत्तरदाता संयुक्त परिवार प्रणाली के पक्ष में नहीं थे; हालाँकि, उनमें से लगभग सभी इस बात पर सहमत हुए कि एक-दूसरे के परिवार के लिए सम्मान बेहद जरूरी है। उन्होंने शादी के बाद परिवार के समर्थन के महत्व पर विचार किया लेकिन बलिदान के लिए लगभग सभी ने तटस्थ रूप से प्रतिक्रिया दी। अधिकतम उत्तरदाताओं ने अपने साथी के बिना ससुराल वालों के साथ अकेले रहने से इनकार किया।

3. सामाजिक अपेक्षाएँ : कुछ सामाजिक अपेक्षाएँ अभी भी पहले की तीव्रता के साथ मौजूद हैं। एक विवाह, सह-निवास, विवाह और धर्म के बाद संतान होना, अविवाहित युवाओं के लिए ये वस्तुएँ अभी भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। जहाँ तक जाति का संबंध है, उत्तरदाताओं के विचार बदल रहे हैं, वे अंतर्जातीय विवाहों को प्राथमिकता दे रहे हैं; हालाँकि, बहुमत एक ही जाति के विवाह के पक्ष में था। शादी के बाद समान श्रम विभाजन के प्रति युवाओं की प्रतिक्रिया एक तरफा नहीं थी; लगभग पैंतालीस प्रतिशत इसे महत्वपूर्ण मान रहे थे जबकि पैंतालीस प्रतिशत इसे महत्वहीन मान रहे थे। बयासी प्रतिशत (82%) घर के कामों को वैवाहिक जीवन के एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में मान्यता देने के पक्ष में थे और मानते थे कि दोनों भागीदारों को इसमें समान रूप से योगदान देना चाहिए।

4. स्वयं की भावनाएँ : विवाह को दुनिया भर के लगभग हर समाज में संचार और अंतरंग जुड़ाव का सबसे महत्वपूर्ण और बुनियादी रूप माना जाता है। प्यार, खुशी, सेक्स, अंतरंगता, निष्ठा, भावनात्मक बंधन सभी सुखी वैवाहिक जीवन के लिए आवश्यक तत्व हैं और यह इस अध्ययन के दौरान 207 युवाओं की प्रतिक्रियाओं में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी उन सभी के लिए बहुत महत्वपूर्ण है जबकि वैवाहिक संबंधों में किसी भी साथी के प्रभुत्व को लगभग सभी उत्तरदाताओं द्वारा महत्वहीन माना गया।

निष्कर्ष : विवाह एक जीवित इकाई की तरह है, जो लगातार बदलती रहती है और विकास की आवश्यकता होती है। कोई भी विवाह दो परिवारों का मिलन होता है, न कि केवल दो व्यक्तियों का। यह परिवार से परंपराओं और अपेक्षाओं का विलय है। एक बार जब एक व्यक्ति की शादी हो जाती है, तो वे एक 'व्यक्तिगत' होने के बजाय सामाजिक दायित्वों के आधार पर एक व्यक्ति बन जाते हैं जो विवाह बनाता है। उनके लिए शादी अलग-अलग भावनाओं से जुड़ा एक बंधन मात्र है। किसी भी शादी की सफलता के लिए पार्टनर के लिए एक-दूसरे की भावनाओं और अपेक्षाओं के बारे में जागरूक होना बेहद जरूरी है। पार्टनर की उम्मीदों की अच्छी समझ होने से कपल का रिश्ता मजबूत हो सकता है। यह एक जोड़े को एक-दूसरे की पारिवारिक विरासत को समझने में भी मदद कर सकता है।

इस ICSSR IMPRESS द्वारा प्रायोजित अध्ययन में वाराणसी जिले के विभिन्न विश्वविद्यालयों के 207 अविवाहित इच्छुक युवाओं से शादी के संबंध में विभिन्न भावनाओं का परीक्षण पांच सूत्री पैमाने पर किया गया था। परिणाम स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि हमारी युवा पीढ़ी हमारी अच्छी पारंपरिक भावनाओं को कसकर पकड़ रही है जबकि विवाह से जुड़ी नकारात्मक भावनाओं को उनके द्वारा लगातार चुनौती दी रही है।

सन्दर्भ :

1. Bradbury TN, Fincham FD, Beach SRH. Research on the nature and determinants of marital satisfaction: A decade in review. Journal of Marriage and the Family. 2000; 62:964–980.
2. Eisenberg N, Hofer C, Vaughan J. Effortful control and its socio emotional consequences. In: Gross JJ, editor. Handbook of emotion regulation. New York: Guilford Press; 2007. pp. 287–306. 2007.
3. English T, John OP, Gross JJ. Emotion regulation in relationships. In: Simpson JA, Campbell L, editors. Handbook of close relationships. Oxford, UK: Oxford University Press; 2013. pp. 500–513.
4. Thompson RA. Emotional regulation and emotional development. Educational Psychology Review. 1991; 3:269–307.
5. Gross JJ. Emotion regulation: Affective, cognitive, and social consequences.

Psychophysiology. 2002; 39:281–291.
6. Gross JJ, John OP. Individual differences in two emotion regulation processes: Implications for affect, relationships, and well-being. Journal of Personality and Social Psychology. 2003;85:348–362.
7. John OP, Gross JJ. Healthy and unhealthy emotion regulation: Personality processes, individual differences, and lifespan development. Journal of Personality. 2004;72:1301–1334.
8. Lopes PN, Salovey P, Cote S, Beers M. Emotion regulation abilities and the quality of social interaction. Emotion. 2005; 5:113–118.
9. Greenberg, L. S., & Goldman, R. N. (2008). Emotion-focused couples therapy: The dynamics of emotion, love, and power. American Psychological Association.
10. Greenberg LS, Johnson SM. Emotionally Focused Therapy for Couples. New York: Guilford Press; 2008.
11. Noller P. Gender and emotional communication in marriage: Different cultures or differnetial social power? Journal of Language and Social Psychology. 2003; 12:132–152.
12. Levenson RW, Haase CM, Bloch L, Holley SR, Seider BJ. Emotion regulation in couples. In: Gross JJ, editor. Handbook of Emotion Regulation. 2nd ed. Guilford;
13. Shukla, A., Deodiya, S. and Singh, T., 2016. Shukla Comprehensive Marital Expectation Scale (SCMES). Research journal of recent sciences, 5(12), pp.31-33.

❖❖❖

शैक्षणिक भ्रमण : समस्या तथा संभावनाओं का अंतर्वेशीय विश्लेषण

❍ संतन कुमार राम[1]

संक्षिप्ति

पर्यटन मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में से एक है। मनुष्य भोजन, सुरक्षा, व्यवसाय आदि हेतु एक स्थान से दूसरे गंतव्य तक गतिशील रहता है। मानव सभ्यताओं के विकास तथा तकनीक के प्रसार में उसके जिज्ञासु प्रवृत्ति तथा गतिशील कदमों का महत्वपूर्ण योगदान है। आधुनिक समय में चिकित्सा पर्यटन के साथ-साथ मनोरंजन हेतु पर्यटन का तेजी से विकास हुआ है। इसके साथ ही भारत में शिक्षा से जुड़े संस्थानों ने शैक्षणिक पर्यटन के प्रति अपना रुझान बढ़ाया है जिसके कारण छोटे बच्चों के स्कूलों से लेकर प्रोफेशनल कोर्स चलाने वाले उच्च संस्थानों तक ने अपने विद्यार्थियों हेतु शैक्षणिक पर्यटन को पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया है। इस शोध पत्र में गाजीपुर जनपद में अवस्थित शैक्षणिक संस्थानों के भ्रमण के संदर्भ में विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। जिस हेतु क्षेत्र के राजकीय तथा अनुदानित महाविद्यालयों से आँकड़े एकत्रित कर उनका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया।

बीज शब्द : शैक्षणिक पर्यटन, उच्च शिक्षण संस्थान, मानव सभ्यता

मानव प्रजाति का इतिहास घुमक्कड़ी का इतिहास है, यद्यपि सभ्यता के सबसे उल्लेखनीय अवशेष स्थाई बसे हुए क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं, पर मानव स्वभावत: एक भ्रमणशील प्राणी रहा है। स्वयं मानव जाति का इतिहास और मानव प्रजाति का विकास क्रम इसकी पुष्टि करता है। आस्ट्रेलोपिथेकस-निएंडरथल से लेकर क्रोमैग्नन-होमो सेपियंस तक यायावरी परंपरा के लक्षण मौजूद हैं। प्रारंभिक मनुष्य भोजन-जल-सुरक्षा के लिए, तो आधुनिक मनुष्य शिक्षा-चिकित्सा-व्यवसाय के लिए प्रव्रजन करता रहा है। मूलभूत तथा उच्चतर आवश्यकताओं के अतिरिक्त भी मानव जिज्ञासावश या मनोरंजन हेतु स्थान परिवर्तन करता है। चूँकि ज्ञान प्राप्त करने की विधियों में अनुभवजनित ज्ञान को सर्वोत्कृष्ट माना जाता है, इसलिए भ्रमण/पर्यटन नव भौगोलिक ज्ञान, संस्कृति तथा जीवन पद्धति से साक्षात्कार का अवसर प्रदान करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा के अति उत्कृष्ट ग्रंथ-वेद आरण्यक, उपनिषद, रामायण, महाभारत, त्रिपिटिक अपने भीतर व्यापक भौगोलिक ज्ञान तथा क्षेत्र विस्तार को समेटे हुए है। अत: इनके रचनाकारों के स्थानबद्ध होकर रहने/लिखने की संभावना बहुत कम है। तभी तो तीर्थ परंपरा में

1. असिस्टेन्ट प्रोफेसर-भूगोल, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर, उ.प्र.।

राष्ट्रीय एकता के तत्व प्राचीन काल में ही विद्यमान दिखते हैं।

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नमर्दे सिंधु कावेरी जले अस्मिन सन्निधिम कुरू।।

भारत में बुद्ध, शंकराचार्य, नानक के अत्यधिक भ्रमणशील होने के प्रमाण उपलब्ध हैं। धार्मिक पर्यटन का ही प्रभाव है कि बौद्ध धर्म मंगोलिया से लेकर बाली तक फैल सका। हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान में भी शंकराचार्य के गतिमान चरणों का ही योगदान है। अपनी गतिशीलता के कारण ही ईसाईयत और ईस्लाम मध्य पश्चिम एशिया की मरूभूमि से निकल हर तरफ विस्तारित हो सके है। दुनिया के आकार को फैलाने का श्रेय भी पर्यटन/ भौगोलिक खोजों के इतिहास को ही है, जब कोलंबस, वास्कोडिगामा, मैगेलेन, कैप्टन कुक जैसे साहसिक नाविकों ने समुद्रों का सीना चीर नई दुनियाँ खोज निकाली। प्राचीन समय में हेरोडोटस, हिकेटियस, थेल्स, अरस्तू, प्लेटो के विविधता पूर्ण ज्ञान का स्रोत उनका विचरणशील होना था। मध्यकाल में मार्कोपोलो अल-इदरिसी, इब्न-बतूता, अल-मसूदी, इब्न-सीना, अल-बिरूनी ने ज्ञान के विकास में जो योगदान दिया है उसका प्रमुख कारण इसकी यात्राएँ रही हैं। एलेक्जेण्डर वॉन हम्बोल्ट, पीटर क्रोपोट्निक, रेकलेस, ग्रिफिथ टेलर जैसे विद्वानों ने भूगोल की जो सेवा की उसमें उनकी यात्राओं का महत्वपूर्ण योगदान है। हम्बोल्ट महोदय तो दक्षिणी अमेरिका की यात्रा के बाद ही वनस्पति विज्ञान से भूगोलवेत्ता के रूप में रूपांतरित हुए।[1] प्रिंस पीटर क्रोपोटिनक के साईबेरिया प्रवास ने ही उन्हे उग्र भूगोलवेत्ता बनाया।[2] रिचयोफेन चीन के अध्ययन के उपरांत मजे हुए विद्वान हुए। ग्रिफिथ टेलर महोदय प्रव्रजन संबंधी नीतियों को ब्रिटेन-आस्ट्रेलिया-अमेरिका प्रवास से ही व्याख्यायित कर सके।

शैक्षणिक भ्रमण का इतिहास :

अठारहवीं सदी में जब भूगोल इतिहास से अलग अस्तित्व ग्रहण कर रहा था। तब इसकी विषयवस्तु के निर्धारण के संबंध में बर्नहार्ड वारेनियस, इमैनुअल काण्ट से लेकर कार्ल रिटर और विडाल डि ला ब्लाश तक प्रयास कर रहे थे। चाहे क्रमबद्ध उपागम हो या प्रादेशिक उपागम, क्षेत्र अध्ययन तथा मानचित्रण को सदैव केन्द्रीय स्थिति प्राप्त रही। भारत में जब यूरोपीय पद्धति के शिक्षा संस्थान स्थापित हुए तो शैक्षणिक अध्ययन को भूगोल, इतिहास, वनस्पतिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, शिक्षाशास्त्र आदि विषयों में औपचारिक रूप से सम्मिलित किया गया। यह भी ध्यातव्य है कि प्राचीपन भारत के विश्वविद्यालय (तक्षशिला, नालंदा, वल्लगी विक्रमशीला, ओदन्तपुरी, जगदला इत्यादि) अपने यहाँ विद्यार्थियों को व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने हेतु उन्हें युद्ध, यज्ञ, राजदरबार, वन इत्यादि में भ्रमण-सहभागी होने भेजा करते थे। आयुर्वेदाचार्य चरक की प्रसिद्ध कहानी से यह ज्ञात होता है कि शिक्षा तभी पूर्ण मानी जाती थी, जब क्षेत्र अध्ययन कर अपनी आख्या गुरुकुल/ आश्रम में प्रस्तुत की जाती थी।[3]

शैक्षणिक पर्यटन में मौजूद लैंगिक असमानता :

आजादी के उपरान्त शिक्षा को लैंगिक समानता के उपकरण के रूप में प्रयोग करने की नीति हमारे भारत को दूरदर्शी पथप्रदशकों ने प्रस्तुत की। यद्यपि अतीत में मैत्रेयी, विश्वंभरा, अपाला, गार्गी, लोपामुद्रा के उदाहरण भारतीय इतिहास में विद्यमान हैं पर इन्हें अपवाद ही समझा जाना चाहिए, क्योंकि आश्रम पद्धति में जिस प्रकार बालकों हेतु गुरुकुल उपलब्ध होने के प्रमाण हैं, वैसे प्रमाण बालिकाओं/ स्त्रियों हेतु नहीं मिलते हैं। विहार ज्ञान परंपरा[4] भी स्त्रियों की सक्रिय तथा प्रभावी सहभागिता के उदाहरण कम ही हैं। मध्यकाल में मख्तब और मदरसा पद्धति में भी लड़कियों के शिक्षा के अवसर अत्यंत सीमित थे। औपनिवेशिक काल में सम्पन्न वर्गों तक शिक्षा का प्रसार हुआ जो ट्रिकल डाडन प्रभाव[5] के रूप में स्वतंत्रता के उपरान्त भाग जनता के लिए आजादी के बाद दिखाई पड़ता है। स्त्री शिक्षा लैंगिक समानता तथा सामाजिक सशक्तीकरण का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण है। जिस समाज में स्त्री शिक्षा के अनुपात (औसत) जितना उच्चतर होगा, वहाँ विकास तथा समावेशीकरण की प्रक्रिया

उतनी बेहतर ढंग से प्रतिलक्षित होगी। भारत में शिक्षा के दरवाजे आम जनता के लिए आधुनिक शिक्षा प्रणाली की नींव पड़ने के बाद ईसाई मिशनरियों द्वारा खोले गये। भारतीय पुनर्जागरण के नायक ज्योतिबा राव फुले तथा संविधान सभा के प्रमुख आदिवासी सदस्य जयपाल सिंह मुण्डा इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, जिन्हे स्कॉटिश तथा ब्रिटिश मिशनरियों द्वारा शिक्षित किया गया। आजादी के उपरान्त शिक्षा (विशेषकर स्त्री शिक्षा) में उल्लेखनीय प्रगति हुई। निम्न आँकड़े इस बात की पुष्टि करते हैं-

सारणी: 1 शिक्षा का प्रादेशिक स्वरूप

1901	साक्षरता दर	
	पु.	म.
मद्रास	11.9	1.1
बाम्बे	11.6	0.9
बंगाल	10.4	0.5
बेरार	8.5	0.3
असम	6.7	0.4
पंजाब	6.4	0.3
संयुक्त प्रांत	5.7	0.2
मध्य प्रांत	5.4	0.2

20वीं सदी की शुरुआत में जो प्रादेशिक असमानता स्त्री शिक्षा के संबंध में उपरोक्त सारणी में दिखाई पड़ रही है, यह प्रतिरूप अब भी उत्तर और दक्षिणी राज्यों में विद्यमान है। भारत के राज्यों ने साक्षरता दर के मामले में उल्लेखनीय प्रगति की है। केरल 93% बिहार 63.82% प्रतिनिधि उदाहरण है। 1881 से 2011 तक के आँकड़े ये बता रहे हैं कि 187% कि वृद्धि स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में हुई। आजादी के समय पुरुष और स्त्री असमानता लगभग 20% के अंतर पर थी जो 2011 में घटकर 13% के आँकड़े में सिमट गयी है। 2021 की जनगणना में ये फासला घटकर ईकाई के अंकों में आ जाने की उम्मीद है।

सारणी : 1 शिक्षा का लैगिंक स्वरूप

वर्ष	पुरुष %	महिला %	कुल
1872	–	–	3.25
1891	8.4	0.42	4.62
1911	10.6	1.00	5.9
1931	15.6	2.9	9.5
1951	27.16	8.16	18.33
1971	45.96	21.97	34.45
1991	64.13	39.29	52.21
2001	75.26	53.67	64.83
2021 अनुमानित	92.00	87.00	78.00

शिक्षा का यह बदलाव वस्तुनिष्ठ आँकडों के द्वारा जितना लुभावना लगता है, वास्तव में उतना है नहीं। खासतौर पर BIMARU[6] राज्यों हेतु हिन्दी बोलने वाले राज्यों में लड़कीयों की पढाई के प्रमुख उद्देश्यों में उन्हें विवाह योग्य वधू के रूप में रूपान्तरित करना शामिल है। है। उ.प्र., बिहार, म.प्र., राजस्थान, आंध्र प्रदेश में भारत की 60% निरक्षर लोग निवास करते है। रोजगार तथा स्वावलंम्बन अब भी अल्प जनसंख्या के मानस में अपना स्थान बना सका है। फ्रांसीसी नारीवादी चिंतक सिमोन का कथन "औरत पैदा नही होती, बनती है।"[7] का मूर्त रूप परंपरागत रूप से भारतीय समाज में प्रत्यक्षत: दिखाई पड़ता है। इन सबके बावजूद लड़कियों के सकल नामांकन दर में वृद्धि हो रही है।[8] इस नामांकन में वृद्धि का सुपरिणाम यह हुआ है कि उच्च शिक्षा संस्थानों में लैंगिक असमानता की खाई भर रही है। जो संस्थान पहले गिनी-चुनी लड़कियों को प्रवेश देते थे, अब बड़ी तादाद में छात्राओं की आवक से अपने स्वरूप तथा व्यवहार को बदलने के लिए उद्धत हो रहे हैं। लड़कियों हेतु अलग शौचालय, कॉमन रूम तथा चैजिंग रूम जैसी आवश्यकताएँ अब संस्थानों का जरूरी हिस्सा है। संस्थानों में सेनेटरी नैपकिंग की वेंडिंग मशीनें तथा इंसीनेटर अब सामान्य सुविधाओं के अंतगर्त सम्मिलित की जा रही है। इसी क्रम में ग्रामीण परिवेश में स्थित संस्थनों हेतु छात्राओं का शैक्षणिक भ्रमण एक अनिवार्यता/ चुनौती बनकर सम्मुख खड़ी है।

शिक्षा को ज्यादा व्यावहारिक तथा जीवंत बनाने हेतु शैक्षणिक भ्रमण पाठ्यक्रमों में स्कूल से लेकर विश्वविद्यालयों तक सम्मिलित किया गया है। विशेषकर भूगोल विषय के स्नातक तथा स्नातकोत्तर की पाठचर्या में इसका अनिवार्य रूप स्थान रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों के महिलाओं शैक्षणिक पर्यटन में महिलाओं की सहभागिता का एक अनुभवजन्य विश्लेषण है।

विधितंत्र तथा अध्ययन क्षेत्र :

अध्ययन हेतु गाजीपुर जनपद को पहुँच तथा व्यय को ध्यान में रखकर चुना गया है। यह जनपद पूर्वी उत्तर प्रदेश के अंतिम छोर पर अवस्थित है। इसका अक्षांशीय विस्तार 15 डिग्री 19 मिनट उत्तर से 15 डिग्री 54 मिनट उत्तर तक तथा देशांतरीय विस्तार 83 डिग्री 4 मिनट पूर्व से 83 डिग्री 58 मिनट तक है, जिससे कुल 3377 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल का निर्माण होता है। इस जनपद को प्रशासनिक आधार पर 7 तहसीलों तथा 16 विकास खंडों में विभाजित किया गया है। मूल योजना गाजीपुर जनपद के राजकीय, सरकारी सहायता प्राप्त तथा स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में भौगोलिक भ्रमण के दौरान विद्यार्थियों के व्यवहार तथा समस्याओं का अध्ययन करना था। पर प्राइवेट महाविद्यालयों में नियमित रूप से कक्षाएँ न चलने, शिक्षकों के निरंतर बदलते रहने तथा अभिलेखों के रख-रखाव की समुचित व्यवस्था न हो पाने के कारण, वहाँ से आँकड़े प्राप्त करना संभव नहीं हो सका। जनपद में 326 महाविद्यालयों वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विवि, जौनपुर से संबद्ध है। जिनमें 03 राजकीय महाविद्यालय, 09 सहायता प्राप्त महाविद्यालय (Aided College) तथा शेष 314 प्राइवेट महाविद्यालय हैं। समस्त राजकीय तथा एडेड कालेजों में भूगोल स्नातक की पढ़ाई होती है। स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई हिन्दू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जमॉनियाँ, महंत रामाश्रय दास, स्वा. महावि. भुड़कुड़ा, समता पी.जी. कालेज, सादात, पी.जी. कालेज, गाजीपुर, स्वामी सहजानंद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर, मलिकपुरा पी. जी. कॉलेज, मलिकपुरा में होती है। आँकड़े एकत्रित करने हेतु क्षेत्र में स्थित स्वामी हिन्दू पी.जी. कॉलेज, जनपद रा.म. स्वा तथा ग्रामीण क्षेत्र में स्थित में पी.जी. कॉलेज मलिकपुरा को चुना गया जिससे ग्रामीण तथा नगरीय प्रवृत्तियों को समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके। अध्ययन हेतु विगत दस वर्ष 2011 से 2021 तक के आँकड़े लिए गए हैं। विद्यार्थियों तथा प्राध्यापकों से शैक्षणिक पर्यटन की समस्याओं के संबंध में आँकड़े एकत्रित किए गये हैं।

आँकड़े तथा विश्लेषण :

विश्वविद्यालय में उ.प्र. शासन द्वारा निर्धारण समान पाठ्यक्रम के अंतगर्त स्नातक तृतीय वर्ष तथा स्नातकोत्तर प्रथम वर्ष में भौगोलिक क्षेत्र अध्ययन का प्रावधान है। स्नातक स्तर पर 30/100 अंक तथा स्नातकोत्तर स्तर पर 15 अंक/50 निर्धारित है, जिस हेतु शैक्षणिक भ्रमण कर रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है। अध्ययन क्षेत्र में स्थित पी. जी. कालेज, गाजीपुर में 3200 के लगभग छात्र इस विषय का चुनाव करते है। तृतीय वर्ष में औसत रूप से 700 छात्र नामांकित होते है। दी.द.उपा.रा.म. महाविद्यालय, सैदपुर में अजीबों-गरीब परिस्थिती में भूगोल का अध्ययन किया जा रहा है। इस महाविद्यालय में विषय की मान्यता तो शासन द्वारा प्राप्त है, इसकी संबद्धता भी वि.वि. द्वारा मिली हुई है, पर यहाँ भूगोल प्राध्यापक के पद का सृजन ही नही हुआ है। इसी तरह मा.गां. शती स्मारक महाविद्यालय, गाजीपुर तथा खरडीहा डिग्री कॉलेज, खरडीहा, मुहम्मदाबाद में में नियमित भूगोल प्राध्यापक का पद विगत क्रमशः 15 तथा 17 वर्षो से खाली है।

सारणी-3 भूगोल विषय में छात्र संख्या : स्नातक तृतीय तथा स्नातकोत्तर प्रथम वर्ष

महाविद्यालय	2011–12		2013–14		2015–16		2017–18		2019–20	
	स्नातक	परा–स्नातक	स्नातक	परा–स्नातक	स्नातक	परा–स्नातक	स्नातक	परा–स्नातक	स्नातक	परा–स्नातक
रा0महि0 स्ना. महा0, गाजीपुर	39	–	88	–	130	–	67	–	60	–
हिन्दू पी0जी0 कालेज, जमॉनिया	225	47	207	47	215	47	155	47	165	47
पी0जी0 कालेज, मलिकपुरा	188	35	192	35	195	35	144	35	152	35

भौगोलिक अध्ययन हेतु जाने वाले टीम लीडर्स (प्राध्यापकों) ने बताया कि क्षेत्र अध्ययन पर सभी छात्र नहीं जा पाते हैं, क्योंकि इसका व्यय उन्हें स्वयं उठाना पड़ता है। क्षेत्र में गरीबी की व्यापकता को देखते हुए 1000 से 5000 के मध्य अतिरिक्त फीस अनेक अभिभावकों के लिए दु:साध्य है। 2016 में की गई नोटबंदी तथा 2020 में लागू किए कोविड-19 लाकडाउन का प्रभाव शैक्षिक पर्यटन पर दिखाई पड़ता है। 2021 में यू. जी.सी. द्वारा शैक्षणिक भ्रमण पर रोक लगाने के कारण किसी संस्थान में शैक्षिक पर्यटन संभव नही हो सका। एकत्रित आँकडों से यह तथ्य भी प्रकाश में आया कि सह शिक्षण संस्थानों मे अभिभावक लड़के-लड़कियों के एक साथ जाने नहीं देते, जिसके कारण छात्राओं की संख्या स्नातक स्तर पर बहुत कम जबकि स्नातकोत्तर स्तर पर अभिभावकों में अपेक्षाकृत ज्यादा सहमति प्रदान की है। मलिकपुरा पी.जी. कॉलेज के ग्रमीण परिवेश में छात्राओं को अभिभावकों द्वारा अनुमति ही नहीं मिल पाती। प्राध्यापक गण भी उनकी सुरक्षा तथा सुविधा के लिहाज से उन्हें ले जाने हेतु रुचि नहीं दिखाते है। शैक्षणिक भ्रमण पर जाने वाली छात्राओं की सामाजिक धार्मिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि निर्णायक कारकों में से एक है। ज्यादातर मुस्लिम छात्राओं को बेहद कठिनाई से अनुमति मिल पाती है।

अनुसूचित जाति वर्ग के ज्यादातर विद्यार्थी अतिरिक्त फीस की वजह से भ्रमण से दूर रहे। भौगोलिक अध्ययन पर जाने वाली लड़कियों ने टूर के दौरान पीरियड तथा थकान को सबसे बड़ी समस्या के रूप में बताया। विद्यार्थियों ने उत्तर भारत में ट्रेन में मनचलों के मंडराने तथा असहज बर्ताव को भी रेखांकित किया। दक्षिण भारत / उड़ीसा के अध्ययन पर जाने वाले विद्यार्थियों ने भोजन को लेकर अपनी असुविधा प्रकट की। रा.म. गाजीपुर

की छात्राओं ने 2018 में अंबाला स्टेशन पर ट्रेन के कैसिल होने को असाधारण रूप से याद किया तथा तत्कालीन रेल राज्यमंत्री श्री मनोज सिन्हा द्वारा वैकल्पिक व्यवस्था करने को अविस्मरणीय तथा रोमांचकारी अनुभव बताया। भौगोलिक भ्रमण हेतु निकले विद्यार्थियों में से अधिकांश ने रिजर्वेशन द्वारा यात्रा तथा होटल/ धर्मशाला में रूकने को अपना पहला अनुभव भी स्वीकार किया है।

उपसंहार तथा अनुशंसाएँ :

वैश्विक समाज में विभिन्न संस्कृतियों के भूगोल से परिचित होने के अनेक साधन आज तकनीक द्वारा उपलब्ध कराये गये हैं, जिनमें फिल्म, डाक्यूमेंट्री, 3डी एनिमेटेड भ्रमण, ब्लाग, ट्रेवेलॉग तथा पुस्तकें शामिल है। परन्तु भौतिक रूप से प्राकृतिक परिवेश तथा सांस्कृतिक-आर्थिक भूदृश्यों से परिचित होना अपने आप में विशिष्ट अनुभव है। कोहेन (1972) वे पर्यटन को चार स्तरीय वर्गीकरण के रूप में **A** संस्थागत, **B** गैर-संस्थागत, **c** वृहद समूह तथा **D** व्यक्तिगत प्रस्तुत किया। संस्थागत से आशय पूर्व नियोजन तथा निर्धारित पर्यटन से है, जबकि गैर संस्थागत आकिस्मक तथा बगैर पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के होता है। वृहद समूह द्वारा पर्यटन धार्मिक तथा मनोरंजन के ध्येय से किया जाता है। व्यक्तिगत पर्यटन निजी उद्देश्यों तथा आकांक्षाओं के अनुरूप किया जाता है। शैक्षिक भ्रमण हेतु यू.जी.सी. द्वारा पूर्व में अनुदान तथा सहायता प्राप्त होती थी, यह योजना 2017 के उपरान्त बंद कर दी गई है। जिससे बड़े संस्थान कुछ अनुदान की व्यवस्था कर लेते है परन्तु सुदूर छोटे संस्था इस तरह की कोई सहायता नही कर पाते। भरतीय रेलवे द्वारा शैक्षणिक भ्रमण हेतु दो योजनाएँ है a सर्कुलर टिकट **b** रियायती टिकट, उपलब्ध है, परन्तु मण्डलीय कार्यालयों द्वारा इसका नियमन होने के कारण सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में अवस्थित महाविद्यालय इन योजनओं का लाभ नहीं ले पा रहे है। साथ ही कोविड-19 के कारण रेलवे में लागू किए गये प्रतिबंधों तथा रियायती सुविधाओं में कटौतियों को अबतक वापस नही लिया गया है, जिनका नकारात्मक प्रभाव शैक्षिक पर्यटन पर पड़ रहा है।

शैक्षिक पर्यटन पर जाने वाले विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में आई व्यापकता तथा परिपक्वता का लाभ समाज तथा शिक्षा दोनों को मिलता है, जिससे बहुधर्मी, बहुभाषी, बहुआयामी, बहुलतावादी, संस्कृति का निर्माण होता है। नई शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत ज्यादा व्यावहारिक ज्ञानार्जन पर बल दिया गया है इस हेतु यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए की पाठ्यक्रम की पूर्ति हेतु समुचित अनुपात में शिक्षक तथा शिक्षणेत्तर कर्मचारी उपलब्ध हो। लड़कियों के शैक्षणिक भ्रमण हेतु सुरक्षित परिवेश सृजन का उत्तरदायित्व नागरिक समाज का है। अतः शैक्षणिक पर्यटन न सिर्फ शिक्षा बल्कि अर्थव्यवस्था, चिकित्सा पर्यटन तथा राष्ट्रीय एकता के सुदृढ़ीकरण हेतु अनिवार्य है।

संदर्भ :

- Hall, C.M. and Lew, A.A. (ed.) (1998). Sustainable Tourism Development: Geographical Perspectives, 236 pp. Harlow: Addison Wesley Longman.
- Hall, C.M. and Page, S.J. (2002). The Geography of Tourism and Recreation: Environment, Place and Space, 2nd ed., 399 pp. London, New York: Routledge.
- Mowforth, M. and Munt, I. (1998) Tourism and Sustainability: New Tourism in the Third World, 363 pp. London, New York: Routledge.
- Page, S.J. and Hall, C.M. (2003) Managing Urban Tourism, 416 pp. Harlow: Pearson Education.
- Shaw, G. and Williams, A.M. (2002) Critical Issues in Tourism: A Geographical Perspectives, 2nd ed., 371 pp. Blackwell: Oxford.
- Williams, A.M. and Hall, C.M. (2002). Tourism, migration, circulation and mobili
- Emekli, G. (2006). Geography, culture and tourism: cultural tourism. Ege Coðrafya

Dergisi (15), 51-59.

Endnotes:

1. Friedrich Wilhelm Heinrich Alexander von Humboldt FRS (14 September 1769 – 6 May 1859) was a Prussian geographer, naturalist, explorer, and influential proponent of Romantic philosophy and science. Between 1799 and 1804, Humboldt travelled extensively in Latin America, exploring and describing it for the first time from a modern scientific point of view.
2. Prince Peter Kropotkin, the aristocratic graduate of an elite Russian military academy, travelled in 1866 with his zoologist friend Ivan Poliakov and a topographer called Maskinski from river Leena to transbaikalia.
3. चरक को गुरु दक्षिणा स्वरूप अनुपयोगी वनस्पति ज्ञात करने का कार्य उनके आचार्य द्वारा आवंटित किया गया था, परन्तु लम्बे समय तक श्रमासाध्य परीक्षण के उपरान्त भी अनुपयोगी वनस्पति नहीं ढूंढ सके, उनका यह कार्य चरक संहिता के रूप में आयुर्वेद में आदरणीय है।
4. Women education during Buddhist period was at its lowest ebb, as the women folk were despised in the sense that Lord Buddha had regarded them as the source of all evils. So he had advised during his life time not to admit women inmonasteries.but after some time due to the insistence of his dear pupil Anand, Buddha had permitted about 500 women along with his step mother for admission in the Vihar with many restriction and reservations. Strict rules were enforced for women, two years was their probation period. The women monks were not allowed to meet any male monk in loneliness and their residence was arranged separately at a distant place. They were not given any permanent post in the sangh. Some monk could give her religious instruction twice a month in the presence of another monk.
5. The trickle-down theory is the theory that benefits given to people at the top of a system will eventually be passed on to people lower down the system.
6. The term BIMARU- an abbreviation for Bihar, M.P., Rajsthan, and U.P. was coined in 1980s by demographer Ashish B0se.
7. One is not born, but rather becomes, a women- Simom de Beauvoir- The Second Sex
8. In the last five years from 2015-2016 to 2019-20 there has been a growth of 11.4% in students enrolment. The rise in female enrolment in higher education during this period is 18.2%. – AISHE 2019-20

❖❖❖

युवा सशक्तीकरण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❍ प्रिया मिश्रा[1]

संक्षिप्ति :

युवा समाज के सर्वाधिक ऊर्जावान व उत्पादक वर्ग हैं। युवा किसी भी राष्ट्र की संस्कृति व सभ्यता तथा उसकी संपन्नता के रखवाले होते हैं। विकसित दुनिया के अधिकतर देश वृद्ध होती जनसंख्या वाले राष्ट्र बनते जा रहे हैं, लेकिन भारत विश्व का सर्वाधिक युवा शक्ति वाला देश है। वर्तमान में भारत जनांकिकीय लाभांश की स्थिति में है और इस लाभांश को अधिकतम और कुशलतम रूप में प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इस युवा वर्ग का सशक्तीकरण हो जिसमें देश के विकास की अनेक संभावनाएँ छिपी हैं। युवा सशक्तीकरण के लिए यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है कि युवाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा व कौशल प्रदान किया जाए; साथ ही उन्हें देश के आर्थिक व सामाजिक विकास में योगदान देने के लिए अवसर भी उपलब्ध कराया जाए। भारत सरकार की मिनिस्ट्री आफ यूथ अफेयर्स एंड स्पोर्ट्स युवा वर्ग के लिए विशेष रूप से कार्य करता है। भारत सरकार द्वारा युवाओं के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा कौशल विकास के लिए योजनाएँ व कार्यक्रम लागू किए गए हैं, जिससे कि युवा वर्ग सर्वांगीण रूप में अपना विकास कर सके तथा राष्ट्र इस युवा शक्ति के नेतृत्व में वैश्विक शक्ति के रूप में आगे बढ़े।

बीज शब्द : युवा, सशक्तीकरण, जनांकिकी लाभांश, युवा नेतृत्व, मानव विकास, उत्पादक जनसंख्या।

युवा किसे कहा जाए? इस संबंध में कोई सार्वभौमिक परिभाषा नहीं है जिसे वैश्विक स्तर पर स्वीकार किया गया हो। संयुक्त राष्ट्र द्वारा युवा को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है जो 15 वर्ष से 24 वर्ष के बीच की आयु का हो। विभिन्न देशों में युवा की परिभाषा उम्र के आधार पर निर्धारित की गई है। कानूनी रूप में सामान्यत: विभिन्न देशों द्वारा 18 वर्ष की आयु को एक निर्धारक रेखा माना गया है कि यह उम्र वयस्कता को प्राप्त करने की उम्र है। भारत में 'राष्ट्रीय युवा नीति 2003' में 13 से 35 वर्ष के आयु वाले लोगों को युवा माना गया है और बाद में इसे संशोधित करते हुए 'राष्ट्रीय युवा नीति 2014' में 15 से 29 वर्ष की आयु के युवा माना गया है। युवा किसी भी समाज के नवप्रवर्तक, सृजनकर्ता, परिवर्तन के वाहक और भविष्य के नेता होते हैं। लेकिन यह सभी लाभ तभी संभव है जब उन्हें स्वास्थ्य सुविधाएँ, शिक्षा, कौशल विकास के साधन, आर्थिक सहायता इत्यादि उपलब्ध कराई जाए। भारत में 62 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या की आयु 15 से 59

1. *असिस्टेंट प्रोफेसर-समाजशास्त्र, पं. दी. द. उ. राजकीय बालिका स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेवापुरी वाराणसी।*

वर्ष के बीच में है तथा जनसंख्या की औसत आयु 30 वर्ष से कम है। इसका तात्पर्य है कि भारत जनसंख्या की आयु संरचना के आधार पर आर्थिक विकास की क्षमता का प्रतिनिधित्व करने वाले 'जनांकिकीय लाभांश' के चरण से गुजर रहा है। इस क्षमता को वास्तविकता में बदलने के लिए यह आवश्यक है कि युवाओं व किशोरों को बेहतर स्वास्थ्य, शिक्षा, सुविधा तथा रोजगार और कौशल विकास के अवसर उपलब्ध कराए जाएँ। भारत में केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा युवाओं के समग्र विकास के लिए विभिन्न मूल तथा आनुषांगिक योजनाएँ चलायी जाती है जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

वर्ष 2015-16 तक युवा मामलों के विभाग मिनिस्ट्री आफ यूथ अफेयर्स एंड स्पोर्ट्स द्वारा युवाओं के कल्याण के लिए लगभग दस योजनाओं/कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा था जिसे बाद में 3 योजनाओं के अंतर्गत पुनर्गठित कर दिया गया, जो 1 अप्रैल 2016 प्रभाव में है। इनका सम्यक उद्देश्य युवाओं के विकास, संसाधनों के सर्वोत्तम उपयोग तथा उनके संकेंद्रण पर आधारित हैं। पहले चलने वाली प्रमुख योजनाएँ जिनमें नेहरू युवा केंद्र संगठन, नेशनल यूथ कॉर्प्स, नेशनल प्रोग्राम फॉर यूथ एंड एडलसेंट डेवलपमेंट, इंटरनेशनल कॉरपोरेशन, यूथ हॉस्टल, भारत स्काउट गाइड ऑर्गेनाइजेशन, नेशनल डिसिप्लीन स्कीम, नेशनल यंग लीडर्स प्रोग्राम प्रमुख थे जिनको एकसाथ समाहित करके एक समन्वित कार्यक्रम जिसे राष्ट्रीय युवा सशक्तिकरण कार्यक्रम (RYSK) नाम दिया गया है, का प्रारंभ किया गया है। इसके साथ ही अगली दो प्रमुख योजनाओं के रूप में "राष्ट्रीय सेवा योजना" (एनएसएस) तथा "राजीव गांधी नेशनल इंस्टीट्यूट आफ यूथ डेवलपमेंट" के रूप में समन्वित किया गया है। उपरोक्त वर्णित इन सभी योजनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

राष्ट्रीय युवा सशक्तीकरण कार्यक्रम : युवाओं के समग्र व्यक्तित्व विकास तथा उनमें क्षमता निर्माण की प्रक्रिया को प्रस्फुटित करने के लिए इस कार्यक्रम की स्थापना की गई है। यह मंत्रालय की एक फ्लैगशिप योजना है जिसके अंतर्गत कुछ अन्य योजनाओं को एक साथ क्लब किया गया है।

नेहरू युवा केंद्र संगठन : यह एक प्रमुख योजना है जो 1972 में युवा संगठनों के द्वारा स्थापित की गई। यह भारत के 623 जिलों में कार्यरत नेहरू युवा केंद्रों के माध्यम से संचालित एक योजना है जो युवाओं में व्यक्तित्व और नेतृत्व के विकास को प्रेरित करती है, ताकि राष्ट्र निर्माण में युवा अपना योगदान दे सकें। भारत ही नहीं वरन पूरे विश्व के सबसे बड़े संगठनों में इसकी गिनती की जाती है जो साहित्य, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, स्वच्छता, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक मुद्दे, महिला सशक्तीकरण, ग्रामीण विकास, कौशल विकास, स्वरोजगार, सिविक सेंस, आपदा प्रबंधन तथा पुनर्वास जैसे पक्षों पर अपना ध्यान केंद्रित करती है।

नेशनल यूथ कार्प : नेशनल यूथ कार्प, वर्ष 2011 में लांच की गई एक योजना है जो नेहरू युवा केंद्रों के माध्यम से संचालित होती है। इस योजना का उद्देश्य 18 से 29 वर्ष के वॉलिंटियर्स का चयन करना है जो ब्लॉक स्तर पर 2 वर्ष के लिए राष्ट्र निर्माण में अपनी सेवाएँ दे सकते हैं। देश के 706 जिलों में संचालित इस योजना के अंतर्गत 12245 से अधिक वॉलिंटियर्स इस योजना से जुड़ चुके हैं। यह योजना युवाओं को सामाजिक-आर्थिक विकास में भागीदारी के साथ-साथ नेतृत्व क्षमता विकास के लिए समर्पित है।

नेशनल प्रोग्राम फॉर यूथ एंड एडल्ट्सेंट डेवलपमेंट (NPYAD) राष्ट्रीय युवा सशक्तीकरण कार्यक्रम के अंतर्गत संचालित इस योजना युवाओं के विकास के लिए विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है, जो युवाओं के चतुर्दिक विकास के लिए समर्पित है। यह योजना 5 मुख्य तत्वों के अंतर्गत संचालित की जाती है जिसमें युवा नेतृत्व, व्यक्तित्व विकास, प्रशिक्षण, राष्ट्रीय एकीकरण, यूथ एक्सचेंज प्रोग्राम जैसे विषय समाहित है। यह योजना भी 15 से 29 वर्ष के युवाओं को समर्पित है जबकि इसमें किशोरों के शामिल होने की उम्र 10 से 19 वर्ष है।

राष्ट्रीय युवा नेतृत्व कार्यक्रम 2014 में लांच की गई एक योजना है जिसमें युवाओं में नेतृत्व क्षमता के

विकास पर बल दिया जाता है, ताकि वे अपनी संपूर्ण क्षमता का इस्तेमाल करते हुए राष्ट्र निर्माण में अपनी भागीदारी को सुनिश्चित कर सकें। इस कार्यक्रम में समाहित युवाओं के लिए 15 से 29 वर्ष की उम्र निर्धारित है।

यूथ हॉस्टल (YH) भी मंत्रालय की एक समर्पित योजना है जो ऐसे छात्रावासों के निर्माण के लिए समर्पित है जो भ्रमणशील युवाओं को देश की सांस्कृतिक आर्थिक तथा राजनीतिक विकास से परिचय कराने में अपना योगदान दे सकें। इस प्रकार के हॉस्टल में सर्वसुविधा युक्त तथा शुल्कमुक्त कमरे युवाओं को उपलब्ध कराए जाते हैं ताकि उनका लाभ लेकर वे भारत की सांस्कृतिक आर्थिक स्वरूपों को भली प्रकार समझ सकें। भारत में अब तक कुल 84 ऐसे यूथ हॉस्टल बनाया जा चुके हैं जो देश के विभिन्न हिस्सों में अवस्थित हैं।

युवाओं में देशभक्ति, आदर्शवाद, चरित्र-निर्माण, आत्मविश्वास जैसे तत्वों के विकास के लिए 1980 में स्काउट गाइड आंदोलन की नींव रखी गई इस प्रकार के कार्यक्रम उनमें पर्यावरण संरक्षण, सामुदायिक सेवा, स्वास्थ्य के संबंध में जागरूकता तथा स्वच्छता से संबंधित विषयों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के लिए चलाए जाते हैं। इस प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रम को स्कूल तथा कॉलेज स्तर पर भी भली प्रकार लागू किया गया है जिससे युवा लाभान्वित हो रहे हैं। विभिन्न प्रकार के अंतरराष्ट्रीय संस्थानों जैसे यूनाइटेड नेशंस, यूनाइटेड नेशन डेवलपमेंट फंड, यूनिसेफ इत्यादि से कोलैबोरेशन के माध्यम से युवाओं में कार्यक्षमता तथा रोजगार के विकास हेतु इस योजना का संचालन मंत्रालय द्वारा किया जाता है। ऐसे योजनाओं में भारतीय युवाओं को भागीदारी के लिए प्रेरित किया जाता है तथा अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उन्हें काम करने, सीखने तथा आगे बढ़ने के अवसर प्रदान किए जाते हैं।

1969 में प्रारंभ की गई राष्ट्रीय सेवा योजना, जिसका उद्देश्य सामुदायिक विकास को समर्पित है, युवाओं को प्रेरित एवं प्रशिक्षित करने की एक प्रमुख योजना है जिसे संक्षिप्त में एन.एस.एस नाम से जाना जाता है। यह महात्मा गांधी के आदर्श और विचारों से प्रेरित है जिसका आधार वाक्य है "NOT ME BUT YOU" यह सामुदायिक सेवा के माध्यम से युवाओं के विकास पर बल देती है। इसमें सामुदायिक विकास के साथ नेतृत्व विकास, राष्ट्रीय एकीकरण, यूथ एक्सचेंज प्रमोशन, विभिन्न प्रकार के पुरस्कार, तकनीकी प्रशिक्षण आदि सभी सम्मिलित किए जाते हैं। यह युवाओं को प्रशिक्षित करती है जिसे स्कूलों एवं महाविद्यालयों में इकाईयों के रूप में विकसित किया गया है। यह 10 वर्ष से 19 वर्ष के प्रथम चरण तथा 15 वर्ष से 29 वर्ष के द्वितीय चरण के रूप में अपना प्रशिक्षण प्रदान करती है। वर्ष 2021 तक प्राप्त आंकड़ों के आधार पर इसमें 479 से अधिक विश्वविद्यालय/उच्च शिक्षण संस्थान सम्मिलित थे जिनके माध्यम से 7 करोड़ से अधिक युवाओं को इस योजना से सफलतापूर्वक जोड़ा एवं प्रशिक्षित किया जा चुका है।

राजीव गांधी नेशनल इंस्टीट्यूट आफ यूथ डेवलपमेंट इस क्रम की अगली एक महत्वकांक्षी योजना है जिसे मिनिस्ट्री ऑफ यूथ अफेयर्स एंड स्पोर्ट्स, भारत सरकार द्वारा 2012 से चलाया जा रहा है। इसे डीम्ड विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त है। युवाओं को चतुर्दिक विकास के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण, अभिविन्यास कार्यक्रम तथा क्षमता निर्माण कार्यक्रमों का संचालन करती है। यह योजना भी नेहरू युवा केंद्र तथा राष्ट्रीय सेवा योजना के विभिन्न केंद्रों में एक साथ समन्वय स्थापित करती है और विभिन्न संगठनों जिसमें राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठन भी शामिल है, के माध्यम से युवाओं को कार्य करने और विकास करने का अवसर प्रदान करती है।

उपरोक्त वर्णित सभी योजनाओं को सम्मिलित रूप में युवाओं के विकास जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा भौतिक विकास भी शामिल हैं, के लिए केंद्रित किया जाता है। यह सभी योजनाएँ एक प्रकार से समन्वित हैं। इन योजनाओं के सम्मिलित प्रभाव के मापन के लिए यूथ डेवलपमेंट इंडेक्स का भी निर्माण

किया जाता है। यह इंडेक्स 19 सूचकांको पर आधारित है जो सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा व्यक्तित्व विकास पर केंद्रित हैं। इसमें पांच प्रमुख डोमेन, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, कार्य, सिविक सेंस, तथा राजनीतिक सहभागिता सम्मिलित हैं, के आधार पर संरक्षित किया जाता है।

निष्कर्ष :

युवाओं के सम्पूर्ण विकास को समपर्पित राष्ट्रीय युवा नीति अपने लक्ष्यों की ओर तीव्रता से आगे बढ़ रही है। पांच विशिष्ट आधारों से पोषित यह योजना मुख्य रूप से रोजगार और उद्यमिता, युवा नेतृत्व और विकास, स्वास्थ्य, फिटनेस और खेल, सामाजिक न्याय जैस विषयों को स्वयं में समाहित करती है। नीति का एक विशिष्ट उद्देश्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के साथ शिक्षा प्रणाली को सहज करना है। ऐसी योजनाएँ युवाओं के विकास को प्रोत्साहित करने और भारत के उज्ज्वल भविष्य को सुनिश्चित करने के लिए एक रोडमैप प्रदान करती है। यह राष्ट्रीय स्तर का ढाँचा राज्यों के लिए एक मॉडल प्रदान करेगा। राज्य अपने क्षेत्र की जरूरतों के अनुसार अपनी युवा नीतियों को और स्थानिक तथा विशिष्ट प्रारूप में तैयार करने के लिए स्वतंत्र हैं। इस प्रकार से ऐसी योजनाओं का अनुकूलतम लाभ प्राप्त हो सकेगा और भारत युवाओं के सर्वांगीण विकास के माध्यम से अपने वांक्षित लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेगा।

सन्दर्भ :

1. प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया, आधिकारिक वेबसाईट; www.pib.gov.in
2. युवा कार्यक्रम और खेल मंत्रालय, भारत सरकार आधिकारिक वेबसाईट yas.nic.in
3. योजना: सितम्बर 2022
4. राष्ट्रीय युवा निति 2022, MOSPI भारत सरकार

❖❖❖

सामाजिक प्रगति का यथार्थ : एक पुनरावलोकन

❍ सीता पांडेय[1]
❍ अजीत प्रताप सिंह[2]

भारतीय लोकतंत्र के आधार स्तंभ समानता, स्वतंत्रता और भातृत्व की भावना, पंथनिरपेक्षता, अवसर की समता तथा विविध तरीके के न्याय हैं। भारत विश्व में भू-भाग की दृष्टि से सातवां स्थान रखता है तथा मानव सम्पदा, मानवपूंजी तथा जनसंख्या लाभांश के रूप में भारत की विश्वपटल पर अपनी अलग पहचान स्थापित है। स्वतंत्रता के पश्चात 75 वर्षों की गौरवमयी स्वर्णिम यात्रा को भारत अपनी आजादी के अमृत महोत्सव के रूप में मना रहा है। एक ऐसे भारत के निर्माण का संकल्प ले रहा है, जो समावेशी, मानव विकास केन्द्रित, स्वावलंबी तथा आत्मनिर्भर हो। जिसकी आगामी पीढियाँ मानवीय मूल्यों, नैतिकता तथा संस्कारों से युक्त होने के साथ-साथ भारत के गौरवमयी इतिहास से परिचित हो।

आजादी के इस अमृत महोत्सव के पाँच आधार स्तम्भ हैं : स्वतंत्रता संग्राम की प्रेरणा, 75 वर्षों की उपलब्धियाँ या संकल्प समाधान, कार्यक्रम और विचार दृष्टि (विजन/75)। आजादी का यह अमृत महोत्सव 75 वर्षों की उपलब्धियों तथा 25 वर्षों के अमृतकाल के कार्यक्रमों, विचारों, संकल्पों और नीतियों के मध्य समन्वय बनाते हुए, भारत को आत्मनिर्भर राष्ट्र बनाने के साथ-साथ विश्वपटल पर वैश्विक भूमिकाओं में भारत की उपस्थिति को सशक्त रूप में दर्ज कराने के साथ ही एक अग्रणी राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत करना है।

विविधताओं से युक्त भारत में चतुर्दिक एकता के दर्शन होते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने सभी क्षेत्रों में प्रगति की है। भारत में संविधान निर्माण के साथ ही न्यायपूर्ण, समानता और समावेशी समाज की स्थापना के रूप में हमने प्रगति की शुरुआत की; क्योंकि, किसी भी समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और वैज्ञानिक प्रगति भी तभी साकार रूप ग्रहण करती है जब समाज का स्वरूप समावेशी हो।

स्वतंत्रता के पश्चात ग्रामीण रुपांतरण और पुनर्निर्माण को लेकर चलाए गए विविध कार्यक्रम, नीतियाँ और योजनाएँ, वंचित एवं कमजोर वर्ग के उत्थान हेतु निरंतर सरकारी व गैर सरकारी स्तर पर किए जा रहे प्रयास, प्रत्येक नागरिक के सशक्तीकरण व विकास की दिशा में मील का पत्थर सिद्ध हो रहे हैं। भारत इस समय जनसंख्या लाभांश की स्थिति से गुजर रहा है ऐसे में मानव श्रम को संसाधन व मानवपूंजी में रूपांतरित करने

1. *असिस्टेंट प्रोफेसर, समाज शास्त्र विभाग, रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अकबरपुर, अम्बेडकर नगर, उ.प्र.*
2. *असिस्टेंट प्रोफेसर, मध्य.एवं आधु.इतिहास विभाग, रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अकबरपुर, अम्बेडकर नगर, उ.प्र.*

के लिए उसे कौशल विकास से संबंधित प्रशिक्षण प्रदान करना, वंचित तथा कमजोर वर्ग, वृद्ध, दिव्यांग एल. जी.बी.टी. क्यू. के उत्थान हेतु किए जा रहे कार्य सामाजिक सशक्तीकरण मानव विकास के साथ सामाजिक प्रगति तथा समावेशी विकास को प्रतिविम्बित करते हैं।

स्वतंत्रता के उपरांत यदि भारत की प्रगति/75 वर्षों की उपलब्धियों पर दृष्टिपात किया जाए तो भारत ने अब संरचनात्मक क्षेत्रों के साथ-साथ चतुर्दिक प्रगति की है। इस शोध आलेख का उद्देश्य उस प्रगति को तार्किक ढंग से रेखांकित करना है। इस शोध पत्र में भारत की प्रगति को दो चरणों में विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

1. स्वातंत्र्योत्तर भारत में आर्थिक सुधार (1990 ई. तक)
2. आर्थिक सुधारों के बाद से लेकर अब तक की प्रगति।

भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा इसकी अर्थव्यवस्था कृषि से 'पहचान' प्राप्त करती है क्योंकि भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत लोग कृषि और उससे सम्बद्ध गतिविधियों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संलग्न हैं। भारत में स्वतंत्रता के समय कृषि क्षेत्र अनेक समस्याओं से ग्रस्त था। उस समय लगभग 10 प्रतिशत भू-भाग पर ही सिंचाई की सुविधा थी। गेहूँ और धान जैसे खाद्यान्नों का उत्पादन प्रति हेक्टेयर लगभग 8 किलोग्राम था। उर्वरकों के प्रयोग की स्थिति भी दयनीय थी और स्वतंत्रता के समय (1951 ई.) लगभग कुल जनसंख्या जो 36.10 करोड़ के आसपास थी उसे दोनों वक्त का भोजन उपलब्ध कराना अत्यंत कठिन था।

स्वतंत्रता के बाद से ही कृषि तथा उससे सम्बद्ध क्षेत्रों में प्रगति देखी जा रही है। प्रथम पंचवर्षीय योजना का फोकस क्षेत्र कृषि थी। प्रथम और द्वितीय दोनों पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई क्षेत्र के विस्तार तथा उर्वरकों के प्रयोग को बढाने के साथ-साथ कृषि उत्पादन को बढाना था। इसके पश्चात कृषि किसी न किसी रूप में प्रत्येक पंचवर्षीय योजना से प्रमुखता से जुड़ी रही। सन् 1966-67 ई. में कृषि क्षेत्र में 'हरित क्रांति' को किसी 'क्रांति' से कमतर नहीं कहा जा सकता है। इस हरित क्रांति ने भारत को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने के साथ-साथ कृषि में प्रौद्योगिकी के प्रयोग की नींव रखी।

भारत ने सन् 1968 ई. में ही 170 लाख टन गेहूँ का उत्पादन कर कीर्तिमान स्थापित किया। कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार 2021-22 के लिए देश में 316.06 मिलियन टन रिकॉर्ड खाद्यान्न उत्पादन हुआ। जिसमें मुख्य फसल चावल (127.93 मिलियन टन) तथा गेहूं (111.32 मिलियन टन) रहा। इस तरह भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनने के साथ-साथ एक खाद्यान्न घाटे वाले देश से खाद्यान्न अधिशेष वाले देश में परिवर्तित हुआ।

हरित क्रांति के अतिरिक्त नीली, पीली, गुलाबी, भूरी, श्वेत आदि विभिन्न क्रान्तियों से सशक्त होता भारत का कृषि व उससे सम्बद्ध क्षेत्र में सन् 2004 ई. से द्वितीय हरित क्रांति प्रारंभ हुई जिससे कि हरित क्रांति से उत्पन्न नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सके तथा मृदा, मानव व पर्यावरण के स्वास्थ्य को सुरक्षित, संतुलित और सतत् या संपोषणीय (Sustainable) बनाया जा सके।

कृषि व संबद्ध क्षेत्र किसानों के लिए लाभप्रद व्यवसाय बन सके, इसके लिए निरंतर प्रयास किये जा रहे हैं। जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, भूमि सुधार, मृदा स्वास्थ्य कार्ड और सूक्ष्म सिंचाई विधियाँ आदि के माध्यम से भूमि के स्वास्थ्य को सुधारने का कार्य स्वतंत्रता के पश्चात जारी है। न्यूनतम समर्थन मूल्य तथा कृषि क्षेत्र में सब्सिडी व पी.एम. आशा के माध्यम से किसानों को उनके कृषि उत्पादों का उचित मूल्य देने का प्रावधान है। कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भरता आर्थिक स्वतंत्रता को प्रतिबिंबित करती है इसलिए उत्पादन व उत्पादकता में सुधार किया जा रहा है। इतना ही नहीं डिजिटल क्रांति के इस युग में स्मार्ट कृषि को स्मार्ट ढंग से कार्यान्वित किया जा रहा है। नैनो यूरिया, जैविक कृषि, नेट जीरो कृषि, कृषि में ड्रोन का प्रयोग, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का

कृषि में प्रयोग पर अनुसंधान जैसे नवीन प्रयोग भी कृषि में किये जा रहे हैं।

कृषि को लाभप्रद तथा किसानों की आय को वित्तीय वर्ष 2022-23 के अंत तक दोगुना करने का लक्ष्य, फूड प्रोसेसिंग पर बल, फूड प्रोसेसिंग पार्कों की स्थापना, कृषि बीमा, 'किसान सम्मान निधि' आदि माध्यमों से परम्परागत कृषि नये अनुसंधान तथा तकनीक के दौर से गुजर रही है। वर्ष 2023 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 'अंतरराष्ट्रीय पोषक अनाज वर्ष 2023' भारत के प्रयास से ही घोषित हुआ। भारत के केन्द्रीय बजट 2023-24 में मोटे अनाज ने 'श्री अन्न' के रूप में अपना स्थान बनाया जो निश्चित रूप से स्वास्थ्य व किसान हितैषी है।

किसानों के कृषिगत उत्पादों को सुरक्षित मंण्डियों तक पहुंचाया जा सके इसके लिए कृषि रेल सेवा व सड़कों को बढावा दिया जा रहा है। 24 दिसम्बर 2021 तक 1806 किसान रेलों को 153 रेलमार्गों पर चलाया जा रहा है जिसके माध्यम से कृषि उत्पादों का वितरण सुगमता से एक स्थान से दूसरे स्थानों तथा मंण्डियों तक किया जा रहा है, जिससे कि किसान अपने कृषि उत्पादों का उचित व लाभप्रद मूल्य प्राप्त कर आत्मनिर्भरता की दिशा में बढ सके। गाँवों को सड़कों तथा सड़कों को मुख्य मार्गों से जोड़कर बेहतर कनेक्टिविटी विकसित की जा रही है। किसानों की समस्याओं के समाधान के लिए किसान काल सेंटर, विविध पोर्टल, ई-नाम (इलेक्ट्रॉनिक राष्ट्रीय कृषि बाजार) जैसी सुविधाएँ भी उपलब्ध है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के माडल के साथ भारत ने अपनी औद्योगिक प्रगति का सफर प्रारम्भ किया। भारत में औद्योगिक क्रांति की शुरुआत द्वितीय पंचवर्षीय योजना से प्रारम्भ हुई। इसके साथ ही भारत में भारी उद्योग धन्धों की नींव पड़ी। फलस्वरूप अधिक लोगों को रोजगार के अवसर प्राप्त हुए। अधिक व तीव्र उत्पादन के साथ सुदृढ़ मुद्रा, बैंकिंग, वितरण व बाजार व्यवस्था को गति मिली। वस्तुओं के गुणवत्तापूर्ण उत्पादन पर बल दिया गया। परन्तु आर्थिक सुधारों से पूर्व इस प्रगति को अर्थात 1950 से 1980 तक निम्न आर्थिक वृद्धि दर के कारण इसे 'हिन्दू अर्थव्यवस्था' की संज्ञा दी जाती रही।

आर्थिक सुधारों (1991) के उपरांत विकास का एल.पी.जी. माडल अपनाया गया जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक स्वरूप ग्रहण करने के साथ ही भारत में निवेश को आकर्षित कर सके। इसके लिए अर्थव्यवस्था को उदारीकृत करने के साथ-साथ लाइसेंसिंग प्रक्रिया को कुछ निश्चित क्षेत्रों के लिए ही अनिवार्य किया गया, निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित किया गया जिससे अर्थव्यवस्था में निवेश को बढावा मिल सके। वैश्वीकरण ने विभिन्न देशों के मध्य वस्तुओं, सेवाओं, श्रम तथा पूँजी के मुक्त आवागमन को साकार स्वरूप प्रदान किया। भारत का विभिन्न देशों के साथ मुक्त व्यापार समझौता हुआ। इन सभी माध्यमों से भारतीय वाणिज्य एवं व्यापार को विश्व पटल पर जहाँ एक 'नयी पहचान' मिली, वहीं भारत विश्व में सर्वाधिक 'धन प्रेषण' (रेमीसेंट) प्राप्त करने वाला देश बना। भारतीय उत्पाद, सेवाओं तथा साफ्टवेयर के क्षेत्र को वैश्विक स्तर पर विश्वसनीयता की दृष्टि से देखा जाने लगा। भारतीय अर्थव्यवस्था इन 75 वर्षों में निरंतर प्रगति करती हुई। विश्व की 5वीं बड़ी अर्थव्यवस्था बनी। आजादी के इस अमृत काल में भारत के लिए गौरव की बात है।

भारत एम.एस.एम.ई. (MSME) सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योग को बढ़ावा देने के लिए निरंतर प्रयासरत है। मेक इन इण्डिया, स्टेंडप इण्डिया, स्टार्ट अप इण्डिया, मुद्रा योजना, एकल खिड़की प्रावधान, जन धन योजना आदि का लक्ष्य उद्योगों को सुदृढ़, सशक्त तथा स्मार्ट बनाना है। एम.एस.एम.ई. उद्यम कृषि के बाद सर्वाधिक रोजगार प्रदान करते हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार 80 लाख से अधिक लोग इसी से रोजगार प्राप्त कर रहे हैं।

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के सर्वांगीण विकास का आधार होती है। गुणवत्तापूर्ण तथा कौशल से युक्त शिक्षा एक तरफ लोगों को जहाँ बौद्धिक दृष्टि से कुशल, तार्किक तथा सशक्त बनाती है वहीं लोगों मे कौशल तथा ज्ञान का संवर्धन कर समाज में गरीबी, बेरोजगारी तथा असमानता को दूर करने में सहायक होती है। स्वतंत्रता के पश्चात संविधान में शिक्षा को राज्य सूची के अन्तर्गत रखा गया परन्तु व्यापक उद्देश्य को देखते हुए तथा इसे

और अधिक सशक्त, सार्वभौमिक व समावेशी बनाने के उद्देश्य से 42 वें संविधान संसोधन 1976 में शिक्षा को 'समवर्ती सूची' में सम्मिलित कर लिया गया।

भारत में साक्षरता की दर में स्वतंत्रता के पश्चात सतत् वृद्धि जारी है। सन् 1951 ई. में भारत की साक्षरता जहाँ 18.33 प्रतिशत थी वहीं 2011 की जनगणना के अनुसार 73.0 प्रतिशत हो चुकी थी। अवसंरचनात्मक तथा समावेशी विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षा व्यवस्था में 'नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' लागू की गयी। जिसमें शिक्षा को व्यावसायिक तथा समावेशी बनाने पर बल दिया गया। जिससे एक तरफ जहाँ भारत की शिक्षा व्यवस्था को वैश्विक बनाया जा सके, वहीं दूसरी तरफ भारत पुनः विश्व गुरु की उपाधि से विभूषित हो सके। शिक्षा के परम्परागत स्वरूप के साथ-साथ डिजिटल प्लेटफार्म, डिजिटल लाइब्रेरी, आनलाइन शिक्षण पर बल दिया जा रहा है। ज्ञान की शक्ति को सर्वोच्च शक्ति के रूप में जाना जाता है। स्वतंत्रता के पश्चात शिक्षा रूपी शक्ति को प्राप्त करने के लिए प्रयास प्रारम्भ किया गया जिससे भारत में शैक्षणिक क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव लाया जा सके। इसके लिए विभिन्न शिक्षा आयोगों का गठन तथा कार्यक्रमों की शुरुआत की गयी जिससे शिक्षा के सार्वभौमिक व समावेशी स्वरूप को प्राप्त किया जा सके। इस दिशा में कुछ प्रमुख प्रयास इस प्रकार हैं :

1. विश्वविद्यालय आयोग का गठन 1948 ई. में डा. एस. राधाकृष्णन के निर्देशन में किया गया जो उच्च शिक्षा से संबंधित रहा।
2. मुदालियर आयोग का गठन 1952-53 में किया गया जिसका उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा के लोकतांत्रिक स्वरूप को विकसित करना रहा।
3. कोठारी आयोग 1964-66 में गठित किया गया जिसने शिक्षा के सभी पहलुओं पर कार्य किया।
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में आयी तथा आपरेशन ब्लैक बोर्ड 1987 में।
5. बच्चों को कुपोषण से बचाने तथा उनके स्वास्थ्य में सुधार और उनमें ड्राप आउट को रोकने के लिए 1995 में मध्याह्न भोजन की शुरुआत की गयी जो अनवरत जारी है।
6. कमजोर व वंचित वर्ग की छात्र-छात्राओं के लिए विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्तियों की शुरुआत की गयी जिससे उनके शिक्षा ग्रहण करने के मार्ग में आ रही बाधाओं को दूर किया जा सके।

स्वतंत्रता के पश्चात लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है जिसका परिणाम यह है कि सन् 1951 ई. में स्त्रियों में जो साक्षरता दर 8.86 प्रतिशत थी वह 2011 की जनगणना में बढ़कर 64.6 प्रतिशत हो चुकी है। "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ", 'सुकन्या समृद्धि', 'मिशन शक्ति' जैसी योजनाएँ जहाँ एक तरफ लड़कियों व महिलाओं को सशक्त व शक्ति संवर्धित कर रही है वहीं दूसरी तरफ शिक्षा के माध्यम से उनका उन्नयन भी हो रहा है।

एक स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है तथा स्वास्थ्य ही धन है, इस तरह की उक्तियाँ सामान्यतः सुनी जाती हैं। और यह सत्य भी है, क्योंकि उत्तम स्वास्थ व्यक्ति की कार्यक्षमता को प्रभावित करता है। स्वस्थ व्यक्ति स्वयं के साथ-साथ परिवार समाज व राष्ट्र के विकास में बेहतर योगदान कर पाता है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात से ही स्वास्थ्य के क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ निजी क्षेत्र की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। स्वास्थ सेवाओं में बढ़ोत्तरी तथा पोषण स्तर में निरन्तर हो रहे सुधार से 'जीवन प्रत्याभा' में बढ़ोत्तरी हुई है। स्वतंत्रता के समय जीवन प्रत्याभा जो लगभग 35 वर्ष थी वह 5वीं परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार 67.2 वर्ष हो गयी है।

'परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण की 5वीं रिपोर्ट' जो 06 मई 2022 को जारी की गयी जिसके अनुसार परिवार में निर्णय लेने में महिलाओं की सहभागिता बढ़ी है जो महिला सशक्तीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

5वीं रिपोर्ट के अनुसार:

1. पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों में ठिगनापन (Stenting) मे कमी आयी है। यह 46.3 प्रतिशत से घटकर 39.7 प्रतिशत हो गया है।
2. पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों में ही दुबलापन (Wasted) 17.9 से घटकर 17.3 प्रतिशत हो गया है।
3. पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों में कम वजन (Under Weight) की समस्या में कमी आयी है। यह 39.5 प्रतिशत से घटकर 32.1 प्रतिशत रह गया है। यह सर्वेक्षण रिपोर्ट भारत में स्वास्थ्य क्षेत्र में आ रहे अनवरत सुधार को प्रतिबिंबित करता है। इस रिपोर्ट में यह भी पाया गया कि महिला व पुरुष दोनों में मोटापा बढ़ रहा है। भारत में स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर तथा चिकित्सा सेवाओं में सुधार के लिए निरंतर सकारात्मक प्रयास किए जा रहे है।

स्वास्थ के क्षेत्र में नवीन शोध और डिजिटल तकनीकी की बढ़ती सुविधाओं के कारण ही 'स्टेमसेल चिकित्सा' टेली मेडिसिन, टेस्ट ट्यूब बेबी, तथा जटिल व असाध्य रोगों के निदान संभव हो सका है। आयुष्मान भारत योजना विश्व की स्वास्थ्य क्षेत्र में सबसे बड़ी योजना है।

- जननी सुरक्षा योजना, 2005
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013
- प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना, 2017
- राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017
- राष्ट्रीय पोषण मिशन, 2018
- आयुष्मान भारत
- मिशन इंद्र धनुष

उक्त योजनाओं व कार्यक्रमों का उद्देश्य सुपोषित भारत का निर्माण करना है। संचारी रोगों के समाधान के लिए विभिन्न कार्यक्रम आजादी के बाद से चलाये जा रहे हैं जिसमें राष्ट्रीय कुष्ठ उन्मूलन कार्यक्रम, टी.बी. (क्षयरोग) नियंत्रण कार्यक्रम, मानसिक स्वास्थ्य देखभाल, वृद्धों से सम्बंधित कार्यक्रम आदि हैं। इन समस्त योजनाओं एवं कार्यक्रमों का उद्देश्य स्वास्थ सेवाओं को सार्वभौमिक तथा समावेशी बनाना है क्योंकि स्वस्थ नागरिकों से समृद्ध राष्ट्र ही विकास के पथ पर अग्रसर होता है।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात कमजोर, शोषित वर्ग के उत्थान हेतु कार्य प्रारंभ किया गया जिससे कि कमजोर व वंचित वर्ग को समाज की मुख्यधारा में लाया जा सके। भारतीय संविधान की प्रस्तावना ही 'हम भारत के लोग' से प्रारंभ होती है जिसमें जेंडर सम्बन्धी कोई विभेद नहीं है। सामाजिक विधानों ने उन्हें सशक्त तथा अपने अधिकारों के प्रति जागरूक व चैतन्य किया है जिसमें मुख्य रूप से हिंदू विवाह अधिनियम-1955, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम-1956, दहेज निषेध अधिनियम-1961 व घरेलू हिंसा निवारण अधिनियम-2005, अश्पृश्यता निवारण अधिनियम 1955 की महत्वपूर्ण भूमिका है।

निष्कर्ष : स्वतंत्रता के उपरांत भारत चतुर्दिक प्रगति करते हुए विश्व पटल पर अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाये हुए है। आर्थिक क्षेत्र में प्रगति करता हुआ भारत जहाँ विश्व की पाँचवीं अर्थव्यवस्था बना है, तो वहीं भारत के लिए 5 ट्रिलियन की अर्थव्यवस्था बनना भी असंभव नहीं है। कोविड-19 वैश्विक महामारी के दौरान कृषि की विकास दर ने यह सिद्ध कर दिया है कि अर्थव्यवस्था को गति देने में प्राथमिक क्षेत्र सशक्त है। शिक्षा की बढ़ती गति, गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या में कमी तथा स्वास्थ्य सेवाओं का बढ़ता दायरा समावेशी समाज के निर्माण में सहायक हो रहा है। विकास के हर क्षेत्र में परचम लहराती महिलाएँ, कमजोर होता

जेंडर विभेद, निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी तथा अर्थव्यवस्था में उनका बढ़ता योगदान समाज में बढ़ रहे स्त्री-पुरुष समानता(जेंडर सम्बन्धी समानता) का द्योतक है। स्वतंत्रता के पश्चात हमने सभी क्षेत्रों में प्रगति की है। अन्तरिक्ष से लेकर रक्षा व्यवस्था तक सुरक्षा के सभी पहलुओं के साथ-साथ आन्तरिक सुरक्षा तक। परन्तु अभी बहुत कुछ किया जाना शेष भी है जिसको आजादी के अमृत काल में पूर्ण करने का लक्ष्य, उद्देश्य व संकल्प है।

संदर्भ :

1. कुरुक्षेत्र, अंक : 04 फरवरी 2022
2. भारत 2022 सूचना और प्रसारण मंत्रालय नयी दिल्ली
3. डाउन टू अर्थ, मई 2022
4. जनगणना रिपोर्ट 2011 (भारत की जनगणना रिपोर्ट 2011)
5. कुरुक्षेत्र अंक :10, अगस्त 2008
6. 5वीं परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण रिपोर्ट, 06 मई 2022
7. योजना, अंक : 02,फरवरी 2016
8. योजना, अंक : 01, जनवरी 2 2022 आजादी का अमृत महोत्सव

❖❖❖

21वीं सदी के परिप्रेक्ष्य में भारतीय नारी का क्रांतिकारी कदम एवं कामकाजी विषमताओं की पहल

❍ वालेन्तिना प्रिया[1]

संक्षिप्ति

जब किसी भी समाज का निर्माण और प्रगति होती है, तो उसमें महिलाओं का योगदान बहुत अधिक होता है। यदि महिलाओं के योगदान की प्राथमिकता रखी जाए तो हमारे लिए शब्द बहुत कम हो जाते हैं। महिलाओं की स्थिति और परिस्थिति को संदर्भ में रखते हुए प्राचीन काल में भारत में महिलाओं की दशा बहुत उच्च कोट की थी उन्हें अपने व्यक्तित्व के निर्माण शिक्षा विभाग संपत्ति सभी में पुरुषों के समान स्थान प्राप्त था। महिलाओं को जब सब प्रकार की समृद्धि का लक्ष्य माना जाता था। ऋग्वेद में कहा है कि पत्नी ही घर है। मनु ने इस संदर्भ में लिखा है कि यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता अर्थात जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवताओं का वास होता है। पुत्री के रूप में उसे दोहिता अर्थात गाय का दूध निकालने वाली तथा पत्नी के रूप में उसे दंपत्ति घर की स्वामिनी आदि कहकर पुकारा गया है। गार्गी तथा मैत्री जैसे विदुषी महिलाएँ मंत्रों का वाचन करने वाली थीं। महिलाओं को शिक्षा का पूरा अधिकार था। कोई भी यज्ञ अथवा धार्मिक कार्य उनके बिना अधूरा समझा जाता था। उन्हें स्वयं अपना वर चुनने का अधिकार था। विवाह अनिवार्य न था। विश्व के संदर्भ में भी महिलाओं की दशा अच्छी न थी। मध्यकाल तथा आधुनिक काल में उनकी स्थिति स्वतन्त्र नहीं थी। वह भी जीवन में विभिन्न क्षेत्रों में पिछड़ी हुई थी। उदाहरण ईसाई पादरियों की एक सभा में 558 ई. में महिलाओं के बारे में एक प्रश्न उठा कि वह मानव है भी या नहीं। महिलाओं ने प्रचलित प्रमुख महिलाओं में अनेक कुरीतियाँ कुछ प्रचलित थी, जो कि उनकी स्थिति का निर्माण करती हैं जो इसप्रकार प्रकार हैं: पर्दा प्रथा, कन्या-वध, बाल-विवाह बहु-विवाह, विधवा-विवाह निषेध, सती-प्रथा, देवदासी, अंतर-जातीय विवाह की स्वीकृति, विवाहिता महिला संपत्ति कानून आदि। अनेक प्रकार की विपत्तियों से घिरी हुई थी। उनका पूर्ण उद्देश्य था कि महिलाएँ पुरुषों के बराबर, तो क्या उनकी एक अंगुली के सामान भी नहीं है। इस प्रकार का दोष भारतीय महिलाओं के सामाजिक जीवन पर कुठाराघात था। उनका जीवन एक पशु के समान था। उन्हें लोग हेय, दृष्टि से देखते थे लेकिन उनके साथ अभद्र व्यवहार और पुत्र उत्पत्ति की कामना हमेशा करते थे। वे चाहते थे कि नारी हमेशा पुरुष को ईश्वर के समान माने; क्योंकि पुरुष ही वह सामाजिक प्राणी था जो उनके जीवन के लिए सब कुछ काम करते थे और उनका दोहन करते थे। इस प्रकार से भारतीय नारी एक रूप से गुलामी का जीवन

1. असिस्टेंट प्रोफेसर, गृह विज्ञान, रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अकबरपुर, अम्बेडकर नगर (उ0प्र0)

व्यतीत कर रही थी। प्राचीन काल में जैसे-जैसे सामाजिक व्यवस्था बढ़ती गई वैसे-वैसे लोगों ने कबीले से गाँव और गाँव से नगर और नगर से एक शहर का निर्माण किया। उसी तरह सामाजिक जीवन भी एक नई ऊँचाइयों पर पहुँचने लगा। पुरुष अपनी महत्वाकांक्षा के लिए अधिकतर नारी का शोषण करता था। जब युद्ध करते थे तो उन्हें संपत्ति के रूप में हारे हुए राजा से स्त्रियों को उठा लेते थे और उन्हें व्यवसाय के रूप में व्यसन के रूप में प्रयोग करते थे। उन्हें पूर्ण रूप से एक बेचने वाली वस्तु समझा जाता था या भोग विलास की वस्तु समझा जाता था। इसका सदुपयोग न केवल कोई राजा बल्कि प्रत्येक राज्य में धर्म संस्थानों में भी इनका दुरुपयोग भरपूर रूप से किया जाता था। देवदासी का उदाहरण हमारे समाज में स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा था। देवदासी का स्वरूप इतना भयंकर हो उठा था कि एक वर्ग इन्हें मात्र सदुपयोग करता था और उनका उपयोग करके उन्हें अनाथ छोड़ देते थे, जिससे उनका जीवन गुजारना बड़ा मुश्किल हो जाता था। ऐसी प्रथाएँ उनके प्रति सौंपी गई थीं जिन्हें ना केवल एक सामाजिक न्याय मिले उन्हें किसी भी तरह के न्याय की स्वीकृति नहीं थी। उनका जीवन मानो ऐसे हो गया था कि ईश्वर ने केवल उन्हें भोग विलास के लिए ही बनाया है। उनका अपना कोई व्यक्तिगत जीवन नहीं है। ऐसी विडंबना और परिस्थितियाँ देश में ही नहीं बल्कि देश दुनिया में भी पनप रही थी। यही कारण था कि महिलाओं को दोयम दर्जे का नागरिक परिवार में समझा जाता था और उन्हें पुरुष अपनी इच्छा को पूर्ण करने के लिए हर तरह से बढ़ावा देता था उनसे काम करवाता था। उनके साथ सारी इच्छाओं का दमन करता था और किसी बात को लेकर उनकी पिटाई भी करता था। इस प्रकार से नारद स्मृति में लिखा है कि स्त्री को बांस की खपच्ची से मारा-पीटा जा सकता है। हमारे धर्म ग्रंथों में उन्हें पीटने का भी एक उदाहरण प्राप्त होता है। तुलसीदास की रामायण में विवादित चौपाई है जो उस समय ढोल गवार शुद्र पशु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी। जो आदि समय में ताड़ना का तात्यपर पीटना होता था। लेकिन आधुनिक समय में उसे परिवर्तन करके ताड़ने का मतलब देख-रेख करना होता है। ऐसी बुरी परिस्थितियों में ही समाज फंसा हुआ था कि किसको ताड़ना किस की रक्षा और किसको पढ़ना दिया जाए। यह समय-समय पर पुरुष अपने अनुसार परिभाषा को परिभाषित करता रहता है। यही धर्म आचार्यों ने भारतीय नारी को ऐसा स्वरूप किया कि वह दोहरे स्वरूप में फंस गए। ना तो वह स्वतंत्र जीवन गुजार सकती थीं और ना ही उन्हें गुजारने की अनुमति प्राप्त होती थी। यही कारण था कि भारतीय समस्याएँ, भारतीय नारी समस्याएँ दिन पर दिन बद से बदतर होती जा रही थी। 18वीं शताब्दी में अंग्रेजों के द्वारा दी गई विषमताओं और परिस्थितियों को पुरुष के साथ महिलाओं को भी सहन करनी पड़ रही थी। यही कारण था कि महिलाओं ने अपने जीवन यापन के लिए सामाजिक आंदोलन करना शुरू कर दिया था।

बीज शब्द : प्रथाएँ, कुरीतियाँ, देवदासी, अंतर जातीय विवाह।

प्राचीन काल में स्त्रियों का पालन एवं पोषण करना पुरुषों का कर्तव्य था। पिता कुमार अवस्था में उनके चरित्र की रक्षा करता था। उनके लिए योग्य वर तलाश करना उसका कर्तव्य था। चाहे कन्याकुमारी रहकर पिता के घर पर रहे परंतु अयोग्य वर के साथ विवाह करना निंदनीय माना जाता था। यदि वह स्वयं अपने लिए वर ढूंढ ले और गंधर्व विवाह कर ले तो बात दूसरी थी। विवाहिता अवस्था में पति का कर्तव्य था कि उसका भरण पोषण करे वैधव्य एवं वृद्धावस्था में पुत्र उसका भरण पोषण करता था। जो भी विधवा आश्रिता होती थी उसका पालन राजा करता था। राजा में स्त्रियों का आदर तो था परंतु उनका स्थान पुरुषों के समान नहीं था। कोई भी धार्मिक अनुष्ठान बिना पत्नी के नहीं किया जा सकता था। वैदिक युग में स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करती थीं। लेकिन बाद के युग में यह माना जाने लगा कि स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। किन्तु वैदिक काल में कई स्त्रियाँ मंत्र दृष्टा ऋषि मानी जाती थीं। ऋषि पत्नियाँ भी अपने पतियों के समान

विदुषी हुआ करती थीं। उपनिषद काल तक कुछ स्त्रियाँ बड़ी विदुषी हुआ करती थीं। बृहदारण्यक उपनिषद में गार्गी की विद्वता का उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि कुछ तत्कालीन स्त्रियाँ, उस समय के ऊँचे से ऊँचे विद्वान की समानता कर सकती थी। यह परंपरा मुसलमानों के आक्रमण से पहले से हमारे देश में चली आ रही थी। स्वामी शंकराचार्य का मंडन मिश्र की पत्नी से शास्त्रार्थ इसका दृष्टांत है। लीलावती और भानमती भी हमारे देश की प्रसिद्ध विदुषी महिला थीं। क्षत्रियों में पत्नियाँ अपने पतियों के साथ हर रण क्षेत्र में जाती थीं। यदि किसी राजा के पुत्र न हुआ तो उसकी पुत्री अपने पिता के राज सिंहासन पर अभिषेक की जा सकती थी। परंतु साथ ही यह भी सत्य है कि आमतौर पर स्त्रियों के स्थान को ऊँचा नहीं था। शिक्षा भी गिनती के घरानों में थी। व्यापक व्यक्ति नहीं थी और नारी का जो भी प्रभाव था वह घर के अंदर अपने पुत्र या पति पर था। घर से बाहर कोई विशेष स्थान नहीं था[1]। समान शिक्षा की विशेष व्यवस्था नहीं थी। स्कूल की छात्राओं तथा ब्राह्मणों की स्त्रियाँ ही विद्या अध्ययन कर सकती थीं। स्कूलों में स्त्रियों के लिए शिक्षा का कोई विशेष प्रबंध नहीं था। मध्य युग में नारी का समाज में स्थान मोहम्मद साहब और इस्लाम धर्म के उदय के बाद तुर्कों के आक्रमणों के बाद भारतीय नारी की स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन आया। इस्लाम धर्म प्रचार के वास्ते तो देश दुनिया में घूमा और भारत आया। शासकों एवं सरदारों की अव्यस्था ने पर्दा प्रथा को जन्म दिया। कुरान शरीफ में औरतों के लिए पर्दा आवश्यक बतलाया गया। अत: जब भारत पर विदेशी शासकों का आधिपत्य हो गया तो कुलीन लोगों में शासन से संबंधित अभिजात वर्ग में तत्वों में स्वत: पर्दा प्रथा का प्रचलन हो गया। केवल निम्न कोटि की जातियों में पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं हो सका क्योंकि वहाँ औरतें भी पुरुषों के साथ काम करती थीं। जब शासक वर्ग में औरतें पर्दे में रहने लगीं तो उनके नीचे काम करने वाले मंत्रियों की स्त्रियाँ भी पर्दे में रहने लगीं। इसी प्रकार मंत्रियों के नीचे काम करने वाले लोगों में भी पर्दा होने लगा। इसी प्रकार पर्दा प्रथा कुलीन लोगों में आम हो गई। खूबसूरत महिला को शासक लोग जबरदस्ती उठाकर विवाह कर लेते थे या अपने हरम में डाल लेते थे। इस प्रकार इस युग में स्त्रियों की स्थिति दयनीय हो गई। जो घर की चारदीवारी में कैद होकर रह गई। परंतु इस युग में भी कई वीरांगना हैं जो भारतीय इतिहास में उल्लेखनीय है। जिनका शासन भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है। इल्तुतमिश के कोई योग्य पुत्र नहीं था। रजिया जो अपने पिता के सिंहासन पर बैठी और राज्य का योग्यता पूर्वक संचालन किया। चांदबीबी ने अकबर जैसे महान सम्राट से लोहा लिया था। शिवाजी की माँ जीजाबाई शिवाजी के लिए प्रेरणा स्रोत स्त्रियों के अतिरिक्त स्त्रियों का समाज में कोई स्थान नहीं था। वे पुरुषों की दासी स्वरूप मानी जाती थी। बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी जिससे स्त्रियों का जीवन नरकीय बन गया था। वह अपने ऊपर किए हुए अत्याचारों की दुहाई नहीं दे सकती थी और ना अपने अधिकारों की मांग कर सकती थीं। बाल विवाह प्रथा अत्यधिक प्रचलित थी। 8-9 वर्ष की आयु में ही माँ बन जाती थी[2]।

19वीं शताब्दी में समाज में नारी की स्थिति

19वीं शताब्दी में समाज में नारी की स्थिति उत्तरोत्तर गिरती रही। समाज में अनेकों प्रधान ने जन्म लिया। बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, कन्या वध, अनमेल विवाह आदि सामाजिक कुरीतियाँ पनपने लगीं। स्त्री का स्थान केवल घर की रसोई तक ही सीमित रह गया। स्त्रियों पर तरह-तरह के अत्याचार हो रहे थे। दहेज प्रथा में ही रहने लगे दहेज के अभाव में बहू को अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जाने लगीं। जिनका प्रतिकार भी केवल आँसुओं के द्वारा ही कर सकती थी। विधवाओं की स्थिति अत्यंत खराब थी। विधवा स्त्री को समाज में गन्दी दृष्टि से देखा जाता था। पति की मृत्यु का लांछन भी उसी पर थोपा जाता था। सिंगार करना हंसना पुरुषों में से बोलना किसी मंगल कार्य में भाग लेना उसके लिए वर्जित था। घर की सेवा एक दासी के रूप में करती थी। इसके बदले में उसे सूखा भोजन तथा अपमान ही प्राप्त होता था। बंगाल में तो विधवा स्त्रियों की बड़ी ही दुर्दशा थी। विधवा हो जाने पर उनके सिर के बाल कटवा दिए जाते थे। वे केवल सफेद वस्त्र

धारण कर सकती थी तथा उनके साथ बुरा व्यवहार होता था। बाहर विवाह तथा अनमेल विवाह भी बड़ी मात्रा में होते थे।

सती प्रथा, डाकिनी प्रथा, और कन्या वध के अतिरिक्त एक प्रथा भारतीय समाज में और प्रचलित थी, जिसे दास प्रथा कहते हैं। दास प्रथा हजारों गरीब स्त्रियों को खरीद कर दासी बना लिया जाता था। राजा लोग अपने पुत्री एवं बहनों के विवाह के अवसर पर सैकड़ों स्त्रियों को दासी बनाकर दहेज में देते थे। उन गरीब स्त्रियों को अपना घर छोड़कर रानी के साथ जाना पड़ता था, जहाँ वे अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकती थीं। राजा और रानियों की इच्छा पर ही उनका जीवन आश्रित था। राजाओं के महल दास-दासियों से खचाखच भरे रहते थे। यदि रानी के विवाह के समय अच्छी संख्या में दास और दासियाँ उसके पिता के यहाँ से नहीं आती थीं, तो जनता में से निर्धन लोगों की लड़कियों को खरीद कर दासी बना लिया जाता था। दासियों के साथ महलों में अधिक बुरा व्यवहार नहीं होता था। फिर भी उनकी स्थिति तो दासियों की ही थी। उनका पूरा जीवन राजा एवं रानी की कृपा पर निर्भर रहता था। इस प्रकार 19वीं शताब्दी में भारतीय नारियों की स्थिति बड़ी खराब थी। कुछ घरानों की स्त्रियों के अतिरिक्त सामान्य स्त्रियों का जीवन दुख में था।

19वीं शताब्दी के आरंभ में भारत पर अंग्रेजों का शासन स्थापित हुआ और साथ ही अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार हुआ। यह प्रचार बड़े-बड़े नगरों और कस्बों में ही सीमित रहा और ग्रामों ईसाईयों ने इस बात का प्रचार किया कि पर्दा नहीं होना चाहिए। स्त्रियों को पढ़ना चाहिए और विवाह के विषय में उन्हें स्वतंत्रता होनी चाहिए। जो लोग यूरोप की सामाजिक स्वतंत्रता की ओर झुकने लगे तो स्त्रियों में जागृति पैदा होने लगी। धीरे-धीरे ईसाई लोग कस्बों और गाँवों में भी पहुँचने लगे। 1857 में रानी लक्ष्मीबाई ने अपनी वीरता का प्रदर्शन करके अपनी सेना का नेतृत्व किया था। इसके अतिरिक्त जीनत महल, बड़ी बेगम थी। उसने अंग्रेजी जंगलों में लिखा पढ़ी की थी किन-किन शर्तों के अनुसार बहादुर शाह विद्रोहियों का नेतृत्व करना छोड़ देगा। इसी प्रकार हजरत महल ने भी महल में बैठे-बैठे ही विद्रोहियों को प्रेरणा दी थी। 1857 के सिपाही विद्रोह के बाद ईसाई धर्म और अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार और अधिक जोर से होने लगा। नगरों में और कस्बों में ईसाइयों ने लड़कियों के लिए स्कूल स्थापित कर दिए। इनमें पढ़ने वाली लड़कियों का दृष्टिकोण बदलने लगा। साथ ही 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना भी मुंबई में, प्रार्थना समाज लाहौर में देव समाज, इन तीनों ने स्त्री शिक्षा का प्रसार किया। बंगाल में हजारों स्त्रियों ने पर्दा प्रथा त्याग दिया और यही पंजाब में भी हुआ। मुंबई में पहले ही पर्दा प्रथा नहीं थी। परंतु अब महिलाएँ सोसाइटी में जाने लगीं। जस्टिन रानाडे की पत्नी ने हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस को अंग्रेजी में छोटा सा पत्र लिखा जिसमें केवल यह बात ही लिखी कि साहब बाहर गए हैं मुंबई में नहीं है।[3] जिस को पढ़कर चीफ जस्टिस को बड़ा आश्चर्य हुआ कि भारतीय नारी अभी अंग्रेजी में पत्र लिख सकती है। 1875 ई. में आर्य समाज की स्थापना हुई और स्वामी दयानंद ने पुरुषों और स्त्रियों की समानता पर जोर दिया और कहा कि विवाह वर और कन्या की इच्छा से होना चाहिए। 1885 ई. में कांग्रेस की स्थापना हुई। जिसके कारण कोई नारी कांग्रेस की सदस्यता तो नहीं ली, परंतु सदस्यों की पत्नियाँ सभा में उपस्थित होने लगीं। इस प्रकार ब्रह्म समाज आर्य समाज कांग्रेस और ईसाई धर्म के प्रचार के कारण व्यापक जन जागृति स्त्रियों में भी जागृत हुई। राजनीतिक विचारों का प्रचार हुआ।

भारतीय समाज सुधारकों का योगदान : राजा राममोहन राय कुलीन कहलाने वाले ब्राह्मणों में बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी। बचपन से विवाह होना प्रारंभ होता था जो बुढ़ापे तक होता रहता था। स्वयं राममोहन राय के तीन विवाह हुए थे। राजा राममोहन राय ने प्रत्यक्षत: इस विषय पर कुछ नहीं कहा, परंतु सती प्रथा का उन्होंने बहुत विरोध किया। इस प्रथा के विरोध में जोरदार आवाज उठाई कि सती प्रथा का पूर्णतया निषेध होना चाहिए। रूढ़िवादी लोगों ने तो यह आवाज उठाई थी कि अधिनियम 1812, 1815, 1817 में महिला सुरक्षा के लिए सती होने के जो कानून बनाए गए थे। वे न हटाए जाएं।

राजा राममोहन राय ने बंगाली भाषा में छोटी-छोटी पुस्तक लिखकर बतलाया कि सती प्रथा शास्त्रों के अनुसार नहीं है। राममोहन ने अपने संवाद कौमुदी नामक पत्रिका द्वारा भी सती प्रथा के विरुद्ध प्रचार किया जिससे उनका बहुत बड़ा प्रबल विरोध हुआ। ऐसा समझा जाने लगा कि उनके प्राण संकट में हैं, परंतु राजा राम मोहन राय अपने पथ से विचलित नहीं हुए। राजा राममोहन राय कानून के द्वारा सती प्रथा को बंद कराने के पक्ष में नहीं थे। वह जनता में सती प्रथा के विरुद्ध जनमत तैयार करना चाहते थे। उन्होंने इसके लिए जनमत तैयार किया। यह उन्हीं के प्रयासों का फल था कि जब ब्रिटिश सरकार ने इस प्रथा को बंद करने के लिए कानून बनाया तो उसका पालन होने में अड़चनें नहीं आयीं। 1829 में सती प्रथा बंद हो गई। राजा राममोहन राय बंगाल में प्रचलित विवाह के विरोधी थे। बाल-विवाह तथा अनमेल विवाह प्रथा का भी उन्होंने खंडन किया। महिलाओं की शिक्षा को भी महत्व दिया। 1822 ई. में उन्होंने एक पुस्तक का प्रकाशन किया जिसमें स्त्रियों के अधिकारों पर जोर दिया। उन्होंने हिंदू महिलाओं की दयनीय स्थिति को दूर करने का प्रयत्न किया। राजा राम मोहन ने विधवा विवाह का भी समर्थन किया और इसके लिए सक्रिय कदम भी उठाया। राजा राम मोहन और उनके प्रयासों से आधुनिक समाज में जो सुधार हुए इस दृष्टि से उन्हें आधुनिक भारत का प्रमुख समाज सुधारक माना जाता है। उन्होंने समाज में नवीन चेतना का संचार किया।

राजा राममोहन राय पाश्चात्य शिक्षा के पक्षपाती थे। उन्होंने कहा कि भारतीय महिलाओं की स्थिति में तभी परिवर्तन हो सकता है जबकि उनकी शिक्षा की ओर ध्यान दिया जाए। 1870 ई. में ब्रह्म समाज के प्रमुख नेता केशव चंद्र सेन ने ब्रह्म मैरिज एक्ट बनवाया जिसके अनुसार विवाह कर्ता के लिए तीन बातें आवश्यक थीं- 1. विवाह, 2. विवाह की उम्र, 3. विवाह के लिए कोई जाति बंधन नहीं।

स्वामी दयानंद सरस्वती

मध्यकाल से ही स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त से वंचित कर दिया गया था। यहाँ तक कि वेद अध्ययन के अधिकार से भी उन्हें वंचित रखा गया था। इससे पता चलता है कि स्मृतियों के समय युवतियाँ विदुषी होती थीं। वे शास्त्रों का अध्ययन कर अपने पति का चुनाव स्वयं से करती थीं। दयानंद ने कहा कि स्त्रियों को कम से कम व्याकरण, धर्म, वैदिक, शिल्प, विद्या, और गणित तो अवश्य ही पढ़ना चाहिए। मनु ने कहा कि राजा को चाहिए कि सब लड़कियों और लड़कों को नियत समय तक ब्रह्मचर्य में रखकर विद्वान करावे जो इस आज्ञा का पालन ना करें, वह माता-पिता दंड के भागी हो। संपत्ति के अधिकार के विषय में भी उन्होंने माता, विधवा, पत्नी, लड़कियों, बहनों, के अधिकार को स्वीकार किया है। स्त्री और पुरुष दोनों ही सदैव साथ रहकर अपने अपने कर्तव्य का पालन करें। स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। स्वामी जी ने सदियों से दबी कुचली पीड़ित नारी को ऊपर उठाया तथा पुरुषों को बताया कि जिस घर में नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। अत: गृहिणी का सम्मान होना चाहिए। उन्हें शिक्षा की पूर्ण स्वतंत्रता एवं सुविधा मिलनी चाहिए। सामाजिक अंधविश्वास को दूर करने में शिक्षित नारी का सहयोग विशेषकर होगा। स्वामी विवेकानंद ने भी स्त्रियों की स्थिति की ओर ध्यान देकर सुधारों का प्रयास किया। उन्होंने कहा कि महिला 1000 पुरुषों से भी अधिक शक्तिशाली होती है[4]।

दादाभाई नरोजी : मुंबई में दादाभाई नरोजी ने महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए विशेष प्रतिनिधित्व किया। मुंबई में कुछ शिक्षित युवकों ने संगठित होकर समाज सुधार का प्रयास किया। एलीफेंट कॉलेज में लिटरेरी एंड साइंटिफिक सोसायटी का निर्माण किया गया। प्रो. पैटर्न इसके अध्यक्ष बने और दादा भाई वित्त मंत्री। प्रत्येक 15 दिनों में एक बार मीटिंग होती थी। और उसमें समाज के दोषों को उनको दूर करने के सुझाव पर निबंध पढ़े जाते थे। उसके बाद बहस होती थी। तथा ठोस कदम उठाने के लिए प्रस्ताव पास किए जाते थे। पूर्व राजनैतिक तथा धार्मिक विषय गणित थे[5]। 4 अगस्त 1849 ई. में बहरामजी, खुर्शीद जी, गांधीजी, ने मीटिंग में स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर निबंध पड़ा और इस योजना को कार्यान्वित करने पर बल दिया। सभी

नवयुवकों को यह योजना पसंद आई। सभी युवक सदस्य स्वयं निशुल्क तथा वेतन पढ़ाई पढ़ाने को तैयार हो गए। कुछ सदस्यों ने अपने घर का एक कोना इस छोटी सी पाठशाला के लिए बना किराए के प्रयोग में लाने को अनुमति दे दी। कुछ सदस्यों ने पाठन सामग्री मंगवा दी। 2 माह की अल्पावधि में ही सात स्कूल, चार पाठशाला और तीन हिंदू छात्राओं के लिए स्थापित हो गए, जिनमें 44 पारसी तथा 22 हिंदू छात्राओं ने प्रवेश लिया[6]। ये उत्साही युवक 7 से 10 तक इन स्कूलों में पढ़ाते थे। दादा भाई स्वयं स्कूल के अध्यापक के रूप रहें। कहना न होगा कि उनका स्कूल अन्य सभी स्कूलों के लिए अनुकरणीय था। प्रारंभ में कुछ माता-पिता अपनी पुत्रियों को भेजने में कतराते थे, परंतु धीरे-धीरे उनका भय दूर हो गया और पाठशाला में छात्राओं की संख्या भी बढ़ी और आर्थिक सहायता भी मिलने लगी। वेतन पर पूरे समय के लिए अध्यापक नियुक्त किए गए। फिर तो गुजराती ध्यान प्रकाशक मंडली तथा मराठी ध्यान प्रकाशित मंडली ने स्त्री शिक्षा का कार्य अपने हाथों में ले लिया। शिक्षित छात्राओं ने मुंबई समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया। दादाभाई की पुत्रियों ने भी उच्च शिक्षा प्राप्त की। विवाह की उम्र बढ़ा दी गई और स्त्रियाँ सभी क्षेत्र में काम करने लगी। 1897 ई. में दादा भाई को लगा कि उनकी बेटी मुंबई में बाइसिकल से अस्पताल जाती है और उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने एक पत्र लिखकर बेटी को सलाह दी कि मेरे मस्तिष्क में विचार भी नहीं आया था कि यह बाइसिकल लड़की के लिए है। मुझे नहीं मालूम कि यह मुंबई की सड़कों पर यह पसंद करेगी या मुंबई की जनता उसका इस प्रकार से बाइसिकिल चलाना पसंद करेंगी। यह कितनी बार स्त्रियाँ इस प्रकार बाइसिकल पर जाती हैं। वह जनता में अपने प्रति किसी प्रकार की शंका पैदा करें क्योंकि उसका इलाज करना है और इसमें जनता का विश्वास प्राप्त करना अधिक आवश्यक है[7]। दादा भाई को वास्तव में पता नहीं था। 50 वर्षों में मुंबई की स्त्रियों ने कितनी उन्नत कर ली थी।

अंग्रेज सरकार द्वारा सुधार : 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में जब भारत में अंग्रेजों का प्रबंध जम गया तो अंग्रेज सरकार ने सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन करने का प्रयास आरंभ प्रारंभ किया। कुछ गवर्नर जनरल सुधारवादी थे। वे भारतीयों में सामाजिक समानता के पक्षपाती थे। लॉर्ड विलियम बेंटिक जब भारत में गवर्नर जनरल बनकर आया तो उसने भारतीयों की स्थित पर ध्यान दिया। सबसे प्रथम उसका ध्यान सती प्रथा की ओर गया। अंग्रेज सरकार के कुछ अफसरों ने भी सरकार से अनुरोध किया कि इस अमानवीय प्रथा को बंद कर दिया जावे। अंग्रेज और यूरोपियन लोग इस प्रथा को अमानवीय तो मानते थे परंतु कानून द्वारा इस प्रथा को बंद करने में भी चाहते थे[8]। उन्हें भय था कि कहीं इस प्रथा के विरोध में कानून बनाने से जनता विरोधी ना हो जाए। अत: पहले तो सरकार इस प्रथा को बंद करने के लिए कानून बनाने में चाहती रही इसलिए 1800 ई. तक निर्बाध रूप से चलती रही क्योंकि अंग्रेजों को भय था कि इससे जनता की धार्मिक भावनाओं को आघात पहुँचेगा और जनता में अंग्रेज सरकार के विरुद्ध बनाएंगे 1813 ई. में पहले यह आदेश जारी किया गया कि किसी विधवा को मादक वस्तुओं खिलाकर ना उसकी इच्छा के विरुद्ध होने को तैयार करना बंद किया जाए जाता है[9]।

जब लॉर्ड विलियम बेंटिक भारत के गवर्नर जनरल नियुक्त हुए तो कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने उनको हिदायत दी थी कि सती प्रथा को तुरंत यह शनै: शनै: बंद करने के उपाय सोचे जाएं। बेंटिंग स्वयं सुधारवादी थे। वे यह भी जानते थे कि शिक्षित वर्ग सती प्रथा के विरुद्ध है तो भी उसने सैनिक और असैनिक 49 अधिकारियों द्वारा जांच करवाई कि यह प्रथा किस प्रकार बंद की जाए तो 10 में से 9 पुलिस अधिकारी बंद करने के पक्ष में थे। 15 बड़े-बड़े अधिकारियों में से 8 इस पक्ष में थे और पाँच न्यायाधीश भी यही चाहती थे कि यह प्रथा बंद कर दी जाए। विलियम बेंटिक 1829 ई. में अपनी काउंसिल में एक नोट पेश किया कि सती प्रथा बंगाल, बिहार, और उड़ीसा तक विशेषकर कोलकाता डिविजन में प्रचलित है इन प्रांतों के लोगों में नहीं है कि विरोधी सरकार के लिए कोई खतरा उत्पन्न कर दे सैनिक अधिकारियों ने भी कहा कि यदि यह बंद कर दी जाए तो सेना में कोई हलचल नहीं होगी। आपका कहना था कि सरकार विरोधी तत्व ऐसे कानून के आधार पर लोगों

में राजद्रोह फैला देंगे परंतु फिर भी यह सरकार से सहमत हो गया। 4 दिसंबर 1829 को सती होना यह क्षति होने के लिए किसी को प्रेरित करना अपराध घोषित कर दिया गया और उसको हत्या के बराबर मान लिया गया मद्रास और मुंबई में भी ऐसे कानून जारी किए गए। फिर भी 800 हिंदुओं ने हस्ताक्षर करके इसके विरोध में एक प्रार्थना पत्र पेश किया और बैंक ने उत्तर दिया कि यदि प्रार्थी चाहे तो किंग इन काउंसिल में अपील कर सकते हैं तीनों की एक सभा हुई जिसमें प्रसिद्ध पंडितों ने आज्ञा का विरोध किया ब्रिटिश भारत में इस कानून का पालन व ब्रिटिश भारत के बाहर राजस्थान इस आदेश का तत्काल पालन नहीं हुआ। अंग्रेज सरकार राजस्थान में भी इस प्रथा को बंद करने लगी 1840 में भारत सरकार ने राजपूत जी को पत्र लिखा कि राजस्थान सरकार की रियासतों में से वास्तव में भी नरेशों को सती प्रथा की क्रूरता और दृढ़ता समझाई जावे और उन्हें सलाह दी जावेगी। यह क्रूरता बंद कर दी जाए[10]।

सुधारों के परिणाम

भारतीय समाज सुधारकों अंग्रेजी शिक्षा एवं अंग्रेज अफसरों के परिवर्तनों के फलस्वरूप समाज में नारी की स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय थी, परंतु उत्तरार्द्ध में इसकी स्थिति में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। स्त्री शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। लड़कियाँ लड़कों के बराबर शिक्षा प्राप्त की अधिकारी हो गई। शिक्षा के क्षेत्र में कोई भी क्षेत्र नारी शिक्षक शिक्षा से अछूता नहीं रहा तथा कुछ स्त्रियाँ भी निर्बाध रूप से डॉक्टर, नर्स, अध्यापिका, आज बढ़ने लगी[11]। पर्दा प्रथा कम हो गई। बाल विवाह अनमेल विवाह आदि कुरीतियों को समाज में बुरा समझा जाने लगा। स्वतंत्रता आंदोलन में नारियों ने भी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम किया था। लेकिन भारतीय जनसंख्या को देखते हुए अभी-अभी स्त्री शिक्षक कुल मिलाकर नग्ण थी। कुछ वर्गों की स्त्रियां नगरों में रहने वाली पर्दे से निकलकर शिक्षा प्राप्त कर रही थी, फिर भी निष्कर्ष स्त्री उत्थान की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी थी, यह शिक्षा और सुधार स्त्रियों के लिए अब दूर की कौड़ी नहीं रहा।

संदर्भ :

1. मधु नीमचे, स्वतंत्रता आंदोलन की विचारधारा, पृ. 11
2. जी0एन0एस0, राघवन अरुणा आसफ अली : एक संवेदनशील क्रांतिकारी, पृ. 42
3. जगतराम और हमारे स्वतंत्रता सेनानी, पृ. 78
4. बलबीर सक्सैना, भारत रत्न, पृ. 333
5. डॉ शिव कुमार अस्थाना, प्रात:स्मरणीय महात्मा गांधी, पृ. 58-59
6. वीरेंद्र कुमार, भारत छोड़ो आंदोलन 1942 के शहीद, पृ. 12
7. दैनिक जागरण 10 अप्रैल 1911, पृ. 18
8. श्वेत उत्पल भारतीय इतिहास के कुछ विषय, पृ. 363
9. एनी बेसेंट इंडिया ब्रांड एंड फ्री मद्रास 1917, पृ. 192
10. आशा रानी देवरा, महिलाएं और स्वराज, पृ. 146
11. पट्टाभि सीतारामय्या, द हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस, पृ. 11

❖❖❖

शिक्षा के माध्यम से महिलाओं में सशक्तीकरण : एक अध्ययन

❍ हसन बानो[1]
❍ अरुणा कुमारी[2]

संक्षिप्ति :

समाज ने शिक्षा को हमेशा एक ऐसे मुख्य द्वार के रूप में देखा है जिसके द्वारा व्यक्ति कार्य के लिए पात्रता समाज के लिए उपयोगी नागरिकता और वैयक्तिक उन्नयन हासिल करता है। महिलाओं के लिए शिक्षा की वैधता को स्वीकारना इस बात पर बल देता है कि शिक्षा द्वारा महिलाओं को सशक्त बनाया जा सकता है। यह लंबे समय से सुविचारित था जिसके द्वारा महिलाओं के संघर्ष की पुनरावृत्ति को रोका जा सकता था जिससे वे शिक्षा के अनिच्छुक अनुदान के खिलाफ वैधता के लिए संघर्ष की अगुवाई करें। औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में महिलाओं का प्रवेश 19वीं सदी के मध्य से ही प्रारंभ हो गया था परंतु इसको व्यापक स्वीकृति 20वीं सदी के मध्य में ही मिली। शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए नीतियां निर्मित करने में सरकार की गति धीमी थी परंतु समाज-सुधारकों और महिला संगठनों ने सभी स्तरों पर महिला शिक्षा की सार्थकता को अनुभव किया। महर्षि कार्वे महात्मा गांधी महर्षि टैगोर के प्रयास और साथ ही कुछ अन्य संगठन जैसे ऑल इंडिया वुमेंस कांफ्रेंस ने न केवल शिक्षा में महिलाओं के प्रवेश की वकालत की बल्कि यह भी घोषणा की कि शिक्षा महिलाओं को उनकी भूमिकाओं का पालन करने और उपयोगी नागरिक बनाने में मदद करती है। अभी भी यहाँ तक कि स्वतंत्रता के बाद भी भारतीय महिलाओं की भूमिका को लेकर द्वंद्व है। महिलाएँ शिक्षा की हकदार हैं इस बात पर सभी सहमत हैं परंतु किस प्रकार की शिक्षा महिलाओं के लिए उपयुक्त है इसको लेकर द्वंद्व है।

भारतीय गणराज्य का संविधान 1950 में पेश हुआ जिसमें शिक्षा पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वहन करने के कई महत्त्वपूर्ण प्रावधान थे। अनुच्छेद 45 के अंतर्गत शिक्षा की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी राज्य को सौंपी। राज्य को संविधान लागू होने के 10वर्षों के अंदर सभी बच्चों को अनिवार्य और नि:शुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयत्न करना होगा जब तक बच्चे 14वर्ष की उम्र न पूरी कर लें। अनुच्छेद 16 ने लिंग के आधार पर जनरोजगार में भेदभाव को वर्जित किया और अनुच्छेद 15(3) ने राज्य को महिलाओं एवं बच्चों के कल्याण और विकास के लिए विशेष प्रावधान निर्मित करने अधिकार दिया। इस प्रावधान ने विभिन्न स्तरों पर लड़कियों की शिक्षा के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए राज्य की कार्यप्रणाली/परिस्थिति में शिथिलता दी और विशेष व्यवस्था के

1. असिस्टेंट प्रोफेसर (समाजशास्त्र विभाग), डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, वाराणसी
2. असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

समर्थन का आह्वान किया। 19वीं सदी के आगे स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं द्वारा राष्ट्र निर्माण के आवश्यक उपकरण के रूप में शिक्षा की महत्ता को ध्यान में रखा गया परंतु आश्चर्यजनक है कि संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था के विस्तृत पुनरीक्षण का उत्तरदायित्व स्वतंत्रता के दो दशक बाद ही लिया गया। यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन या राधाकृष्णन आयोग समीक्षा करने वाली पहली समिति थी जिसने 1949 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। माध्यमिक शिक्षा (मुदलियार) आयोग ने 1952-53 में एवं महिला शिक्षा पर राष्ट्रीय कमेटी (दुर्गाबाई देशमुख) ने 1958-59 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इन रिपोर्टों ने लड़के और लड़कियों के पाठ्यक्रम में विभिन्नता की संस्तुति की जिसे इंडियन एजुकेशन (1966) के द्वारा समर्थित किया गया जो कोठारी कमीशन के नाम से जाना जाता है। इसका अनुसरण 1968 में शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति के निर्माण के समय किया गया। दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति कार्य योजना के साथ 1968 में आई। कोठारी आयोग की संस्तुतियाँ व राष्ट्रीय शिक्षा नीति की संस्तुति पुनः 1992 में संशोधित हुई आयोग ने यह उल्लेख किया कि शिक्षित महिला के बिना शिक्षित समाज संभव नहीं है इसलिए महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए।

शिक्षा आयोग (1964-66)

इसे सामान्यतया कोठारी आयोग के नाम से जाना जाता है। इस आयोग ने समाजवादी धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक समाज के लिए राष्ट्रीय विकास की प्रक्रिया में शिक्षा की भूमिका व उद्देश्यों को गहराई से परखा, हंसा मेहता और दुर्गाबाई देशमुख समितियों का समर्थन किया और अवलोकन किया कि आधुनिक संसार में महिलाओं की भूमिका परिवार से और बच्चों के पालन-पोषण दूर होती जा रही है। अब महिला अपने लिए जीविका वृत्ति (कैरियर) चयन कर रही है और अपने दृष्टिकोण से समाज के विकास के लिए पुरुषों के साथ जिम्मेदारियों का समान बंटवारा कर रही है। यह वह दिशा है जिस तरफ हमें बढ़ना है। स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं ने पुरुषों के साथ-साथ संघर्ष किया। यह समान साझेदारी महिलाओं की अज्ञानता भुखमरी और खराब स्वास्थ्य की स्थिति के विरुद्ध लड़ाई में भी निरंतर बनी रहनी चाहिए।

आयोग को शिक्षा के सभी स्तरों की और इसके विविध आयामों की जांच-पड़ताल का आदेश मिला पर यह अत्यंत दुःखद है कि इस आदेश के बावजूद भी रिर्पोट का केवल दो पेज ही महिला शिक्षा को समर्पित रहा और केवल कुछ अनुच्छेद (पैराग्राफ) ही महिला उच्च शिक्षा से संबंधित थे। रिपोर्ट की शुरुआत इस चर्चा के साथ हुई कि महिलाओं की उच्च शिक्षा को विस्तारित करने के लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता है हालांकि सामान्य अनुभव यह था कि महिलाएँ विश्वविद्यालयी शिक्षा में प्रवेश कर रही हैं इसलिए अब हमें इसके बारे में ज्यादा चिंतित नहीं होना चाहिए। आशावादिता की इस टिप्पणी के साथ आयोग ने महिलाओं की उच्च शिक्षा को विस्तारित करने के लिए दो सुझाव दिए। पहला, वित्तीय सहयोग का प्रावधान और दूसरा, लड़कियों के लिए छात्रावास।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि शिक्षा पर गठित सभी आयोग चाहे उनकी अध्यक्षता पुरुषों द्वारा या महिलाओं द्वारा गांधी या गैर-गांधीवादी द्वारा की गई हो परंतु वे सभी के सभी महिलाओं की समानता, राष्ट्रीय विकास में उनकी सहभागिता और महिला शिक्षा के क्षेत्र और प्रतिमान के बीच संबंध जोड़ने में असफल रहे। फिर भी भारतीय समाज में एक बड़े परिवर्तन में शिक्षित महिलाओं की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी परंतु इस रास्ते में घोर अंतर्विरोध था। यद्यपि उच्च शिक्षा में महिलाओं की संख्या में तीव्र वृद्धि हो रही थी परन्तु अभी भी महिला वर्ग में साक्षरता का प्रसार शोचनीय था। शिक्षित महिलाओं ने आकांक्षाओं की मिश्रित भावनाओं का प्रतिनिधित्व किया जो पहचान के विरोधाभास से शिक्षित होती थी और मूल्य व सामाजिक मान्यताओं को आत्मसात किये हुई थी। इसी समय महिलाओं ने स्वतंत्रता के दो दशक में ही राष्ट्रीय प्रगति को पहचान दी और जनजीवन के विविध क्षेत्रों में नेतृत्व प्रदान किया है।

विभिन्न स्तरों पर महिलाओं की शिक्षा

स्वतंत्रता से अब तक देश में महिला साक्षरता दर में नि:संदेह व्यापक अभिवृद्धि हुई है। सन् 1951 में महिला साक्षरता मात्र 9 प्रतिशत थी, जबकि 1991 में यह 40 प्रतिशत के लगभग पहुंच गई, किंतु पुरुष साक्षरता की तुलना में यह तस्वीर बहुत उत्साहजनक नहीं है। सन् 1951 में 27.16 प्रतिशत पुरुष साक्षर थे, जबकि 1991 में प्रतिशतता 64.13 थी। विमल रामचंद्रन की प्रारंभिक शिक्षा के संदर्भ में टिप्पणी अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण है। वह कहती हैं कि "विगत दस वर्षों में संपूर्ण प्रारंभिक शिक्षा का महत्त्व एक अपरिहार्य सामाजिक आवश्यकता बन गई है। सतत् अंतरराष्ट्रीय दबाव ने प्रारंभिक शिक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहायता और ऋण की उपलब्धता को आवश्यक बनाया है। इससे प्रशासकों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। फलत: गैर-सरकारी संगठनों द्वारा बड़े पैमाने पर प्रारंभिक शिक्षा से जुड़े कार्यक्रमों और नवोदित प्रयोग किए जा रहे हैं। ग्रामीण भारत में 120 रुपया प्रति व्यक्ति आय से कम आय वर्ग में 54 प्रतिशत लड़के स्कूल जा रहे हैं, जबकि बालिकाओं की उपस्थिति मात्र 31 प्रतिशत है। शहरी क्षेत्रों में इसी आय समूह में 64 प्रतिशत लड़के स्कूल जा रहे हैं जबकि 51 प्रतिशत बालिकाएँ कक्षाओं में उपस्थित हो रही हैं। आय बदलने के साथ ही कक्षाओं में उपस्थिति सतत् रूप से बढ़ रही है, किंतु ग्रामीण अंचलों में 15 से 19 वर्ष की बालिकाओं की स्कूलों में उपस्थिति मात्र 37.4 प्रतिशत है, जो कि यह प्रदर्शित करता है कि शेष 63 प्रतिशत बालिकाओं का या तो विवाह हो जा रहा है या वे अपनी माताओं की मदद कर रही हैं जिससे कक्षाओं में उनकी उपस्थिति दुरूह बनती जा रही है। विशेष रूप से नवयुवतियों की स्थिति अत्यंत भयावह है, एन.सी.ए.ई.आर. / एच.डी.आई. के सर्वेक्षण में यह रहस्योद्घाटन किया गया है कि आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु जैसे विकसित क्षेत्रों में जहाँ पंजीकरण अत्यंत उच्च है, 12 से 14 वर्ष की उम्र के विशेषकर बालिकाओं में ड्राप आउट की घटनाएँ ज्यादा हैं। यह परिस्थिति निश्चित रूप से अत्यंत ही चिंताजनक है। लड़के विद्यालय से निकलने के बाद कार्य की दुनिया में प्रवेश कर रहे हैं या अपना समय यायावर जैसे भ्रमण में व्यतीत कर रहे हैं। असंगठित क्षेत्रों में बालिकाएं कार्य की दुनिया में प्रवेश करती हैं, संभवत: उनकी शादी भी हो जाती है और मां भी बन जाती हैं, समाज के इस वर्ग की तरफ ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक होगा। इस समस्या का एक पक्ष मानसिक होने के साथ ही साथ इसका संबंध मानसिक अवसाद से भी हो सकता है।

उच्च शिक्षा में महिलाएँ

साक्षरता एवं प्रारंभिक शिक्षा सामाजिक और मानव विकास की आवश्यकताओं को पूर्ण करती है और यह बेहतर स्वास्थ्य तथा आय के स्रोत के निर्माण में एक साधन है और उच्च शिक्षा महिलाओं के सामाजिक प्रगति और गतिशीलता को सुनिश्चित करती है एवं बौद्धिक तथा वैयक्तिक विकास की ओर ले जाती है। प्राय: अनेक बार आभिजात्य संस्कृति को निर्मित करती है। इस प्रकार उच्च शिक्षा को वैयक्तिक पारिवारिक और सामाजिक गतिशीलता के लिए एक महत्त्वपूर्ण पहलू के रूप में देखा जाना चाहिए। महिला शिक्षा से जुड़ी एक विरोधाभास यह रही है कि साहित्य और प्रारंभिक शिक्षा जो महिलाओं के बड़े समूह से जुड़ा है, एक धुंधला परिदृश्य प्रस्तुत करता है, जबकि उच्च शिक्षा में महिलाओं की उपस्थिति का प्रतिचित्र उतना दु:खद नहीं है।

करुणा चानना ने उल्लेख किया है कि 1950-51 में महिलाओं का अनुपात कुल पंजीकरण में 10.4 प्रतिशत था, जबकि यह 1980-81 में बढ़कर 27.2 प्रतिशत हो गया और 1996-97 में 52 प्रतिशत हो गया। स्वतंत्रता के तुरंत बाद का दशक विकास कार्यों और तकनीकी गतिविधियों से परिपूर्ण था, इसमें शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता थी। फलत: राष्ट्रीय एजेंडा की मदद से उच्च-मध्य वर्ग तथा उच्च जातियों की महिलाओं के लिए उच्च शिक्षा का प्रवेश द्वार खुल गया।

करुणा चानना का अभिमत है कि अस्सी के दशक से सुनिश्चित नीतियों के अभाव और नारी शिक्षा

अभिवृद्धि के लिए कदमों के अभाव से नारी शिक्षा की प्रगति धीमी हुई। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की प्रगति का एक अन्य संकेतांक उच्च शिक्षा के छात्रों में महिलाओं समानुपातिक उपस्थिति को माना जा सकता है। अस्सी के दशक से ही बालिकाओं (महिलाओं) का वाणिज्य की दिशा में झुकाव बढ़ा है। सन् 1975-76 में वाणिज्य संकाय में महिलाओं का प्रतिशत कुल पंजीकरण का 6.6 प्रतिशत था, 1986-87 में यह अनुपात 19.7 प्रतिशत तक पहुंच गया और नब्बे के दशक तक लगभग 25 प्रतिशत था। यद्यपि कला संकाय निरंतर महिला छात्रों को आकर्षित करता रहा है, किंतु विज्ञान और शिक्षा शास्त्र संकायों में छात्राओं की संख्या में गिरावट चिंता का विषय है। इसी तरह औषधि विज्ञान में 50 के दशक में 16 प्रतिशत छात्राएँ थीं नब्बे के आसपास उनकी संख्या में सराहनीय वृद्धि हुई है।

क्षेत्रीय विभिन्नता

शिक्षण के विविध विधाओं में परिवर्तन के संकेत के अतिरिक्त क्षेत्रीय विभिन्नता भी महिलाओं में उच्च शिक्षा के प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण है। वितरण का सामान्य तरीका इस प्रकार है - हिंदी भाषी उत्तरी राज्यों की तुलना में दक्षिण के चार राज्य शिक्षा में बेहतर नामांकन के लिए दर्ज हैं। हाल में, नब्बे के दशक के मध्य में गोवा, केरल और पंजाब में 50-52 प्रतिशत के मध्य नामांकन दर्ज हुआ जबकि बिहार, अरुणाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में बहुत ही कम, 18 से 26 प्रतिशत के मध्य नामांकन दर्ज हुआ। इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम के आँकड़ों से यह प्रकट होता है कि 1991 में इंजीनियरिंग में 4,419 लड़कियाँ नामांकित थीं जिसमें से 1989 दक्षिणी राज्यों से थीं, 608 पश्चिमी राज्यों से, 224 पूर्वी राज्यों से जबकि 267 उत्तरी राज्यों से थीं। इस विभिन्नता के कुछ कारण निम्नवत् हैं।

अन्य राज्यों की तुलना नामांकन दर्ज करने वाले राज्यों में महिलाओं की निम्न परिस्थिति महिलाओं को शिक्षित करने के लिए देर से किए गए प्रयास, प्रौद्योगिक शिक्षा और अर्थव्यवस्था का धीमा विकास एवं राजनैतिक पर्यावरण जिम्मेदार है। जब हम अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में उच्च शिक्षा के प्रसार को देखते हैं तो हमारे सामने जो चित्र उभरता है, वह बहुत विषम है। 1996-97 में संपूर्ण भारत के अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति के पुरुष छात्रों की संख्या बहुत कम थी। अनुसूचित जाति की महिला छात्र केवल 24 प्रतिशत थीं जबकि अनुसूचित जनजाति की महिलाएं कुल नामांकन में महज 0.9 प्रतिशत थीं।

गैर-सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.)

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि महिलाओं की उच्च शिक्षा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। प्रारंभिक शिक्षा में भी महिलाओं की संख्या बढ़ रही है परंतु विशेष रूप से महिलाओं में साक्षरता दर निराशाजनक है। शिक्षा में लड़कियों के नामांकन के अतिरिक्त गंभीर समस्या शिक्षा के मार्ग में आने वाले अवरोधों की है। यद्यपि सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा (बच्चों के लिए पांच साल की शिक्षा) को महत्ता को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया, परंतु इसकी प्रगति प्रभावशाली नहीं है। प्रारंभिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार और कुछ निधिकरण (फडिंग) एजेंसियों के द्वारा कुछ कार्यक्रम प्रारंभ किए गए परंतु प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् लड़कियों के लिए आगे शिक्षा प्राप्त करने की समस्या गंभीर हो गई। जैसा कि रामचंद्रन ने उल्लेख किया है कि विशेषकर ग्रामीण भारत में, लड़कियों में और उन बच्चों में जो सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर है एवं वे जो सुदूर इलाके में रहते हैं, में प्राइमरी विद्यालयों तक शिक्षा ग्रहण करने के बाद आगे पढ़ाई की निरंतरता दर में कमी है। अब इस बात को स्वीकार कर लिया गया है कि भारतीय समाज के ये कमजोर वर्ग शैक्षिक सुविधाओं तक पहुँचने में समर्थ नहीं हैं या अगर वे नामांकित हो जाते हैं तो मांग और पूर्ति से संबंधित तथ्यों के कारण विद्यालयों से उनका अलग हो जाना (ड्राप आउट) ज्यादा होता है।

ग्रामीण भारत में 15–19 आयु वर्ग की 30.6 प्रतिशत लड़कियाँ ही माध्यमिक विद्यालयों से आगे शिक्षा प्राप्त कर पाती हैं जबकि बालकों का यह प्रतिशत 49.6 है। उसी प्रकार शहरी क्षेत्रों में 63.8 प्रतिशत लड़कियाँ माध्यमिक विद्यालयों में है।

जब इस प्रकार के आँकड़ों को आय स्तर में तुलनात्मक रूप से देखा जाता है तो यह स्पष्ट होता है कि कम आय समूह के कई परिवार अपनी लड़कियों को शिक्षित करने में असमर्थ होते हैं। लिंग असमानता पूर्णतया उल्लेखनीय है। परिवार में संसाधनों के अभाव में लड़कियों की शिक्षा सर्वप्रथम प्रभावित होती है। मानव विकास के लिए दो आयु वर्ग 6–10 वर्ष और 12–18 वर्ष, बहुत महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि 6–10 आयु वर्ग के लोगों को शिक्षा प्रदान करने के लिए कुछ प्रयास किए गए हैं परंतु इसकी तुलना में 12–18 आयु वर्ग काफी उपेक्षित है। एन.जी.ओ. के लिए शिक्षा, समुदाय के विकास कार्य में प्रवेश का साधन है। भारत के कई एन.जी.ओ. विभिन्न प्रकार का कार्य कर रहे हैं। जैसे मध्य प्रदेश में किशोर भारती और एकलव्य संगठन, महाराष्ट्र में प्रोपेत (Propet) संगठन राजस्थान के तिलोनिया में शोध केंद्र (Research Centre) उन प्रारंभिक एन.जी.ओ. में से हैं जिन्होंने महिलाओं की शैक्षिक आवश्यकता को महत्वपूर्ण माना, जो कि महिलाओं के सीखने का नवीन मार्ग बना। ये एन.जी.ओ. नवनिर्मित महिला संगठनों को आधार देने के साधन के रूप में भी काम कर रहे हैं। शिक्षा के लिए एन.जी.ओ. का यह प्रयास उनकी भूमिका की एक शतक प्रस्तुत करता है न कि इससे सभी एन.जी.ओ. के पूरे कामों का विवरण मिलता है।

निजीकरण और महिलाओं की शिक्षा

लैंगिक भेदभाव वाले समाज में, जहाँ लड़कियों की शिक्षा को कम प्राथमिकता मिलती है, वहाँ शिक्षा के मूल्य पर लड़कियों का काम करना, शिक्षा के लिए किए जा रहे प्रयासों को हतोत्साहित करने वाला है। इस दिशा में होने वाले कई अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि गरीब परिवारों में महिला शिक्षा पर सबसे पहले आपत्ति आती है। विगत पाँच दशकों की अवधि में शिक्षा पर होने वाले व्यय के प्रतिशतत: आवंटन के कुछ आँकड़े देखने पर हमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दिखते हैं। उदाहरण के लिए 1970 के दशक में केंद्र में जहाँ तकनीकी शिक्षा पर 28 प्रतिशत खर्च किया, वहीं यह 1990 के दशक में घटकर 19 प्रतिशत हो गया। हालांकि, प्रारंभिक या माध्यमिक शिक्षा पर व्यय में केंद्र ने स्वंय द्वारा शिक्षा पर किए जाने वाले व्यय में महत्त्वपूर्ण कमी की।

1992 की अवधि इसलिए विशिष्ट है कि इस दौरान नई आर्थिक व्यवस्था को अपनाया गया जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था को उदारीकरण की ओर मोड़ दिया। प्रारंभिक शिक्षा को प्रचारित करने वाले कई कार्यक्रम विदेशी निधिकरण (फंडिंग) से मदद पाते हैं। उदाहरण के लिए जिला प्राइमरी शिक्षा परियोजना के लिए तकरीबन 85 प्रतिशत निधि विदेशी दानदाताओं से आती है। वैसे यह निश्चित है कि सभी शैक्षिक कार्यक्रम जो महिलाओं और लड़कियों को लक्ष्य करके चलाए जाते हैं, वे सभी विदेशी दाताओं से मदद पाते हैं। संरचनात्मक व्यवस्था के प्रारंभ की अवधि में विविध क्षेत्रों में सार्वजनिक व्यय की कमी का पालन किया जा रहा था, जिसमें शिक्षा भी शामिल है। उच्च शिक्षा में यह कमी पूर्णतया स्पष्ट है। वर्तमान में यू.जी.सी. द्वारा विभिन्न विश्वविद्यालयों के रखरखाव से हाथ खींचने के परिणामस्वरूप, विश्वविद्यालयों को मदद हेतु निजी क्षेत्र की ओर देखना पड़ रहा है। फीस में वृद्धि और प्रति व्यक्ति फीस लेने की प्रवृत्ति महिलाओं की शिक्षा को जोखिम में डाल रहा है। संक्षेप में शिक्षा का निजीकरण आर्थिक रूप से कमजोर स्तर की लड़कियों और महिलाओं की शिक्षा को विशेषकर प्रभावित करता है।

निष्कर्ष

बहरहाल शिक्षा को एक ऐसे गुण के रूप में देखा जाता है जो व्यक्ति में कमाने की क्षमता को बढ़ाती है जो ज्ञान और संचार का प्रवेश द्वार है। यह व्यक्ति में ऐसे मूल्यों को जन्म देती है जो लैंगिक न्याय के विषय में सामाजिक रूपांतरण और स्थायित्व से संबंधित है जिसकी वजह से महिलाओं की शिक्षा को मौलिक

आवश्यकता माना जाता है। प्राथमिक शिक्षा ने महिलाओं को सूचना एवं आत्मविश्वास प्रदान करके समर्थ बनाया जबकि उच्च शिक्षा ने उन्हें प्रोत्साहित किया जिससे वे किसी भी ऐसे क्षेत्र या व्यवसाय में प्रवेश करने का विश्वास रखती है जो इससे पहले महिलाओं के लिए खुले नहीं थे। फिर भी शिक्षा का मार्ग इच्छा शक्ति पर नहीं है वरन् यह निर्भर है शैक्षणिक संस्थाओं की उपलब्धता, पारिवारिक मदद और शिक्षा की गुणवत्ता पर। शिक्षा के आगामी चलन को देखने से यह पता चलता है कि लड़कियों की शिक्षा की मांग बढ़ सकती है, ऊँचे या संपन्न रहन-सहन वाले परिवार अपनी लड़कियों की शिक्षा के लिए छोटी अवधि पाठ्यक्र या पत्राचार पाठ्यक्रम कराने की ओर उन्मुख होंगे, परंतु लंबे समय तक ऐसा होने से यह लड़कियाँ शैक्षणिक संस्थाओं में उपलब्ध अनिवार्य शैक्षणिक सामाजिक अंत:क्रिया से वंचित हो जाएंगी। इससे यह प्रतीत होता है कि लड़कियों की शिक्षा के मूल्य को कम करने की नीति पर गंभीर रूप से विचार करना चाहिए जिससे लड़कियाँ लिंग असमानता की शिकार न बन पाए। यह सचमुच ही एक दु:खद स्थिति है जब माँ अपनी बेटी को विद्यालय / कॉलेज भेजना चाहती है पर नहीं भेज पाती क्योंकि उसे घरेलू काम में अनिवार्यत: मदद करनी है। 19वीं सदी में हम महिलाओं को अपने पति की बेहतर सहयोगी बनाने के लिए महिला शिक्षा की वकालत करते थे, बीती सदी में शिक्षा महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए थी आज हम महिला द्वारा भारत की नागरिक होने के कारण शिक्षा के अधिकार की वकालत करते हैं।

संदर्भ :

1. आर.सी.डब्ल्यू.एस. (RCWS) खंड 21 नं. 2-3 विंटर इश्यू 2001, इंप्लीकेशन ऑफ द न्यू इकोनॉमिक पॉलिशिस् फॉर वुमेंस इक्विलिटी इन हाइयर एजुकेशन ।
2. एन. वी. वर्गीश (2000), रिफार्मिंग एजुकेशन फाइनेशिंग सेमिनार अनवाइबिल यूनिवर्सिटी, नं. 494, अक्टूबर।
3. करुणा चानना (1988), सोशलाइजेशन एजुकेशन एंड वुमेन, एक्सप्लाएटेशन इन जेन्डर आइडेंटिटि, ओरिएंट लांगमैन, नई दिल्ली।
4. रेखा वजीर (2000), द जेंडर गेप इन बेसिक एजुकेशन, एन.जी.ओ. एस चेंज एजेंट, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया (1950), विश्वविद्यालय शिक्षा कमीशन की रिपोर्ट, नई दिल्ली।
6. गैराल्डीन फोर्ब्स (1998), वुमेन इन माडर्न इंडिया, द न्यू कैंब्रिज हिस्ट्री इन इंडिया, IV2 कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पब्लिशड इन साउथ एशिया बाय फाउंडेशन बुक्स, नई दिल्ली।
7. जिल कॉनवे और सूसन बॉरम्यू (1993), द पॉलिटिक्स ऑफ वुमेन एजुकेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन प्रेस, यू.एस.ए.।
8. नीरा देसाई एंड मैत्रेयी कृष्णा राज (1987), वुमेन एंड सोसाइटी इन इंडिया, अजंता पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
9. नीरा देसाई (1999), फाइव डेक्ड ऑफ हाइयर एजूकेशन ऑफ वुमेन इन इंडिया, यह शोध पत्र उच्च शिक्षा पर राष्ट्रीय सेमिनार में पढ़ा गया, एस. एन.डी.टी., यूनिवर्सिटी, मुंबई।
10. निवेदिता मेनन (2021), नारीवादी निगाह से अनुवाद नरेश गोस्वामी, राजकमल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
11. भारती रे और अपर्णा बसु (1999), संपा. 'फ्रॉम इंडिपेंड्स टूवर्ड फ्रीडम, इंडियन वुमेन सिंस 1947, ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली।
12. रत्ना एम सुदर्शन (2000), एजुकेशनल स्टेट्स ऑफ गर्ल्स एंड वुमेन, द एमरजिंग सिनेरियो।
13. विमला रामचंद्रन (1999), विसिवल बट अनरिचड सेमिनार कॉन्टिन्यूइंग कंसर्न, नं. 474, फरवरी ।
14. सुधांशु भूषण (2022), द फ्यूचर ऑफ हायर एजुकेशन इन इंडिया, स्प्रिन्गेर रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
15. शुभ्रा परमार (2015), नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार, ओरियंट ब्लैकस्वान पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

❖❖❖

मुस्लिम होने के मायने : सूखा बरगद

❍ चितरंजन कुमार[1]

तमाम शहर आग की लपेट में है भागिए
हुजूर कब से मीठी नींद सो रहे हैं जागिए
समां है रोजे - हस्र का, निगाह तो उठाइए
लगी हुई है आँख पर जो दूरबी हटाइए

– शहरयार 'खतरे का सायरन'

आज की स्थिति भयावह है। धर्म राजनीति से और राजनीति धर्म से गुथ गई है। दोनों के इस गठबंधन में राजनीति धर्म को अपने निहितार्थों के लिए इस्तेमाल के साथ-साथ इससे संबंधित रोज नए-नए प्रयोग कर रही है। इस प्रयोग के तहत धार्मिक मंच से किसी खास राजनीतिक विचारधारा वाली पार्टी के समर्थन और किसी दूसरी पार्टी के विरोध में आम जनता को भ्रमित करना और भावुकता को बढ़ाना आम चलन है। धार्मिक भावुकता को राजनीतिक भावुकता में प्रक्षेपित करके स्थिति को भयावह बना दिया गया है। हिंदुस्तान की राजनीति में धर्म केंद्र में आ गया है। इसी का परिणाम यह है कि मुसलमानों का जो धार्मिक नेतृत्व है, वह भी खुतबे-फतवे द्वारा अपने अनुकूल पार्टी के समर्थन में हवा बनाने की मशक्कत करते हैं, इससे फायदा कम, नुकसान ज्यादा होता है। यह नुकसान वैसे मुसलमानों के खाते में आता है, जिनकी सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति सुदृढ़ नहीं रही है। उन्हें मुस्लिम होने के मायने यही समझाये जाते हैं कि वे अपने धर्म का संरक्षण करें। ऐसे मुसलमान एक विशेष सांकेतिक कोड का निर्माण कर अलग-थलग पड़ जाते हैं। मुसलमान अपनी अलग पहचान बनाए रखने की कोशिश में हलकान वे रेगिस्तान के शुतुरमुर्ग जैसे हो गए हैं जो रेत में गर्दन छिपाकर समझता है कि सुरक्षित हो गया है। ऐसी सोच मुसलमानों को प्रगतिशील बनने से तो रोकता ही है, साथ ही भारत के विकास में उनके निश्चित योगदान से भी उन्हें दूर कर देता है। जो आजादी के बाद मुसलमानों के मन में अपने धर्म और देश प्रेम को लेकर जो द्वन्द्व शुरू हुआ, उसे मंजूर एहतेशाम 'सूखा बरगद' में व्यक्त करते हैं। उपन्यास अपने विस्तृत कैनवास पर समाज उन समस्याओं के माकूल समाधान की ओर बढ़ता है। विभाजन के बाद भारतीय मुसलमानों के सामने सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न उनके शैक्षणिक आर्थिक स्थिति को लेकर थी। विभाजन के साथ उच्च आय वर्ग मुसलमान पाकिस्तान जा चुके थे और मध्य आयवर्गीय मुसलमान भारत में रह गए थे। कुछ उच्चवर्गीय मुसलमान भारत में रह गए थे, उनकी आर्थिक स्थिति निरन्तर खोखली होती जा रही थी क्योंकि जमींदारी प्रथा तो पहले ही समाप्त हो चुकी थी। उपन्यास में वकील अब्दुल वहीद खाँ की स्थिति ऐसी ही

1. सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, ललित नारायण तिरहुत महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

है। प्रगतिशील मुसलमान होते हुए भी आर्थिक रूप से पंगु होने के कारण अपने बच्चों के लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर पाते हैं। फिर भी रशीदा अंग्रेजी में एम० ए० और सुहेल इंजीनियरिंग की पढ़ाई करता है। सुहेल के पिता अब्दुल वहीद के लिए धर्म ईमान की चीज है। वह इंसान को तहजीब और संस्कृति से जोड़ती है, दूसरों की मदद करने की प्रेरणा देती है। जबकि सुहेल के लिए धर्म उसकी पहचान है। (आइडेंटिटी) भारत में उसे दूसरे दर्जे का नागरिक समझा जाता है। वह कहता है, "यही कि यह इंडिया है और मैं यहाँ का एक सेकेंड क्लास सिटीजन ! मैं चाहे जो भी सोचूँ, जो भी करूँ, जिनका मुल्क है, उनकी चलेगी!"[1] यदि हर मुसलमान ऐसा ही सोचने लगे तो भारत का सबसे बड़ा अल्पसंख्यक समुदाय भारतीय विकास की गति में अपना योगदान नहीं दे पाएगा। एक प्रश्न यह भी है कि कोई मुसलमान यह सोच ही क्यों रहा है? कहीं न कहीं उसे दोहरे मापदण्ड का शिकार होना पड़ा है इसलिए। परंतु मंजूर एहतेशाम स्पष्ट कहते हैं कि, "टुच्चेपन की बात सोचने के लिए हिंदू होना, या मुसलमान होना जरूरी नहीं ! टुच्चापन तो खुद अपने-आप में एक क्लास है। इस पर मुसलमान का लेबिल लगाकर केपिटलाइज करने की कोशिश मत करो !"[2] अबुल कलाम आजाद, बदरूद्दीन तैयबजी एवं सर सैय्यद अहमद खाँ के विचार मुसलमानों को धर्म की परिधि से बाहर निकालकर, प्रगतिशील भारत के साथ जोड़ने वाले थे। यही कारण है कि इनके आदर्श आज भी जीवित हैं।

मानव संसाधन के विकास का मुख्य साधन उसकी शैक्षणिक स्थिति उपन्यास में, अब्दुल वहीद भी मानते हैं कि मुसलमानों का विकास शिक्षा से ही हो सकता है। वह बच्चों के प्राथमिक शिक्षा के लिए मदरसों का विकल्प खोजते हुए कॉनवेंट (Convent) शिक्षा को बेहतर पाते हैं। शिक्षा में व्यापकता होनी चाहिए। हर सम्प्रदाय के लिए समाज में जगह होनी चाहिए। अब्दुल वहीद, सर सैय्यद अहमद खाँ के द्वारा किए गए शैक्षणिक कार्यों के प्रयासों से बेहद प्रभावित थे। वकील साहब मुसलमानों के लिए भी अंग्रेजी की शिक्षा को अनिवार्य मानते थे। मुसलमानों की तंग नजरी से बेहद नाराज होते थे। अब्दुल वहीद की दृष्टि व्यापक थी यही कारण है कि उस दौर में भी रशीदा को बी०ए० के बाद आगे बढ़ने को कहते हैं। साथ ही पत्रकारिता जैसी चुनौती से भरे कैरियर के प्रति प्रेरणा देते हैं। भले ही उनका जो हो परंतु अब्दुल साहब इसे स्वीकार करते हैं। आजादी के तुरंत बाद मुसलमानों के लिए हिन्दुओं के साथ हर क्षेत्र में कदम से कदम मिलाकर चलना कठिन था परंतु एहतेशाम जैसे उपन्यासकार इन चुनौतियों को ठेंगा दिखाते हैं। सीमित आय और नए शहर में बदलती जरूरतों के बीच रशीदा अपने लक्ष्य के प्रति अडिग रहती है। अपने पिता की विवशताओं का चित्रण करती हुई कहती है, "वैसे भी हम बढ़ते शहर के परिवर्तनों को कदम-से-कदम मिलाकर भले न चल पा रहे हों, बढ़ती दूरियों को देखते हुए हमारे पास अपनी सवारी भले न हो, नए शहर की नई रूपरेखा से मेल खाता हमारा पुराना मकान भले ही नए नक्शे पर न बन पा रहा हो, लेकिन अब्बू की कमाई हमारी रोज की जरूरतों के लिए काफी थी।"[3] रंशीदा जैसी बेटियों के कारण ही बेटी पैदा होने पर घरों में खुशियाँ मनायी जाती हैं। ऐसे तो किसी भी समाज में लड़कियों को उनके अधिकारों से वंचित रखा जाता है। मुस्लिम समाज में जहाँ पर्दा प्रथा की सख्ती है, वहाँ ज्यादातर लड़कियों को हाशिये पर ही रखा जाता है शानी ने अपने उपन्यास 'काला जल' में सल्लो आपा के माध्यम से इस भीषण त्रासदी को व्यक्त किया है। कमजोर आर्थिक स्थिति और मध्यवर्गीय पारिवारिक वर्जनाओं को सालिहा समझ नहीं पाती है और अन्ततः हँसती-खेलती सालिहा असमय मृत्यु की गोद में चली जाती है। 'ओस की बूँद' की शहला, 'आधा गाँव' की सईदा बहुत हद तक रशीदा की तरह है। ये आधुनिक भारत की मुस्लिम लड़कियाँ हैं जो कट्टरपंथी मुल्ला मौलवियों के विचारों को दर किनार कर घर की चहारदीवारी से बाहर, खुले आसमान में आ चुकी हैं। रशीदा अपने संस्कारों में भगवान सिंह के उपन्यास 'उन्माद' की पात्र आबिदा के निकट प्रतीत होती है। आबिदा मुस्लिम लड़कियों के लिए अलग मायने की तलाश करती है। 'सूखा बरगद' और 'उन्माद' में भले ही चालीस-पचास वर्षों का अन्तर हो परन्तु रशीदा और आबिदा के चरित्र माने जायेंगे।

उपन्यास, साहित्य का सशक्त कला माध्यम है। जीवन जगत की सच्चाईयों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत

करना उपन्यास का पहला लक्ष्य है। मंजूर एहतेशाम मानवीय जीवन की आन्तरिक अनुभूति को करीने से व्यक्त करते हैं। धार्मिक रूढ़ियाँ कोमल अनुभूतियों को दबा नहीं पातीं। यह अनुभूति एक से दूसरे में आँखों के माध्यम से संचारित होती हैं। प्रेम, धर्म और जाति के संकीर्ण गलियारे में कहाँ फँसता है। वह तो अपने में व्यापकता को समाहित करना चाहता है। रशीदा और सुहेल दोनों का पहला प्रेम हिन्दू लड़के विजय और लड़की गीता से क्रमशः होता है। हिन्दू-मुस्लिम प्रेम को सामाजिक मान्यता न मिलने के कारण वह बीच में ही दम तोड़ देता है। प्रेम में असफल होने के कारण सुहेल बिखर जाता है परंतु रशीदा नए तरीके से अपने आप को संगठित करती है। अब्दुल वहीद भले ही इनके विवाह को मंजूरी दे दें परंतु ऐसा करते ही वे समाज से बिलकुल कट जाते। यह बात सही है कि समाज में समानता लाने के लिए विवाह संस्कार की परंपरागत संस्कृति में परिवर्तन लाना होगा। परंतु विवाह जैसे गंभीर मुद्दे पर जाति के आधार पर ही परिवर्तन संभव नहीं है, धार्मिक आधार तो दिवास्वप्न जैसा होगा। हिन्दू-मुस्लिम में यदि विवाह संस्कार हो भी जाता है तो दोनों में से किसी एक को अपना धर्म परिवर्तन करना ही पड़ेगा। 'सूखा बरगद' में इस विषय पर विजय अपने विचार प्रकट करते हुए कहता है, "मुझे बताओ, है कोई मुसलमान माँ-बाप जो अपनी बेटी का हाथ हँसी-खुशी किसी हिंदू लड़के को थमा दे? घर बैठे-बैठे उनका बूढ़ा होना, बिना ब्याहे मर जाना कबूल कर लेंगे, मगर यह नहीं !" भारतीय सामाजिक संरचना में विजय के यह विचार बिलकुल सही प्रतीत होते हैं। सब के अपने-अपने कुनबे हैं, अपने मकड़जाल और हम उसी में निरंतर कैद होने की प्रक्रिया में हैं। कोई इससे बाहर आये भी तो कैसे ?

हिन्दू मुस्लिम वैमनस्यता का आधार मध्यकाल की जड़ों में है। जैसे-जैसे समय बीतता गया यह खाई और बढ़ती गई। भारत-विभाजन इसी वैमनस्यता का परिणाम है। आजादी के बाद हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द्र का दिखावा तब किया जाता है जब कोई बड़ी घटना घट चुकी होती है। सांप्रदायिकता अपना रंग कब दिखा जायेगा, यह केवल दंगा करवाने वाले को ही पता होता है।

उपन्यासकार यह प्रयास करते हैं कि इंसान से इंसान के फर्क के जो तरीके इजाद किये गये हैं या जिन लोगों ने किये हैं उन्हें नष्ट किया जा सके। 'राम मंदिर जैसे मुद्दे हमारे जीवन में कितना महत्व रखते हैं इसका निर्णय हम कर सके। धर्म के नाम पर घरों को जलाने का जो सिलसिला आजादी के बाद से चल रहा है उसे रोका जाये। सन् 1930 में जिन्ना ने तो एक पाकिस्तान की माँग की थी, 1947 के बाद भारत में ही कितने पाकिस्तान बन गये। इसके जिम्मेदार शायद अंग्रेज या जिन्ना जैसे नेता उतने नहीं हैं जितने कि हम हिन्दुस्तानी। एक स्थान पर उपन्यासकार कहते हैं, "बँटवारे से दस साल पहले से लेकर बँटवारे तक, जो इंसानी हकों की पायमाली, जुल्मों-जबरदस्ती और दुश्मनी मजहब के नाम पर देखने में आई, उसे देखकर लगा इंसानों के लिए इंसानों का बनाया कानून ही ज्यादा बेहतर हो सकता है। इस कानून में हिंदू-मुसलमान के बजाय एक बुनियादी इंसान का दुख-सुख समझने और परखने की गुंजाइश तो होगी, आसमानी जिंदगी और अगले जन्मों की जगह मौजूदा जिंदगी सही तरह गुजारने की हिदायतें तो होगी।"[5]

वास्तव में, सबसे अधिक कष्टदायक समस्या बार-बार होने वाले सांप्रदायिक दंगों की है। जो हिंदू-मुस्लिम एकता में तनाव पैदा करती है। एक रिपोर्ट के अनुसार 150 वर्षों की अंग्रेजी सरकार की तुलना में स्वतंत्र भारत में अधिक संख्या में और अधिक खतरनाक दंगे हुए हैं। पहले दोनों संप्रदाय इसका शिकार होते थे, लेकिन अब इनकी पकड़ में अधिकतर मुसलमान ही आते हैं। इसमें जान और माल की बर्बादी तो होती ही है, साथ ही यह पूरे सम्प्रदाय को कमजोर भी कर रहे हैं। कट्टरपंथी यह क्यों नहीं समझते कि मरने वाला इंसान ही होता है? यदि ऐसा वातावरण तैयार कर दिया जाए, जिसमें सांप्रदायिक दंगे ही न हों तो बेहतर होगा। अल्पसंख्यकों को भी यह समझना होगा कि वे बहुसंख्यकों के साथ कैसे सामंजस्य बैठाकर अमन-चैन के साथ रह सकेंगे। पीछे दो दशकों से मुसलमान होने का अर्थ आतंकवादी होना समझा जा रहा है। परंतु यह सच नहीं है। आतंकवाद

का घिनौना खेल वही खेल रहे हैं जिनके पास शिक्षा की व्यापक कमी है। वे अपने आकाओं द्वारा ठगे जा रहे हैं।

रिलीजस और कल्चरल आइडेंटिटी, उर्दू जबान को धर्म विशेष से जोड़कर देखना, शेरवानी-पाजामे में नजर आना, लम्बी दाढ़ी, तंग संकीर्ण गलियों में समूह के साथ रहना आदि-आदि ही क्या मुस्लिम होने के मायने हैं ? क्या मुस्लिम होने का अर्थ पर्दा-प्रथा और निकाह नामा ही रह गया है? इधर मुस्लिम होने का अर्थ दलित मुस्लिम होने से ही लगाया जा रहा है। यह स्थिति बहुत ही दुखदायी है। मुसलमानों के पवित्र ग्रंथ 'कुरान शरीफ' में सभी इंसान को एक समान माना गया है। तो भी यह जातियों और वर्गों में विभाजन केवल राजनैतिक फायदे के लिए किया जाने वाला षड्यंत्र है। मुसलमानों को केवल वोट बैंक समझना उनके साथ नाइन्साफी है। यह बात उन्हें भी समझनी चाहिए। संवैधानिक अधिकारों का इन्हें पूरा प्रयोग करना चाहिए। यह वह मार्ग होगा जिसपर चलकर ये अपने-आप को मेन इस्ट्रीम में ला सकेंगे। मुसलमानों को भी यह बात समझनी होगी कि जब हमारे खुदा ने हमें नहीं बाँटा तब हम चंद फायदे के लिए क्यों आपस में बँट रहे हैं। तथ्य तो यही बताते हैं कि इस्लाम में जन्म के आधार पर कोई बड़ा या छोटा नहीं है।

"Islam is an egalitarian religion which treats every man equal in status and privilages- All men are both equal and are ffo-springs of the same father and mother. They are created from the same elements and are subject the same principal and law. Birth does not determine the status of a man in society. Thus, the doctrine of caste is ideotogically contradictory to the basic treat of islam."[6]

तथ्यों के विपरीत दिशा में जाने के कारण ही इस्लाम रूपी बरगद भारत में सूख रहा है। वास्तव में, इस्लाम रूपी बरगद तो सूख ही नहीं सकता। क्योंकि कोई भी धर्म इंसानियत के विपरीत जा ही नहीं सकता। चंद मुट्ठी भर लोग जो अपने फायदे के लिए किसी धर्म को सुखाने का प्रयास कर रहे हैं, धर्म के आधार पर बाँट कर। वे सफल नहीं हो पाएँगे। मंजूर एहतेशाम हमें आगाह करते हैं कि पहले हम हिन्दुस्तानी हैं इसके बाद हम किसी जाति या मजहब के हैं। भारतीय धर्मनिरपेक्षता भारत की अमूल्य निधि है। वरिष्ठ आलोचक कुँवर पाल सिंह धर्मनिरपेक्षता के संदर्भ को स्पष्ट करते हुए राही मासूम रजा की चर्चा करते हैं। "राही मासूम रजा से दोस्ती का मतलब हुआ सही अर्थों में भारतीयता से दोस्ती। धर्म, भाषा, लिपि, कौम, संस्कृति, राष्ट्रीयता, देशप्रेम जैसी धारणाओं को राही ने सेक्युलर (धर्म निरपेक्ष) और डेमोक्रेटिक (जनवादी) समाज को हिन्दुस्तानियत से बखूबी जोड़ा है।"[7]

'सूखा बरगद' जिस समय की कहानी कहता है, वह हमेशा प्रासंगिक रहेगा। समसामयिक स्थितियों से जुड़ा इस उपन्यास का कथानक इसे श्रेष्ठ उपन्यासों की श्रेणी में ले जाता है। उपन्यासकार उपन्यास के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि मुस्लिम होने का अर्थ एक हिन्दुस्तानी होना भी है।

सन्दर्भ :

1. सूखा बरगद, मंजूर एहतेशाम, राजकमल प्रकाशन, पृ. 119
2. वही, पृ. 120
3. वही, पृ. 95
4. वही, पृ. 121
5. वही, पृ. 69
6. F. R. Faridi and M. M. Siddiqui, The Social Structure of Indian Muslims, Institute of Objective Studies, New Delhi, 1992, Page No. 22.
7. https://hindi.newsclick.in

❖❖❖

संजीव की कहानियों में बदलते पारिवारिक मूल्य

❍ संदीप कुमार[1]

समकालीन कथा-साहित्य में संजीव बहुचर्चित एवं यथार्थवादी रचनाकार हैं। इनका कथा-साहित्य आम जनमानस की गाथा का जीवंत दस्तावेज है। कथा-साहित्य के क्षेत्र में कहानी जन्मकाल से ही यथार्थवादी देखी जाती रही है। प्रेमचंद से लेकर समकालीन कहानीकारों ने जीवन यथार्थ के विभिन्न रूप-रंगों के चित्र को अपनी कहानियों में उकेरा है। संजीव एक ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने अपने समय की आँखों देखी घटनाओं को अपनी कलम से कहानी का शक्ल दिया है। संजीव ने आजादी के उपरांत भारतीय समाज के यथार्थ को बड़ी गंभीरता से अनुभव कर सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्तर पर मानव-संघर्ष को अपने विवेक की कसौटी पर कसकर उसे लेखन के क्षेत्र में अभिव्यक्त किया है। संजीव का कहानी साहित्य मानवीय संवेदनाओं का प्रकाश पुंज है, जो मानव विभाजन की त्रासदी, कथा-व्यथा को प्रस्तुत करते हैं। वर्तमान समाज मूल्य-संकट से जूझ रहा है। संजीव की कहानियाँ तीन दशकों के आजाद भारतीय मानस के कैनवास पर उभरे पारिवारिक मूल्यों का जीवंत दस्तावेज है।

मूल्यों के बिना हम प्राणी तो कहला सकते हैं पर मानव नहीं। मानव का मान मूल्यों पर निर्भर करता है। मनुष्य को मनुष्य बनाने में मूल्यों की अहम भूमिका है। 'मूल्य' को एक शब्द में कहा जाये तो 'होना चाहिए' उसके लिए प्रयुक्त होगा। शोषण, अत्याचार, रूढ़ियाँ, वर्ग-भेद, मानव-मानव में विभेद मूल्य के बाधक तत्व हैं, जो कि मानव के मूल्यों को स्थापित करने में अवरोध उत्पन्न करते हैं। सहजता और समान अधिकार में मूल्य प्रतिपादित होता है। वर्तमान समाज में मनुष्य भौतिक विकास और सांस्कृतिक, आध्यात्मिक उन्नति की जड़ता तथा ह्रास के बीच तालमेल नहीं बैठा पा रहा है, जिसके कारण मानव के भावनात्मक और वैचारिक क्षेत्रों में तनाव की स्थिति उत्पन्न हुई और मूल्यों के संकट की स्थिति प्रबल हो गई है। वर्तमान पारिवारिक मूल्यों का तेजी से ह्रास हो रहा है, जीवन के आदर्श बदल रहे हैं, व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्धों में परिवर्तन हो रहा है। संजीव समाज में रहकर भोगे हुए यथार्थ का चित्रण अपनी कहानियों में करते हैं। 'परिवार' सामज की सबसे महत्वपूर्ण इकाई है। परिवार के बिना सामज की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। 'समय, समाज और संस्कृति' परिवार के लिए अहम हैं। आधुनिक समय में संयुक्त परिवार की कल्पना थोड़ी खोखली दिखलाई पड़ती है। अनादि काल में परिवार यानी दादा-दादी, चाचा-चाची, माँ-बाप और बच्चे हैं, वहीं वर्तमान दौर हम मनुष्यों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि हमारी मनोदशा संयुक्त परिवार से अलग होकर एकल परिवार की परिधि में आ अटकी है।

---

1. *अतिथि प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, रेवेंशॉ विश्वविद्यालय, कटक, ओड़िशा।*
Mob: 09614620164, Email: sandeepasn92@gmail.com

स्वतंत्रता के बाद ही पारिवारिक ढांचे में भी बदलाव आया, अमूमन यह देखा गया है कि एकल परिवार की कल्पना पाश्चात्य संस्कृति की देन है। आज इसका प्रभाव संपूर्ण विश्व पर छा गया है, संयुक्त और एकल परिवार का ढांचा एक दूसरे से बिल्कुल अलग है। परिवार में पारिवारिक जिम्मेदारियों और कर्तव्यों का भार भी परिस्थिति अनुसार बदलते रहता है। संयुक्त परिवार में काम का बोझ कम रहता है, यहाँ पारिवारिक सदस्यों में एक-दूसरे के प्रति प्रेम, दया, करुणा का भाव अधिक प्रखर रूप में होता है। वहीं एकल परिवार में खुद ही सभी कार्यों का निर्वहन करना पड़ता है, जिस कारण उनमें एकाकीपन, संत्रास की भावना घर कर जाती है। जो अपनापन और सुख-शांति संयुक्त परिवार में है उसकी कमी एकल परिवार में देखने को मिलती है। अमूमन इनके यहाँ संयुक्त परिवार और एकल परिवार की संपूर्ण विवरण कहानियों में मिलता है। परिवार के मामले में संजीव की कहानियाँ थोड़ा तीखा रुख अपनाती हैं। इनके यहाँ पारिवारिक मूल्यों में हो रहे परिवर्तन और उपयोगितावादी संस्कृति के चलते पारिवारिक बिखराव साफ-साफ उजागर होता है। भारतीय संस्कृति 'मातृदेवो भव, पितृ देवो भव' की सोच के तहत माता-पिता को भगवान का दर्जा प्राप्त है। समय दर समय यह संस्कृति कई कारणों से विघटित हुई है। पहले परिवार में तीन पीढ़ियाँ एक साथ निवास करती थीं, पर अब परिवार का मूल्य विघटित होकर पति-पत्नी और बच्चे तक में सिमट गया है। जीवन की व्यापकता और आर्थिक परिस्थितियों के कारण पारिवारिक मूल्यों में बदलते समय के साथ बदलाव आ गया है। अब तो रक्त-संबंधों में भी अलगाव की स्थिति आ गई है। परिवार का बिखराव कई अर्थों में समाज के लिए नुकसानदायक है। परिवार के संदर्भ में श्यामाचरण दुबे का मानना है कि, "प्रत्येक मानव समाज अनेक सामाजिक समूह में विभक्त होता है। इन समूहों में विभाजित व्यक्तियों की पारस्परिक सामाजिक संबंध सुनिश्चित श्रेणियों में बंटे और परंपराओं से नियंत्रित होते हैं। प्रत्येक सामाजिक ढाँचा अनेक संस्थाओं और समितियों में गुंथा रहता है।..... मानव की सामाजिक संस्थाओं में परिवार एक आधारभूत और सर्वव्यापी संस्था है। संस्कृति के सभी स्तरों में चाहे उन्हें उन्नत कहा जाए या निम्न, किसी न किसी प्रकार से का पारिवारिक संगठन अनिवार्यत: पाया जाता है।"[1] परिवार अब समष्टि से व्यक्तिनिष्ठा की ओर रुख कर चुका है, जिसमें व्यक्तिगत विकास संयुक्त परिवार के अपेक्षा अधिक सुविधाजनक जान पड़ती है। परिवार मनुष्यों के सामूहिक जीवन यापन का एक आधार है, जहाँ उसका जन्म-मृत्यु, लालन-पालन, भरण-पोषण, शिक्षा-संस्कृति आदि का विकास होता है। परिवार परंपराओं से प्राप्त विचारों और अनुभवों को अपने आगामी पीढ़ी को सौंपता है।

संजीव की कहानी 'लोडशेडिंग' बदलते हुए पारिवारिक मूल्यों की शिनाख्त करते हुए एकल परिवार की स्थिति का चित्रण करती है। वैसे तो परिवार में सदस्यों के रहने से पारिवारिक माहोल खुशहाल बना रहता है। वर्तमान समय ने रिश्तों की गर्माहट को कम कर दिया है जिस कारण घर के सभी सदस्य अपनी अपनी दुनिया में व्यस्त हैं। एक छत के नीचे रहते हुए भी किसी का भी एक दूसरे के साथ कोई साहचर्य नहीं है, "हम सह-अस्तित्व के उस दौर में हैं जहाँ सह-अस्तित्व गौरव नहीं मजबूरी बन चुका है। विभिन्न ग्रहों की तरह बिना एक-दूसरे से टकराए हम अपने-अपने कक्षों में विचार रहे हैं।"[2] वहीं परिवार में भईया-भाभी और उनके दो बच्चे, शीला और वाचक सभी हैं पर उनसे उनका रिश्ता बस दिखावे के लिये है। असल में उनमें एकाकीपन घर कर चुका है। सभी लोग बस किसी तरह रिश्तों के बोझ को ढोये जा रहे हैं, "दरअसल संबंधों को हम जी नहीं रहे हैं, महज निबाहे जा रहे हैं। भैया मुझे और शीला को निबाहते-निबाहते थकने लगे हैं। इसे शीला भी समझती है, मैं भी। ऊपर से हम सौम्य, शिष्ट हैं, मगर अंदर ही अंदर चोर निगाहों से एक-दूजे को देखने लगे हैं।"[3] विवेच्य सन्दर्भ में रिश्तों में आ रहे बिखराव को दिखलाया गया है, जहाँ किसी तरह से अपने दायित्वों को पूरा करना है। जब हम मनुष्य जीवन में व्याप्कता की तलाश में भागते हैं तो हमारा परिवार में अलगाव आना शुरू हो जाता है। भारतीय परिवार में लड़कों से बड़ी आशा रहती है कि जब उनके उनका मकाम मिल जाये

तो वो अपने माँ-बाप का सहारा बनेगें। आधुनिक समाज में अमूमन बच्चे, माँ-बाप को दोषी मानने में तनिक भी संकोच नहीं करते। वहीं बच्चे कितना भी माँ-बाप के साथ दुर्व्यवहार करें, पर वे कभी उनका अहित नहीं करते। बच्चों के उत्थान-पतन में ही उनकी सारी खुशियाँ, अभिलाषा समाई रहती है।

समाज, समय और संस्कृति का हमेशा से ही मानव संबंधों पर खासा प्रभाव पड़त रहा है। 'निष्क्रमण' कहानी में परिवार के सभी सदस्य अपनी अपनी जीवन चर्या में इतने मशगूल हो जाते हैं कि उन्हें आपसी संबंधों में कोई मिठास ही नजर नहीं आता। समय के साथ रिश्तो का यूँ बिखरना पारिवारिक मूल्यों की क्षति करता है, "हम लोग जहाँ तक जा चुके हैं, वहाँ से लौटकर आना न हमारे लिए संभव है, न तुम्हारे लिए। नियति ने हम दोनों को भाई-भाई बना दिया, मुझे और सीमा को पति-पत्नी, पर रिश्ते महज खून से नहीं होते, सिर्फ इसी बहाने भाई-भाई, पिता-पुत्र या भाई-भाई के रिश्ते ता जिंदगी नहीं ढोए जा सकते। अंधमोह और घिसी परंपराओं को ओवरकम करते ही पाते हैं कि हमारी आत्मा के ताल पर बहुत-से दिल धड़क रहे हैं- तुम्हारे भी, हमारे भी। मुझे अपना नया गुरुत्व-केंद्र फिर से ढूँढ लेना है और तुम्हें भी ..।"[4] जैसे-जैसे हमारे अंदर अर्थ की शक्ति बढ़ती जाती है, हम अपनी बुनियादी जमीन से खुद को ऊपर उठने लगते हैं। विकास होना गलत नहीं है पर इतना भी विकसित नहीं होना चाहिए कि अपनों के प्रति मानवीयता ही खत्म हो जाये। वहीं सविता जैन का मानना है कि, "स्वातंत्र्योत्तर भारत का एक नवीन परिवर्तित रूप में हमारे सामने आता है। जहाँ एक ओर परंपरा से चले आ रहे संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा था और दूसरी ओर सामाजिक-पारिवारिक संबंधों के परंपराबद्ध रूप में परिवर्तन आ रहा था। परंपरा से विच्छिन्न होकर तथा अभी प्राचीन मानव-संबंधों के मोहपाश से मुक्त होकर आज का व्यक्ति अधिकाधिक आत्म-केंद्रित होता जा रहा है। ताकि पिता-पुत्र, माँ-बेटी, पति-पत्नी या भाई बहन जैसे निकटतम संबंधों में भी जैसे एक अजनबीपन समाता जा रहा है। जो एक दूसरे के पास रखते हुए भी बहुत दूर कर देता है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की यह महत्वपूर्ण परिवर्तन था और इसने समसामयिक कहानीकारों को बहुत अधिक आकर्षित किया।"[5]

वक्त के साथ रिश्तो के महत्व में भी बदलाव आने लगा है। 'माँ' कहानी वर्तमान समय की पारिवारिक विसंगति को बखूबी बयां करती है। जहाँ परिवार के सदस्य माँ के साथ सिर्फ स्वार्थ के लिए जुड़े हुए हैं। परिवार में माँ-बाप, भाई-बहन सभी लोग हैं, पर माँ को छोड़कर गाँव में कोई नहीं रहता। भाई-बहन शहर में जाकर अपनी एक अलग ही दुनिया बसा लिए हैं। माँ को अपने बच्चों से अधिक आकांक्षा नहीं है। वह बस यही चाहती है कि उसके बच्चे जहाँ रहे, खुश रहे, सुखी रहें। जब बच्चे शहरी चकाचौंध में मशगूल हो जाते हैं तो वह अपने माँ-बाप को भूल जाते हैं। यह उपेक्षा की स्थिति बड़ी ही दयनीय है, "हम तीनों भाई-बहन ने तब तक परिवार को परिवार से छिटककर अलग-अलग शहरों में अपनी-अपनी दुनिया बसा ली थी। माँ की लालसा थी कि हम तीनों, बारी-बारी से ही सही, उनके साथ रहें, मगर यह संभव न था। छुट्टियों में या खुशी-गम में हम शरीक हो पाते, वह भी एक तरह से रस्मी तौर पर ही।"[6] आज-कल युवा पीढ़ी इस भटकाव में जी रही है कि परिवार को हम सिर्फ पैसे मुहैया करवा देंगे तो उनकी सारी जिम्मेदारियाँ खत्म। परिवार केवल पैसों का मोहताज नहीं होता, वह अपनी अपनत्व से पुष्पित पल्लवी और आनंदित होता है। आजकल परिवार की परिकल्पना केवल पति-पत्नी और बच्चे तक में सिमट गई है। माँ-बाप तो परिवार की संरचना से बाहर निकाल दिये गये है। आज कल के बच्चे अपने माँ-बाप को बोझ समझने लगे हैं। 'माता-पिता को अगर जीवनयापन में तकलीफ हो रह है तो वो उसके समाधान के लिये नौकर-चाकररख लें। युवा पीढ़ी का मानना है कि 'हम सब आते-जाते ही राहेंगे, छोड़ा तो नहीं न' बस यही सोच पारिवारिक मूल्यों का हनन करती है। परिवार केवल एक सदस्य से नहीं निर्मित होता है बल्कि जीवनयापन के लिये एकजुटता जरूरी है।

संजीव ने आधुनिक समाज में पल रहे स्वार्थवादी मानसिकता की पोल खोल दी है। जहाँ रिश्ता केवल महज

निभाया जाता है। परिवारिक सदस्यों मे रिशतों को जीना महज छलावा बन गया है, मनुष्य बस किसी तरह अपना कोरम पूरा करता है। रिश्ता अगर सही ढंग से निभ जाये तो बहुत अच्छा, नहीं तो भगवान ही जाने। वर्तमान युग में बदलते हुए जीवन मूल्यों की शिनाख्त करती है 'माँ' कहानी। विजय शंकर का माँ से केवल खुद की जीवनयापन में प्रयोग की जाने वाली जरूरी चीजों से जैसे दाल-चावल, तेल आदि भर से है। राशन की बोरिया बाँधते ही वो घर से नौ-दो ग्यारह हो जाते हैं। माँ के तबीयत-पानी तक बात पूछने का उनके पास तनिक भी समय नहीं रहता। माँ से उनका रिश्ता बस जरूरत भर का रह गया है। विजय, शंकर अपना और अन्य सदस्यों के लिए माँ को बस एक राशन की दुकान की तरह समझता है, विजय का यह बातें पारिवारिक स्थिति के दर्द को व्यक्त करता है, "राशन चुकने पर हम रात-बिररत आते, महीने-दो महीने का गेहूँ, चावल, दाल, तेल, घी आदि लेकर मुँह अँधेरे ही शहर को निकल पड़ते। मेरे बाद शंकर भैया आते, फिर काका, फिर अजय, फिर दूसरे लोग! सबों का राशन तैयार कर अलग-अलग पहले से रख देती माँ। अपनी जरूरत भर रुकते हम। पारिवारिक कलंक की शर्म के चलते हम सभी अपने सम्मान लेकर मुँह अँधेरे ही निकल पड़ते। पीछे-पीछे माँ बाँसवारी तक आती। हम उनके पाँव छूते, वे होठों ही होठों में कुछ बुदबुदातीं-शायद आशीर्वाद जैसा कुछ और हमें धुंधलके में दूर जाते हुए देखीतीं।"[7] माँ-बाप ने विजय और शंकर को अच्छी शिक्षा मुहैया करवाई, उनका करियर बनाया परंतु बदले में उन्हें क्या मिला उपेक्षा की जिंदगी। 'माँ' कहानी टूटते हुए पारिवारिक मूल्यों का चित्रण करता है। ऋतु अपने पति के आय से अपनी और अपने बच्चों की अभिलाषाओं की पूर्ति नहीं कर पाती, जिस कारण वो परिवार और माँ-बाप की देखभाल को बोझ समझती है। विजय द्वारा पिता के अस्वस्थ हो जाने पर किये जा रहे खर्च से खासा नाराज होती है, ऋतु अपने बहु होने के दायित्वों से मुँह मोड़ते हुए कहती है कि, "यह तो खैर मनाओ कि अपने पापों की गठरी लेकर वह वहीं पड़ी है यहाँ बाबूजी को देखने आने वालों का खर्च ढोते-ढोते हम तो दोहरे हो गए। सारा शौक उड़ गया हमार,मुर्दा हो गए हम मुर्दा। वैसे मुर्दे पर एक मन क्या, सौ मन क्या! रो-गाकर ढो ही लेंगे मगर उनके पापों का बोझ, ना भैया ना, वह हमसे नहीं ढोया जाएगा?"[8] परिवार के प्रति इस प्रकार की अमानवीयता मानवता को शर्मसार करती है। जहाँ उन्हें बुढ़ापे में माता-पिता का सहारा बनना चाहिए था, वहीं वह तो अपना अपना पत्ता साफ करने में लगे पड़े हैं।

वर्तमान समय टूटते हुए पारिवारिक मूल्यों दौर है, जहाँ रिश्तो के बदलने में तनिक भी समय नहीं लगता। 'हत्यारा' कहानी में मानवीय संवेदनाओं की तीव्रता से क्षय हो रही स्थिति को उजागर किया गया है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने माँ-बाप को बस एक रबर स्टैंप की तरह बना दिया है। प्रदीप ने करियर बनाने में माता-पिता के साथ मोहल्ले तक ने अपने अपने तरफ से अपना योगदान दिया। नौकरी पाने के बाद प्रदीप का रंग बदल गया। प्रदीप विवाह करता है पर माँ-बाप को बताना जरूरी नहीं समझता है। माँ-बाप को जब विवाह की बात की जानकारी पड़ती है तब उन्हें शौक लगता है, "हमें तब लगा जब हमें प्रदीप की शादी के रिसेप्शन का कार्ड मिला। यह क्या ! माँ-बाप से हम देखते-देखते मेहमानों में बदल गये। उसे अपनी कंपनी के लिए फुर्सत है और माँ-बाप के लिये फुर्सत नहीं। फोन नहीं कर सकता! यह कैसा रिश्ता है, कैसी नौकरी!"[9] माता-पिता अपनी संतानों के लिए कितना भी त्याग कर ले बस संतान उनको बस कर्तव्य समझता है। प्रदीप द्वारा माता पिता के साथ किये गये सौतेले व्यवहार से पारिवारिक मूल्यों का क्षरण होता है। आज स्थिति यह है कि संयुक्त परिवार की कल्पना केवल ग्रामीण अंचल में ही दिखलाई पड़ती है। वहाँ तीन-चार पीढ़ियाँ आपस में मिलकर रहते हैं और वो एक-दूसरे के सुख-दुख में पूर्ण रूप से अपनी सहभागिता करके खुद का सौभाग्य समझते हैं। किंतु अब भौतिकतावादी दृष्टि ने त्याग और तपस्या की परंपरा लगभग खत्म कर दिया है। इस भौतिकतावादी सोचने प्रदीप को अपने परिवार का हत्यारा बना दिया है। 'हत्यारा' कहानी में प्रदीप अपने माँ-बाप और भाई को छोड़कर एक कंपनी में नौकरी करने के लिये विदेश चला जाता है। पाश्चात्य संस्कृति के हाव-भाव

ने प्रदीप का अपनों के प्रति मानवीय संवेदना में बदलाव ला दिया। माँ-बाप बच्चों को पढ़ा लिखा कर नौकरी करने विदेश तो भेज देते हैं पर जब उन्हें अपने बच्चों की जरूरत महसूस होती है तब वे किसी न किसी प्रकार का बहाना बनाकर अपना पल्ला झाड़ लेते हैं। प्रदीप के घर में डाकुओं द्वारा हमला होता है, इसकी जानकारी दिए जाने पर जो जवाब वापस आता है उसे देखकर पारिवारिक मूल्यों में हो रहे बिखराव का स्पष्ट प्रमाण दिखलाई पड़ता है। बलविंदर प्रदीप को कहता है आपका पूरा परिवार माँ-बाप और भाई डाकुओं द्वारा मार डाले गये हैं जिसपर प्रदीप बनविन्दर बैंक का एकाउंट नंबर माँगता और कहता है कि "जो हुआ, वह बहुत दु:खद है। मैं इतना मर्माहत हूँ कि व्यक्त नहीं कर सकता! लेकिन तत्काल आना मेरे लिए संभव नहीं, कंपनी का अरबों रुपए डूब जायेगा। वैसे भी आकर क्या होगा! हालात के मद्देनजर एक उपकार की प्रार्थना है, तुम्हारे अकाउंट में एक लाख जमा करवा दे रहा हैं। पूरे सम्मान के साथ मेरे परिवार की अंत्येष्टि हो। हम पति-पत्नी स्वयं आकार उनकी अस्थियाँ प्रयाग, काशी, हरिद्वार में प्रवाहित करेंगे। बाकी पैसा तुम रख लेना।"[10] माता-पिता परिवार को आजकल की युवा पीढ़ी व्यर्थ और अनावश्यक समझती है। आज रिश्ते कच्चे धागे की तरह हो गए हैं जहाँ ममता, त्याग, प्रेम आदि मूल्यों का कोई महत्व नहीं है।

निष्कर्षत: संजीव ने अपने कहानियों में समाज के उदात्त मान्यताओं की आवश्यकता को दिखाया है। समाज में हो रहे असंतुलन के कारण परिवार, स्त्री जीवन, सामाजिक असमानता आदि में विखरते मूल्यों को संजीव की कहानियों ने वास्तविक रूप दिया है। समाज में हो रहे मूल्य परिवर्तन और उसमें आया रहे विखराव के कारण हमारी अगली पीड़ी विनाश के गर्त में जा रही है। संजीव अपनी कहानियों के माध्यम से इन्ही मूल्यों को बचाने की कोशिश करते हैं या यूँ कहें, भावी पीढ़ी को बचाने की कोशिश करते हैं।

संदर्भ :

1. दुबे, डॉ. श्यामचरण, मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1960, पृ. 99
2. संजीव, संजीव की कथा यात्रा : पहला पड़ाव, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 186
3. वही, पृ. 186
4. संजीव, संजीव की कथा यात्रा : दूसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 230
5. देशमुख, डॉ. रमेश, आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2016, पृ. 89
6. संजीव, संजीव की कथा यात्रा : तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 144
7. वही, पृ. 146
8. वही, पृ. 146
9. संजीव, झूठी है तेतरी दादी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ. 50
10. वही, पृ. 53

❖❖❖

मोटे अनाज के स्वास्थ्य लाभ

❍ प्रो. (डॉ.) आशा[1]

आज भारत सरकार मोटे अनाज के उत्पादन एवं प्रयोग पर काफी जोर दे रही है। स्वच्छ भारत अभियान, मेक इन इण्डिया, खुले में शौच से मुक्ति, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, अन्तरराष्ट्रीय योग दिवस, फिट इण्डिया मूवमेण्ट और अब अन्तरराष्ट्रीय मिलेट वर्ष। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपने कार्यकाल में ऐसे-ऐसे विषयों को लेकर लोगों को जागरुक किया है जिनसे लोग अवगत तो बहुत पहले से थे लेकिन उन्हें भूलते जा रहे थे। आज जब बच्चे दो मिनट की मैगी पर पल रहे हैं, वहाँ गत दिनों प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने लोगों से आह्वान किया कि वे अपने भोजन में मोटे अनाज को शामिल करें। उन्होंने कहा कि स्वास्थ्य की दृष्टि से ये मोटे अनाज उच्च गुणवत्ता और पोषक तत्वों से युक्त है। मोदीजी ने कहा कि जी-20 की विभिन्न बैठकों में आने वाले अतिथियों के भोजन में कम से कम एक व्यंजन मोटे अनाज का होना चाहिए। अन्य सरकारी बैठकों के मेन्यू में भी इन अनाजों को शामिल किया जाना चाहिए। प्रधानमंत्री महोदय ने इसे जन-आन्दोलन बनाने की अपील की। इस सम्बन्ध में जागरुकता के लिए उन्होंने स्कूल कॉलेजों में कार्यक्रम आयोजित करने का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि सभी सांसद भी अपनी तरफ से आयोजित किये जाने वाले भोज में इसे शामिल करें।

मोटे अनाज की खेती करने वाले ज्यादातर छोटी जोत वाले किसान हैं। इसकी खपत बढ़ने से ऐसे किसानों को आर्थिक लाभ होगा। भारत की पहल पर संयुक्त राष्ट्र ने 2023 को अन्तरराष्ट्रीय पोषक अनाज वर्ष के रूप में मनाने की घोषणा की है। अन्तरराष्ट्रीय पोषक अनाज वर्ष 2023 का औपचारिक शुभारम्भ समारोह इटली के रोम में संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन ने किया था। मोटे अनाज बढ़ती उम्र वाले बच्चों, ज्यादा शारीरिक मेहनत करने वाले कामगारों तथा वृद्ध लोगों के लिए जरुरी हैं। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य कृषि संगठन के अनुसार 2020 में विश्व में 3.04 करोड़ टन मोटे अनाज की उपज हुई थी। इसमें भारत का योगदान 1.5 करोड़ टन यानी 41 प्रतिशत रहा। पिछले साल (2021-22) देश में 1.59 करोड़ टन मोटे अनाज की पैदावार हुई। इसकी सबसे ज्यादा खपत बिहार और असम में होती है। मोटे अनाज की सबसे ज्यादा खेती राजस्थान, महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और झारखण्ड में होती है। फिलहाल कुल उपज का एक प्रतिशत ही निर्यात होता है।

मोटा अनाज पोषण की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण खाद्यान्न है, जो हमारे भोजन की थाली से दूर होता

1. प्रोफेसर, पं.दी.द.उ.रा.बालिका महाविद्यालय, सेवापुरी, वाराणसी।

जा रहा है। मोटे अनाज के तौर पर ज्वार, बाजरा, रागी, मंडुआ, जौ, कोदो, सांवा, कांगनी जैसे अनाज शामिल किये जाते हैं। इन्हें मोटा अनाज इसलिए कहा जाता है क्योंकि इनके उत्पादन में बहुत अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ती है। यह कम पानी एवं कम उपजाऊ भूमि में भी उगाये जा सकते हैं। गेहूँ, चावल की तुलना में मोटे अनाज के उत्पादन में पानी की खपत भी बहुत कम होती है। साथ ही साथ यह पर्यावरण के लिए भी काफी बेहतर माने जाते हैं। एक किलोग्राम धान के उत्पादन में करीब चार हजार लीटर पानी की आवश्यकता होती है, जबकि मोटे अनाज के उत्पादन में नाम मात्र पानी की आवश्यकता होती है। कम संसाधन, कठोर परिस्थिति एवं कम समय में फसल तैयार हो जाना और लम्बे समय तक स्टोर किया जा सकना आदि बातें इन्हें एक बढ़िया विकल्प बनाते हैं। पुराने समय में मोटे अनाज की हिस्सेदारी कुल खाद्यान्न के उत्पादन में 40 प्रतिशत थी लेकिन आज के समय में मोटा अनाज हमारी थाली से दूर होता जा रहा है। मोटे अनाज के स्थान पर हमने अपनी थाली में ऐसे अनाज को स्थान दे दिया है जिनका पोषणात्मक मूल्य तुलनात्मक रूप से कम है।

मोटे अनाज के फायदे

- *ऊर्जा प्राप्ति के उत्तम स्रोत :* मोटे अनाज ऊर्जा प्राप्त करने के लिए उत्तम साधन के रूप में प्रयोग किए जा सकते हैं साथ ही ये वजन कम करने में भी सहायक सिद्ध होते हैं; क्योंकि इन्हें खाने के बहुत देर बाद तक भूख नहीं लगती जिसके कारण वजन नियन्त्रित करना आसान हो जाता है।
- *स्वस्थ और नियमित पाचन :* पाचन शक्ति बढ़ाने में मोटा अनाज लाभकारी सिद्ध होता है। इनमें मौजूद डाइट्री फाइबर आँतों के स्वास्थ्य को बढ़ावा देने का काम करते हैं। खमीरीकृत जौ में एक ऐसा तत्व पाया जाता है जो कब्ज से राहत दिलाने में सहायक होता है। जौ में उपस्थित बीटा ग्लूटेन तथा ब्यूटेरिक एसिड भी पाचन क्षमता बढ़ाने में सहायक माने जाते हैं।
- *प्रतिरक्षा में सुधार* : शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में भी मिलेट का उपयोग फायदेमंद साबित होता है। जौ एवं जौ की पत्तियों का प्रयोग प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करने में मददगार सिद्ध होता है। जिससे सर्दी-खांसी जैसी समस्या में भी राहत मिलती है। सामा के चावल में जिंक की भरपूर मात्रा पायी जाती है जो शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में सहायता करती है। जिसके कारण शरीर वायरस एवं बैक्टीरिया के चपेट में आने से बचा रहता है।
- *रक्त शर्करा का स्तर नियन्त्रित करना* : ज्वार का नियमित सेवन रक्त शर्करा स्तर को सामान्य एवं सामान्य से कम करने का कार्य करता है। इसलिए मधुमेह के रोगियों के लिए भी इसका सेवन लाभकारी सिद्ध होता है। मोटे अनाज में लो ग्लाइसेमिक इंडेक्स होने के कारण रक्त शर्करा स्तर को नियन्त्रित करने में मदद मिलती है।
- *वजन कम करने में सहायक* : जौ का दलिया खाने से वजन तेजी से नियन्त्रित होता है। जौ में एण्टी ओबेसिटी तत्व जैसे- डायट्री फाइबर, पॉलीसेकराइड्स, फाइटोस्टेरॉल्स आदि पाये जाते हैं। डॉक्टर के मुताबिक बीटा-ग्लूकेन जो सॉल्यूबल फाइबर का एक प्रकार है, भूख को नियन्त्रित करने में मदद करता है, जिससे वजन घटाना आसान हो जाता है। रागी का उपयोग भी वजन नियन्त्रित करने में सहायक साबित हो सकता है। इसमें ट्रिप्टोफैन नामक एमिनो एसिड पाया जाता है, जो भूख को कम करके वजन नियन्त्रित करता है। इसके साथ ही रागी एक हाई फाइबर युक्त आहार है जो मोटापे के जोखिम को कम करता है।
- *शरीर को डिटॉक्सीफाई करने में मदद* : शरीर को डिटॉक्स करना हमारे लिए बहुत जरूरी होता है। डिटॉक्सीफिकेशन से मतलब है शरीर से विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालना। शरीर से विषाक्त पदार्थों

को बाहर निकालने से न केवल हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहता है बल्कि वजन भी नियंत्रण में रहता है। शरीर को डिटॉक्स करने के लिए बहुत सारे घरेलू उपाय बताये जाते हैं। इसमें से एक बहुत आसान और सस्ता उपाय है, मोटे अनाजों का सेवन। मोटे अनाज जैसे- ज्वार, बाजरा, जौ, मक्का इत्यादि में डाइट्री फाइबर प्रचुर मात्रा में होते हैं जिसके कारण पाचन संस्थान से सम्बन्धित अंग न केवल अपना कार्य सुचारू रूप से करते हैं बल्कि आँतों की क्रियाशीलता बढ़ने के कारण ठोस व्यर्थ पदार्थों का निष्कासन सरलता से हो जाता है। इसी प्रकार जौ में कुछ ऐसे तत्व पाये जाते हैं जो मूत्र संबंधी परेशानियों से छुटकारा दिलाने में सहयोग करते हैं। इस प्रकार उत्सर्जन संस्थान की क्रियाशीलता को मोटे अनाज के सेवन से बढ़ाया जा सकता है और षरीर को आसानी से डिटॉक्स किया जा सकता है।

- *कैंसर से बचाव* : कई अध्ययनों से यह पता चला है कि मोटे अनाज में विभिन्न घटक जैसे-बी-ग्लूकेन्स, लिग्नन्स, एण्टीऑक्सीडेंट्स और फाइटोस्टेरॉल होते हैं जो स्तन कैंसर, प्रोस्टेट कैंसर, कोलो रेक्टल कैंसर तथा अन्य बहुत सारे कैंसर की रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कैंसर से बचाव में रागी काफी हद तक मददगार साबित होता है। दरअसल, रागी में कुछ जरुरी अमिनो अम्ल जैसे- मेथिओनाइन, सिस्टीन और लायसिन मौजूद होते हैं, जो कैंसर से बचाव में सहायक होते हैं।
- *टाइप-2 मधुमेह को रोकने में सहायक* : टाइप-2 डाइबिटीज की समस्या से राहत पाने के लिए भी जौ का आटा प्रयोग किया जाता है। वास्तव में बीटा-ग्लूकेन के कारण रक्त शर्करा का स्तर कम होता है जिससे मधुमेह से बचाव होता है। टाइप-2 डाइबिटीज उपापचयन की अव्यवस्था है, जब शरीर में असामान्य केमिकल रिएक्षंस चयापचय में बाधा उत्पन्न करते हैं। इसमें कोशिकाएँ पैंक्रियाज द्वारा उत्पादित इन्सुलिन के प्रति प्रतिक्रिया देने में या इसका उपयोग करने में सक्षम नहीं होती हैं। इस स्थिति को इन्सुलिन प्रतिरोध कहते हैं, जिसके कारण रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है। दुनिया भर में डाइबिटीज के जितने भी मरीज हैं उनमें से 90-95 प्रतिशत टाइप-2 डाइबिटीज से ग्रसित हैं। टाइप-2 डाइबिटीज अक्सर मोटापे से जुड़ा हुआ है जिसमें मोटे अनाज का सेवन कारगर सिद्ध हो सकता है, क्योंकि मोटे अनाज में फाइबर की मात्रा ज्यादा और स्टार्च की मात्रा कम होती है, जिससे लम्बे समय तक भूख नहीं लगती एवं रक्त शर्करा का स्तर सामान्य बना रहता है। सामा का चावल भी डाइबिटीज के मरीजों के लिए फायदेमंद साबित हो सकता है, क्योंकि सामा के चावल में भी फाइबर ज्यादा पाया जाता है और इसका ग्लाइसेमिक इंडेक्स भी कम होता है।
- *एनीमिया से बचाव* : मोटे अनाज विशेष तौर पर जौ एवं बाजरा में आयरन प्रचुर मात्रा में होता है जिसके कारण एनीमिया से बचाव सम्भव हो पाता है। सामा का चावल भी आयरन से भरपूर होता है जिसके कारण एनीमिया जैसी समस्या से बचा जा सकता है। मडुआ यानि फिंगर मिलेट में भी आयरन की पर्याप्त मात्रा पायी जाती है जिसके कारण इसका नियमित सेवन करने वाले व्यक्तियों को एनीमिया नहीं होता है। मक्के के प्रयोग से आयरन की कमी को दूर करने में सहायता मिलती है जिसके कारण एनीमिया रोग से बचाव सम्भव हो पाता है।
- *रक्त चाप को कम करने में प्रभावी* : मडुआ यानी फिंगर मिलेट एक ऐसा मोटा अनाज है जो सोडियम रहित होता है, जिसके कारण यह उच्च रक्तचाप के मरीजों के लिए अन्य खाद्यान्नों से बेहतर साबित होता है। यह शरीर को कुदरती तौर पर आराम पहुँचाता है और शरीर को ठण्डा रखता है। उच्च रक्तचाप, हृदय की कमजोरी एवं लीवर से जुड़ी समस्याओं में यह एक बेहतर अनाज है।

- *हृदय रोगों से बचाव :* फैट हमारे शरीर के लिए बेहद जरूरी है। यह हमारे शरीर के लिए विटामिन ए, डी, ई का अवशोषण करता है, शरीर में ऊर्जा को संचित करता है और महत्वपूर्ण नाजुक अंगों की रक्षा का भी कार्य करता है। लेकिन फैट दो प्रकार के होते हैं- LDL (Low Density Lipoprotein) एवं HDL (High Density Lipoprotein) इसमें एलडीएल का बढ़ना हमारे लिए नुकसानदेह है। इसी को बैड कोलेस्ट्रॉल कहते हैं। मोटे अनाज में सॉल्यूबल फाइबर बहुत ज्यादा होते हैं, जो शरीर से बैड कोलेस्ट्रॉल को निकाल कर हृदय को स्वस्थ रखने का कार्य करते हैं। शरीर में बढ़ता बैड कोलेस्ट्रॉल हार्ट की बीमारी के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार होता है। बैड कोलेस्ट्रॉल के कारण धमनियों में ब्लॉकेज होने लगते हैं जिसके कारण हार्ट अटैक, स्ट्रोक एवं हार्ट फेल्योर का जोखिम बढ़ जाता है। हृदय को सुरक्षित रखने में बाजरे का उपयोग अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होता है क्योंकि बाजरा मैग्नीशियम का एक समृद्ध स्रोत है जो रक्तचाप और दिल के दौरे के खतरे को कम करने के लिए एक महत्वपूर्ण खनिज है। हृदय स्वास्थ्य को बनाये रखने में जौ भी अत्यन्त उपयोगी साबित होता है क्योंकि जौ में बीटा-ग्लूटेन नामक एक खास तत्व पाया जाता है जो बढ़े हुए कोलेस्ट्रॉल को नियन्त्रित करने के साथ ही हाई बीपी की समस्या से भी राहत पहुँचाने का कार्य करता है। धमनियों पर जमने वाले कोलेस्ट्रॉल की प्रक्रिया को भी जौ नियन्त्रित करता है। बाजरा रक्त परिसंचरण को नियमित करने का कार्य करता है। जिसके कारण दिल स्वस्थ रहता है और स्ट्रोक का खतरा कम रहता है। सामा का चावल भी बैड कोलेस्ट्रॉल को नियन्त्रित करने में सहायक होता है। मक्का भी हमारे कोलेस्ट्रॉल लेवल को कम करके हृदय सम्बन्धी बीमारियों से बचाता है।
- *अस्थमा के इलाज में सहायक* : अस्थमा एक चिकित्सकीय स्थिति है, जिसमें व्यक्ति के वायुमार्ग में सूजन और अतिरिक्त बलगम जमा हो जाता है, जिससे सांस लेने में तकलीफ होती है। अस्थमा से निजात दिलाने में मोटे अनाज लाभकारी साबित होते हैं।
- *गुर्दे को स्वस्थ रखने में सहायक* : जौ से सम्बन्धित एक शोध में इस बात को स्वीकार किया गया है कि जौ के औषधीय गुण में एण्टीबैक्टीरियल प्रभाव शामिल होता है। इस प्रभाव के कारण यह मूत्र मार्ग से सम्बन्धित बैक्टीरियल संक्रमण को दूर करने में मदद करता है। इसके साथ ही इसमें एण्टी इंफ्लेमेटरी गुण भी होता है जो मूत्राषय की सूजन को दूर करता है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि यूरिनरी ट्रैक इन्फेशन की समस्या में जौ का उपयोग कुछ हद तक सकारात्मक प्रभाव प्रदर्शित कर सकता है।
- *यकृत सम्बन्धी रोगों से बचाव* : यकृत के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए जौ का सेवन लाभकारी होता है। जौ में मौजूद बीटा-ग्लूकेन, फिनोलिक्स और पेंटोसन जैसे तत्व लीवर को सुरक्षा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- *गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल जैसी स्थितियों में जोखिम को कम करना* : मिलेट ग्लूटेन फ्री होते हैं लिहाजा इनका इस्तेमाल करके अपच, डायरिया, गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल जैसी स्थितियों के जोखिम से बचा जा सकता है।
- *कब्ज, गैस, सूजन जैसी समस्या से बचाव* : कब्ज की शिकायत होने पर सामा के चावल का सेवन काफी फायदेमंद साबित होता है। क्योंकि इसमें घुलनशील एवं अघुलनशील दोनों प्रकार के फाइबर होते हैं जो कब्ज की समस्या को दूर करने में सहायक होते हैं।
- पित्ताशय की पथरी से बचाव : जौ में मौजूद फाइबर पित्ताशय की पथरी को गलाने का कार्य करते हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि पित्ताशय की पथरी से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए जौ का

सेवन लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

- *आर्थराइटिस को रोकने में मदद* : जौ की पत्तियों में मौजूद एण्टी इंफ्लेमेटरी गठिया से सम्बन्धित सूजन को कम करने में मदद कर सकता है। वहीं इसमें यूरिक एसिड को कम करने का गुण भी मौजूद होता है। यूरिक एसिड की अधिकता से आर्थराइटिस रोग का जन्म होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जौ में आर्थराइटिस की समस्या का निदान है।
- *त्वचा की देखभाल :* मोटे अनाज एण्टी एजिंग गुणों से भरपूर होते हैं और त्वचा को जल्दी बूढ़ा नहीं होने देते हैं। त्वचा सम्बन्धी समस्याओं से निपटने के लिए मोटे अनाज का सेवन लाभकारी सिद्ध होता है। मिलेट्स त्वचा को हाइड्रेट करने का काम बहुत अच्छे से करते हैं। साथ ही ये त्वचा को बेजान होने से रोकते हैं। मोटे अनाज में विटामिन सी एवं ई भरपूर मात्रा में होते हैं जो त्वचा को सूर्य की हानिकारक किरणों से बचाने का कार्य करते हैं। बाजरा में अमीनो एसिड पाया जाता है जो शरीर में कोलेजन के निर्माण में सहायक होता है। कोलेजन स्तर मजबूत होने से त्वचा में कसाव होता है जिससे झुर्रियाँ कम होती हैं। बाजरा में मौजूद एण्टीऑक्सीडेंट तनाव से लड़ने में सक्षम बनाते हैं और शरीर में फ्री रेडिकल्स के प्रभाव को बेअसर करते हैं जिससे त्वचा पर आयु बढ़ने का संकेत जल्दी प्रकट नहीं होता है। जौ में पाया जाने वाला तत्व एटॉपिक एक्जिमा से राहत दिलाने में मदद करता है। रागी भी त्वचा की सेहत के लिए लाभकारी सिद्ध होता है। रागी में मौजूद फेरुलिक एसिड यूवी विकिरणों की वजह से होने वाली त्वचा की क्षति से बचाव कर सकता है। इतना ही नहीं इसमें एण्टी एजिंग गुण भी मौजूद होते हैं जो त्वचा पर उम्र के प्रभाव को कम करने का कार्य करते हैं। मक्के में विटामिन बी कॉम्प्लेक्स एवं फोलिक एसिड होता है जो सौन्दर्य लाभ देता है। मक्के के स्टार्च का प्रयोग करने से त्वचा चिकनी एवं स्निग्ध बनती है।
- *बालों के स्वास्थ्य को बनाये रखना* : जौ में मौजूद प्रोसायनिडिन बी-3 नाम के खास तत्व में बालों के विकास को बढ़ावा देने का गुण पाया जाता है। जौ को खाने के रूप में प्रयोग करने के साथ-साथ यदि इसके पानी को भी बालों में लगाया जाये तो बालों के स्वास्थ्य को बनाये रखने में मदद मिलेगी। कोदो को जलाकर उसका भस्म बनाकर जल के साथ सिर पर लेप लगाने से रूसी की समस्या में लाभ मिलता है।
- *आँखों की देखभाल* : विटामिन ए नेत्रों की सुरक्षा के अत्यन्त आवश्यक है। कुछ मिलेट्स विशेषकर बाजरा में विटामिन ए कैरोटीन के रूप में पाया जाता है। प्रति 100 ग्राम बाजरे में लगभग 132 मिग्रा. कैरोटीन पाया जाता है। इस प्रकार हम ये समझ सकते हैं कि मोटे अनाज के सेवन से आँखों की देखभाल करना सम्भव है।
- एण्टी इंफ्लेमेटरी : सुबह-सुबह सो कर उठने पर यदि चेहरे में सूजन दिखायी दे अथवा अचानक ही शरीर के किसी भाग में अनावश्यक सूजन हो जाये तो यह प्रतिरोधक क्षमता के सक्रिय होने का लक्षण है जो किसी गम्भीर बीमारी से बचाव के सन्दर्भ में हो सकता है। एण्टी इंफ्लेमेटरी डाइट में मछली, कुछ विशेष फल-सब्जियों एवं साबुत तथा मोटे अनाजों को शामिल किया जाता है। बाजरा एवं रागी में ऐसी औषधीय विशेषताएँ हैं जिनके कारण ये एण्टी इंफ्लेमेटरी, एण्टीऑक्सीडेण्ट, एण्टी माइक्रोबियल के रूप में कार्य करता है।
- सीलिएक रोग से बचाव : सीलिएक रोग एक ऑटोइम्यून स्थिति है जिसमें ग्लूटेन पर प्रतिक्रिया करने वाली प्रतिरक्षा प्रणाली शामिल होती है। गेहूँ में पाये जाने वाले प्रोटीन समूह के लिए यह एक सामान्य

नाम है। ग्लूटेन के प्रति संवेदनशील व्यक्ति में इसके सम्पर्क में आने से आँतों में सूजन हो जाती है, जिससे अन्य पोषक तत्वों के अभिशोषण में भी बाधा पहुँचती है। 100 में से 1 व्यक्ति ग्लूटेन के प्रति संवेदनशील होता है। व्यस्कों में सीलिएक रोग के लक्षण एवं जटिलताएँ- दस्त, थकान, वजन का तेजी से कम होना, पेट में सूजन, गैस बनना, पेट में दर्द, वमन, कब्ज, एनीमिया, अस्थियों का कमजोर होना, खुजली, मुँह में छाले, सिरदर्द, प्लीहा कार्यप्रणाली का कम हो जाना, तंत्रिका की अव्यवस्था, कुपोषण, लेक्टोज असहिष्णुता, बाँझपन एवं गर्भपात। सीलिएक रोग के लिए जिम्मेदार ग्लूटेन मोटे अनाज में नहीं पाया जाता। इस लिए मोटे अनाज जैसे- ज्वार, बाजरा, रागी आदि का सेवन सभी लोग बिना किसी भय के कर सकते हैं।

- *अस्थियों एवं दाँतों को स्वस्थ रखना* : सावा, रागी आदि में कैल्शियम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो अस्थियों एवं दाँतों के स्वास्थ्य एवं मजबूती के लिए आवश्यक है। साथ ही शरीर में सही मात्रा में मैग्नीशियम होने से कैल्शियम का लेवल सामान्य बनाए रखने में मदद मिलती है, जो ज्वार में पर्याप्त मात्रा में मिलता है। इसी प्रकार जौ भी अस्थियों एवं दाँतों के स्वास्थ्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि इसमें फास्फोरस प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। मक्के का प्रयोग करने से दाँतों का व्यायाम होता है जिसके कारण दाँत मजबूत होते हैं तथा मक्के के पीले दानों में मैग्नीशियम, आयरन, कॉपर और फास्फोरस पाया जाता है जिससे अस्थियाँ मजबूत होती हैं।

सन्दर्भ :

1. www.sciencedirect.com
2. www.ncbi.nlm.nih.gov
3. www.millets.res.in (ICAR-Indian Institute of Millets Research)
4. www.fssai.gov.in
5. https://healthjade.com

❖❖❖

ग्रामीण भारत के नव-निर्माण में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की भूमिका

❍ सर्वेश कुमार सिंह[1]

संक्षिप्ति :

भारत की लगभग चौसठ प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। यदि देश की ग्रामीण जनता के विकास पर कोई ध्यान नहीं दिया जाएगा तो छत्तीस प्रतिशत शहरी लोगों के बल पर राष्ट्रीय उन्नति के स्वप्न देखना बेईमानी है। देखा जाय तो आज भी भारतीय ग्राम भूख, रोग, अज्ञानता और अन्धविश्वास, कुपोषण और शोषण का शिकार है। यह लेख ग्रामीण भारत के नव-निर्माण में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की भूमिका को दर्शाता है।

बीज शब्द : क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, अर्थव्यवस्था, ग्रामीण साख, ग्रामीण पुनर्निर्माण, कृषि।

भारतीय ग्रामीण साख व्यवस्था में देशी बैंकर तथा साहूकारों का विशेष महत्त्व है। आजादी के बाद से ही देश में ग्रामीण साख व्यवस्था की स्थिति को जानने के लिए अखिल भारतीय साख सर्वेक्षण समिति का गठन किया गया। इस समिति ने देश की ग्रामीण साख संरचना का विस्तृत अध्ययन कर सन 1954 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। समिति ने अपने प्रतिवेदन में यह निर्दिष्ट किया कि देश की ग्रामीण साख व्यवस्था पूरी पूरी तरह असंगठित क्षेत्र पर निर्भर है तथा देशी बैंकर व साहूकार इसके आधार स्तम्भ बने हुए हैं। समिति का यह मत था कि ग्रामीण साख व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु संगठित क्षेत्र को आगे आना चाहिए। संगठित क्षेत्र की सभी वित्तीय संस्थाओं का विश्लेषण करते हुए समिति ने यह मत व्यक्त किया कि तत्कालीन समय के व्यापारिक बैंक अपनी शाखा विस्तार नीति को शहरों की ओर उन्मुख किये हुए थे तथा उनकी रुचि ग्रामीण साख व्यवस्था में योगदान देने की नहीं है।

सरकार स्वयं ग्रामीण साख में प्रत्यक्ष ऋण प्रदान करती है किन्तु सरकार में व्याप्त नौकरशाही तथा लाल फीताशाही के कारण भी यह अर्थव्यवस्था अधिक सफल नहीं है। सहकारी समितियाँ यद्यपि ग्रामीण साख का श्रेष्ठ विकल्प साबित हो सकती हैं किन्तु आपसी मन-मुटाव तथा राजनैतिक प्रभाव के कारण वे भी सफल सिद्ध नहीं हो रही थी। देशी बैंकर एवं साहूकार असंगठित क्षेत्र में ग्रामीण आंचलिक क्षेत्रों में साख सुविधाएँ उपलब्ध करा रहे हैं किन्तु इनकी कार्यप्रणाली एवं व्यवहार उचित नहीं है। अतः ये भी ग्रामीण साख के लिए कोई श्रेष्ठ विकल्प नहीं हो सकते हैं।

---

1. सहायक प्रोफेसर, अर्थशास्त्र, पं.दी.द.उ.राजकीय बालिका महाविद्यालय सेवापुरी, वाराणसी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गाँव वासियों की अवस्था में सुधार के कई प्रयास किए गए है, लेकिन अभी बहुत कुछ कमियाँ हैं जिस पर गंभीरता से ध्यान देने की जरूरत है। गाँवों में अर्थिक सुधार की गति में तेजी लाने की आवश्यकता है, ताकि वे भी शहरों के समान ही विकास के आयामों को छू सकें। साथ ही भारत को सशक्त और आत्मनिर्भर राष्ट्र बनाने की तरफ उन्मुख हो सकें। 1969 में बैंकों का राष्ट्रीयकरण भारतीय अर्थव्यवस्था के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। इससे पहले ग्रामीण क्षेत्र हमारी अर्थव्यवस्था का पूर्णत: उपेक्षित हिस्सा था। गाँवों में आय का मुख्य स्रोत कृषि पर ही निर्भर है। हमारी राष्ट्रीय आय का लगभग पचास प्रतिशत का योगदान ग्रामीण और अर्द्धग्रामीण इलाकों से प्राप्त होता है।

कृषि आधारित उद्योग भी कृषि के उत्पादन पर निर्भर होते हैं। यह क्षेत्र पिछड़ा और शोषित है। इसके विकास पर ही हमारी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का विकास निर्भर करता है। भारतीय अर्थव्यवस्था द्विआयामी है। इसके दो मुख्य क्षेत्र शहरी और ग्रामीण हैं। दोनों में कोई संबंध नहीं है। ग्रामीण इलाकों में सहकारी ऋणों की सुविधा नहीं है। गांव वाले महाजन से कर्ज लेते हैं, जो भोले-भाले लोगों से अधिक ब्याज लेकर उनका शोषण करते हैं। देखा जाये तो ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त अशिक्षा और जानकारी के अभाव के चलते बैंकों से ऋण नहीं ले पाते या फिर बैंकों से कर्ज लेने में कतराते हैं।

देखा जाय तो साहूकारों का किसी वित्तीय संस्था से संबंध नहीं होता है। अत: भारतीय रिजर्व बैंक की आर्थिक नीति का प्रभाव साहूकारों पर नहीं पड़ा है। इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था के दोनों क्षेत्रों की विशेषताएँ अलग-अलग हैं, जिनका आपस में सामंजस्य नहीं के बराबर है।

बैकिंग प्रणाली को देश के अंदर तक प्रसारित करने के लिए ग्रामीणों को आसान और सरल किश्तों पर ऋण की सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जा रही है। इससे कृषि और ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन मिला है। इससे हरित क्रांति को भी बढ़ावा मिला है। हरित क्रांति से कृषि की उपज अवश्य ही बढ़ी है लेकिन इस क्रांति का प्रभाव सीमित क्षेत्रों तक ही सीमित रहा है। कृषि उत्पादों में वृद्धि होने से राष्ट्र के विकास को सहयोग प्राप्त हुआ है। कृषि उत्पादन में अवरोध से औद्योगिक विकास को हानि पहुँचती है, जबकि कृषि उत्पादन में विकास से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। देखा जाये तो हरित क्रांति से कृषकों के बीच आय की असमानता में भी वृद्धि हुई है। बड़े किसान इससे लाभान्वित हुए हैं जबकि लघु और सीमांत किसानों को विशेष फायदा नहीं हुआ है।

ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक सेवा बचत में वृद्धि के लिए उपयोगी है, उस बचत का प्रयोग उत्पादकीय कार्यों में किया जा सकता है। लेकिन देखा जाए तो वर्तमान समय में गांवों में बहुत कम बचत होती है, और उसे भी दबाकर रखने या सोना खरीदने में लगा दिया जाता है। कुछ व्यक्ति उसका व्यय सामाजिक रीति-रिवाजों और त्योहारों में कर देते हैं।

ग्रामीण बैंकों को छोटी-छोटी बचतों को जमा करने की सुविधा प्रदान करनी चाहिए। इस बात का प्रबंध भी किया जाना चाहिए ताकि किसान ऋण का भुगतान कृषि उत्पादों के रूप में कर सकें। बैंकों को प्राकृतिक आपदाओं जैसे अकाल, सूखा, बाढ़ इत्यादि के दौरान ग्रामीणों को सहायतार्थ ऋण की सुविधाएँ देनी चाहिए। गाँवों की स्थिति में सुधार के लिए बैंकों को गाँव में कार्यरत स्थानीय संस्थाओं की सहायता करनी चाहिए। उन्हें सड़क, दीवार, कुओं के निर्माण और शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना के लिए जरूरी वित्तीय सहायता प्रदान करनी चाहिए। बैंक गाँवों में घरों के निर्माण का जिम्मा भी उठा सकते हैं और उसकी भरपाई किश्तों द्वारा ली जा सकती है। कृषि एक जोखिम भरा कार्य है जो कृषकों को हमेशा अनिश्चितता की स्थिति में रखे रहती है। अत: इस समस्या से निजात दिलाने हेतु फसलों के बीमे की सुविधा उपलब्ध कराई जानी चाहिए ताकि प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सूखा, महामारी की चपेट में आने से किसानों को हानि न उठानी पड़े। इसके अतिरिक्त उनकी अर्थिक और सामाजिक सुरक्षा के लिए बैंक स्थानीय संस्थाओं की मदद से गाँवों में लघु उद्योगों और कुटीर उद्योगों की

स्थापना कर सकते हैं। किसान को कृषि का कार्य केवल छः महीने या मौसम के हिसाब से करना होता है, अतः इस प्रच्छन्न और मौसमी बेरोजगारी के चलते उन्हें अधिकतर समय खाली रहना पड़ता है। ऐसे में लघु उद्योग खाली समय में उसके आय का स्रोत बन सकते हैं।

कुटीर उद्योगों के विकास से गाँव में बेरोजगारी की समस्या का बहुत हद तक समाधान किया जा सकता है। इन उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ ग्रामीणों को कम कीमतों पर प्राप्त हो सकेंगी और उन्हें इन वस्तुओं को खरीदने के लिए शहर जाने की आवश्यकता नहीं होगी। गाँव में बैंक सेवा के विकास की संभावनाएँ विस्तृत हैं। बैंकों के माध्यम से ग्रामीण इलाकों का विकास होगा और फलतः देश का विकास होगा। गाँव की आर्थिक उन्नति होगी जिससे आय के असमान वितरण की समस्या सुलझ जाएगी। इस दिशा में 'स्वयं सहायता समूह' भी काफी कारगर साबित हो सकते हैं। बैंकों की गरीबी-रेखा से नीचे के लोगों को भी सुविधा प्राप्त होगी। इससे धनी किसानों और निर्धन किसानों के बीच का अंतर कम होगा। इस प्रकार देश की उन्नति ही नहीं होगी, बल्कि ग्रामीण जनता में आत्मनिर्भरता की भावना का प्रसार होगा। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक इस दिशा में अग्रणी भूमिका का निर्वहन कर सकते हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के ग्रामीण भारत के नव-निर्माण में जो योगदान रहा है उसका विवरण अग्रांकित बिन्दुओं में किया जा सकता है :

सुदूर आंचलिक क्षेत्रों में बैंकिंग सेवाओं का विस्तार : क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा आंचलिक क्षेत्रों में तीव्र गति से बैंकिंग विस्तार किया। दस हजार से कम जनसंख्या वाले छोटे-छोटे गाँवों में इनकी शाखा स्थापित हुई। ग्रामीण बैंक का कार्यक्षेत्र एक ही जिला होने के कारण छोटे-छोटे गाँवों की ओर इनका ध्यान केन्द्रित रहा। कमजोर आधारभूत संरचना वाले स्थानों पर भी इन बैंकों ने बैंकिंग सुविधाएँ पहुँचाई हैं।

साख सुविधाओं का विस्तार : ग्रामीण भारत की साख आवश्यकता पूर्ति में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन बैंकों के माध्यम से देश के उन दुर्गम क्षेत्र में साख सुविधा पहुँची है जहाँ कोई संगठित क्षेत्र कार्य नहीं कर पा रहा था; या यूं कहना उचित होगा कि उन व्यापारिक बैंकों की कोई विशेष रुचि नहीं रही है। इस प्रकार व्यापारिक बैंकों के विकल्प के रूप में छोटे-छोटे गांवों तथा ग्रामीण जनों को इन बैंकों के माध्यम से आर्थिक सहायता पहुँचाई गई है।

ग्रामीण भारत का पुनर्निर्माण : भारत गाँवों में बसता है और गाँवों के विकास में ही भारत का विकास निहित है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का ग्रामीण भारत के विकास में योगदान इस बात से ही पुष्ट हो जाता है कि उसमें गरीब की झोली में आर्थिक सहायता पहुँचाने का प्रयास किया है। गरीब, उपेक्षित एवं कमजोर वर्ग को स्व-रोजगार के लिये प्रेरित करने में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन बैंकों के माध्यम से ही ग्रामीण भारत के पुनर्निर्माण के सपनों को साकार करने का प्रयास किया गया। इन बैंकों के माध्यम से उस गरीबतम वर्ग तक सहायता पहुँचाई गई जो सदियों से उपेक्षित एवं पीड़ित था तथा साहूकार के ऋण जाल में फंसकर दुःख भोग रहे थे।

ग्रामीण आवश्यकता के अनुरूप बैंकिंग : क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा देश के ग्रामीणों के अनुरूप उनकी आवश्यकताएँ एवं उनकी अवधारणाएँ तथा सोच को ध्यान में रखते हुए बैंकिंग सुविधाएँ प्रदान की गई है। ग्रामीण परिवेश में ग्रामीण कार्यकर्त्ता द्वारा स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जब बैंकिंग सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं तो उसमें विकास परिलक्षित होता है। इन बैंकों ने छोटी-छोटी बचतों को एकत्रित कर उत्पादक कार्यों में लगाने का दायित्व वहन किया है। ये बैंक ग्रामीण लघु बचतकर्त्ता तथा निवेशक के बीच सेतु का कार्य कर रहे हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण भारत के विकास में क्षेत्रीय

ग्रामीण बैंकों का उल्लेखनीय योगदान रहा है किन्तु ये बैंक अपने प्रायोजक बैंक की उपेक्षा सरकारी नीतियाँ, ग्रामीण सहभागिता में कमी, भारतीय ग्रामीण राजनैतिक परिवेश इत्यादि कारणों से ये अपनी अपेक्षा के अनुरूप कार्य सम्पन्न नहीं कर पाए हैं। ग्रामीण भारत के विकास में उल्लेखनीय योगदान देने वाले ग्रामीण बैंक भी कई तरह के समस्याओं से ग्रसित हो गए हैं। इनकी समस्याओं का उचित समाधान कर इन्हें मुख्य धारा में सक्रिय रहने हेतु अवसर प्रदान करना होगा। इन बैंकों का बने रहना तथा इनका यथोचित विकास होना ग्रामीण भारत के पुनर्निर्माण के लिए एक मील का पत्थर साबित हो सकता है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास लिए एक शसक्त राजनीतिक इच्छा शक्ति की जरुरत है जिसके आधार पर ग्रामीण आर्थिक आत्मनिर्भरता को प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ :

1. http://www.essaysinhindi.com/organsiation/ग्रामीण-विकास-में-बैंकों/4537.....
2. https://www.1lifeclicks.com/2021/03/Role-of-regional-rural-bank-in-rural-indai.html
3. मुद्रा बैकिंग तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, एम.सी. वैश्य, विश्व प्रकाशन, नयी दिल्ली।
4. ज्यां द्रेजे और अमर्त्य सेन, भारत और उसके विरोधाभास, राजकमल पेपरबैक, 2018.
5. मुद्रा बैंकिंग एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, टी. टी. सेठी, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा चौदहवां संस्करण।
6. विकास नियोजन एवं नीतियाँ, वी. सी. सिन्हा, 2006, साहित्य भवन, आगरा।
7. मौद्रिक अर्थशास्त्र, डॉ टी. टी. सेठी, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।
8. प्रतियोगिता दर्पण, अर्थशास्त्र विशेषांक, 2022.

❖❖❖

भारतीय जनजातियों का बदलता स्वरूप

❍ अंजना सिंह[1]

संक्षिप्ति :

मानव विज्ञान की एक प्रामाणिक पुस्तक नोट्स एंड क्वैरीज इन एंथ्रोपोलॉजी जिसे यूरोप के एक मानसशास्त्रीय संस्थान ने इस शताब्दी के मध्य में तैयार किया था। उनके अनुसार जनजातियाँ वह मानव समुदाय हैं जो एक अलग निश्चित भू-भाग में निवास करती हैं और जिनकी एक अलग संस्कृति, अलग रीति-रिवाज, अलग भाषा होती है तथा ये केवल अपने ही समुदाय में विवाह करती हैं। सरल अर्थों में कहें तो जनजातियों का अपना एक वंशज, पूर्वज तथा सामान्य से देवी-देवता होते हैं। ये अमूमन प्रकृति पूजक होते हैं। इसमें दो विशेषताओं का जिक्र है विशेष भू-भाग और राजनीतिक व सामाजिक स्वायत्तता। ब्रिटिश शासकों द्वारा जनजाति शब्द का प्रयोग उन मानवजातीय समूहों के लिए किया गया है जो भारतीय क्षेत्र, टापू, जंगली पठारी भाग रहा है। इम्पीरियल गजेटियर्स आफ इन्डिया के अनुसार जनजाति परिवारों का एक समूह जिसके सदस्य सामान्य भाषा का प्रयोग करते हैं, एक आम प्रदेश में निवास करते हैं तथा आपस में विवाह सम्बन्ध स्थापित नहीं करते हैं। 2003 में 89वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के द्वारा पृथक राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना भी की गई। संविधान में जनजातियों के राजनीतिक हितों की भी रक्षा की गई है। उनकी संख्या के अनुपात में राज्यों की विधानसभाओं तथा पंचायतों में स्थान सुरक्षित रखे गए हैं।

बीज शब्द: जनजाति, पठारी, प्रकृति, भू-भाग, रीति-रिवाज।

भारतीय जनजातियों का भौगोलिक वितरण

साहित्यों के अध्ययन से पता चलता है कि ट्राइब शब्द का प्रयोग वैसे मानवजातीय समूहों के लिए किया गया है जिनका निवास स्थान दुर्गम जंगली, पठारी, पहाड़ी तथा द्वीपीय भागों में होता है तथा आज के सभ्य समाज में उनकी जीवन शैली काफी भिन्न है। विश्व में जनजातियों का वास अफ्रीका, एशिया, आस्ट्रेलिया तथा नवीन संसार में है। वैदिक तथा महाकाव्यकालीन साहित्यों के अध्ययन से पता चलता है कि आर्य आगमन के पहले भी कई मानवजातीय समूह भारत वर्ष में निवास करते थे उन मानवजातीय समूहों के लिए भील, कोल, किरात, किन्नर, कीरी मत्स्य, निषाद, वानर, रीछ, असुर, राक्षस इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं जंगलवासी, वनवासी, जंगली, आदिवासी इत्यादि शब्द भी उन प्राचीन स्थानीय मानवजातीय समूहों के लिए

1. असोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, बसंत महिला महाविद्यालय राजघाट वाराणसी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय

प्रयोग में लाये गये हैं लेकिन जनजाति शब्द का ब्रिटिश आगमन के पहले यहाँ के स्थानीय देशज मानव जातीय समूहों के लिए कहीं दिखाई नहीं देता है। अत: यह जनजाति शब्द ब्रिटिश शासकों की ही देन है। जनजातीय जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में सबसे अधिक जनजाति भारत में हैं। भारत में 500 से अधिक जनजातियाँ हैं, जिनकी कुल आबादी लगभग 100 मिलियन दूसरे स्थान पर आता है। जनजातीय आबादी पूरे भारत में अलग-अलग हिस्सों में फैली हुई है। देश के लगभग सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के कई इलाकों में आदिवासी समुदाय के लोग निवास करते हैं।

भौगोलिक वितरण के अनुसार संपूर्ण जनजातीय समूहों को चार मुख्य क्षेत्रों में बांटा गया है-

1. हिमालय क्षेत्र (उत्तर प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, असम, मेघालय, नागालैंड एवं मिजोरम)
2. मध्य भारत क्षेत्र (पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखंड, उड़ीसा, मध्य प्रदेश) ।
3. पश्चिम भारत का क्षेत्र (राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, दमन एवं दादर हवेली) ।
4. तटवर्ती दीप समूह के साथ दक्षिण भारत का क्षेत्र (आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह तथा लक्ष्यद्वीप) ।

भारत में अधिकतम जनजातीय आबादी वाले राज्य है।

1. मिजोरम (जनसंख्या का 94.4%)
2. लक्षद्वीप (94%)
3. मेघालय (86.1%)
4. नागालैंड (86.5%)

इसके अलावा, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, राजस्थान, छत्तीसगढ़, असम और पश्चिम बंगाल में भी महत्वपूर्ण जनजातीय बस्तियां हैं। अगर व्यापक रूप से देखा जाए तो, अनुसूचित जनजातियाँ भारत की कुल जनसंख्या का करीब 8.6% हैं। पांडिचेरी, दिल्ली, पंजाब, चण्डीगढ़ तथा हरियाणा में जनजातियाँ नहीं पायी जाती हैं। जनजातीय आबादी, पूरे भारत में अलग-अलग हिस्सों में फैली हुई है। देश के लगभग सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के कई इलाकों में आदिवासी समुदाय के लोग निवास करते हैं।

जनजातियों के बीच परिवर्तन

अन्य समाजों की भाँति हमारे जनजातीय समाज भी स्थिर नहीं वरन गतिशील रहे हैं समयानुसार हमारे जनजातीय बन्धुओं के बीच परिवर्तन होता आया है। जनजातीय समाज के बीच होने वाले परिवर्तन प्रक्रियाओं को विभिन्न नामों से जाना जाता है; जैसे- हिन्दूकरण, संस्कृतीकरण, ईसाईकरण, पश्चिमीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण, जाति-जनजाति सातव्य इत्यादि इन प्रक्रियाओं के कारण जनजातीय समाज में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। जनजाति प्रकृति के भौतिक एवं अभौतिक दोनों पक्ष परिवर्तन प्रक्रियाओं के कारण जनजातीय समाज में व्यापक परिवर्तन हुए हैं तथा इनकी जीवन शैली पर इन परिवर्तन प्रक्रियाओं का सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव परिलक्षित होते हैं। हिन्दूकरण के कारण जनजातीय समाज में जाति की अवधारणा विकसित हुई है तथा उनके बीच सामाजिक स्तरण अस्तित्व में आया है, हिन्दूकरण के कारण जनजातियाँ अपने आपको हिन्दू राजाओं के वंशज तथा क्षत्रिय जाति बतलाती है। संस्कृतीकरण के कारण जनजातियों के बीच ब्राह्मण तथा क्षत्रिय शैली अस्तित्व में आयी है। ईसाईकरण के कारण जनजातियों के बीच ईसाई धर्म, गुरु गिरजाघर तथा ईसाई पर्व त्यौहारों के प्रति आस्था उत्पन्न हुई है। साथ ही जनजातियों के बीच शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवा का विकास हुआ है। पश्चिमीकरण द्वारा जनजातीय समाजों में धर्म निरपेक्षीकरण का विकास हुआ है।

नगरीकरण एवं औद्यौगीकरण का प्रभाव

नगरीकरण एवं औद्योगीकरण का व्यापक प्रभाव जनजातियों के जीवन पर पड़ा है। नगरीकरण एवं औद्यौगीकरण की प्रक्रिया ने जनजातीय समुदाय की परम्परागत सामाजिक सरंचना, 1. सामाजिक जीवन, सामाजिक संस्थाओं तथा व्यक्तिगत व्यवहार प्रतिमानों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। आज सभी इस तथ्य को स्वीकारते हैं कि नगरीकरण एवं औद्यौगीकरण के कारण जनजातियों का जीवन स्तर उच्च हुआ है। कई प्रकार के रूढ़िवादी विचार बदल गये हैं। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में वृद्धि हुई है, सामाजिक राजनैतिक जागरूकता बढ़ी हैं लेकिन इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि औद्यौगीकरण एवं नगरीकरण के फलस्वरूप ऊँच-नीच का भाव, व्यक्तिवादिता का विकास, लाभ की भावना, प्रतियोगिता, औपचारिक सम्बन्ध तथा भौतिकवाद के प्रति आकर्षण में वृद्धि हुई है, जिसके कारण आज जनजातीय समाज कई जटिल समस्याओं से ग्रसित है।

नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के फलस्वरूप जनजातीय समाज की सामाजिक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। आज काम, रोजगार की तलाश में जनजातीय जनसंख्या औद्योगीकरण शहरों की ओर पलायन कर रही है, जिसके कारण परम्परागत सामाजिक व्यवस्था टूट रही है तथा उसके स्थान पर आधुनिक व्यवस्था स्थापित की जा रही है। सामाजिक सम्बन्ध समाप्त हो रहे हैं औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण वे अपने नाते-रिश्तेदारों से दूर रहते हैं, साथ ही शादी या मृत्यु पर भी ये लोग गाँव जाना पसन्द नहीं करते हैं साथ ही पड़ोस में रह रहे गैर-आदिवासी के यहाँ पर्व त्यौहार पर आते जाते हैं। संस्कृति के आधार पर ये अपनी पहचान बनाये हुए हैं। वर्तमान में इनका सांस्कृतिक योगदान काफी सराहनीय रहा है। शिल्पकार वर्ग ने आज भी लोक गीतों व लोक नृत्यों को जीवित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान में जागर, छोलिया नृत्य आदि परम्पराओं को ये लोग जीवित रखे हुए हैं। साथ ही स्कूल शिक्षा प्रारम्भ होने के कारण बच्चे आधुनिक नृत्य संगीत में भाग लेते हैं। सांस्कृतिक परम्पराओं को भी आधुनिक बनाने का प्रयास किया जा रहा है। जनजातीय समाज की अर्थव्यवस्था पर भी नगरीकरण एवं औद्योगीकरण का प्रभाव पड़ा है पहले इनकी अर्थव्यवस्था खाद्य संकलन, शिकार कृषि तथा दस्तकारी पर आधारित थी परन्तु आज इनकी अर्थव्यवस्था नौकरी, व्यापार तथा विभिन्न प्रकार के श्रमिक पर आधारित हो गयी है। पुरातन काल में इनकी शिक्षा व्यवस्था अच्छी नहीं थी परन्तु आधुनिक काल में ये शिक्षा की ओर आकर्षित हुए हैं जनजातीय समाज के बीच आधुनिक शिक्षा विकसित हुई हैं तथा समाज के सदस्यों ने देखा कि जो लोग पढ़ लिख कर शहर में जाकर बस रहे है उनका जीवन स्तर उच्च हो रहा है।

जनजातियों का बदलता स्वरूप

धार्मिक जीवन पर भी नगरीकरण एवं औद्यौगीकरण का प्रभाव पड़ा है। जनजातीय समाज के विश्वासों में परिवर्तन हुआ है। पहले उनकी धारणा थी कि सींग, बोंगा तथा धरती माता नाराज हो जाएंगी लेकिन जब जनजातीय समाज के सदस्य औद्योगिक समाज के सम्पर्क में आये उनमें आधुनिक तकनीक के प्रति नये विश्वास का जन्म हुआ जनजातीय समाज के सदस्यों ने शहरी समाज के सम्पर्क में आने से कई प्रकार की कुरीतियों को छोड़ दिया है आज ये लोग पर्व-त्यौहार भी आधुनिक ढंग से मनाते हैं।

नगरीकरण एवं औद्योगीरण के दुष्प्रभाव

औद्योगीकरण एवं नगरीकरण का जहाँ सकारात्मक प्रभाव पड़ा है वहीं इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी जनजातियों पर पड़े हैं- उनके ऊपर अन्य संस्कृतियों का प्रभाव परिलक्षित हो रहा है।

नगरी एवं औद्यौगीकरण समाज के सम्पर्क में आने से जनजातीय समाजों में दहेज का प्रचलन हो गया है आज दहेज के माध्यम से जीवन साथी प्राप्त किया जा रहा है। बाल अपराध में वृद्धि हुई है जब बालक काम

के लिए शहरों में आते हैं तो बाल श्रमिक के रूप में घरों, होटलों में काम करके या कूड़ा चुनकर पेट भरते हैं। ऐसे में जब उन्हें यातनायें दी जाती हैं तो ये बालक चोरी, डकैती, गुण्डागर्दी आदि हरकतें करते हैं। साथ ही कुछ आत्महत्या कर जीवन लीला समाप्त कर लेते हैं। शहरों में आने से उनके स्वास्थ्य पर भी दुष्प्रभाव पड़ रहा है। उनको जल जनित रोग, वायुजनित रोग आदि का संचार हो रहा है। नगर निर्माण, उद्योग की स्थापना तथा नगरीय एवं औद्यौगिक समाज की आवश्यकता पूर्ति हेतु जनजातियों की जमीन सरकार द्वारा खरीदी जा रही है। इससे उनके बीच भूमिहीनता तथा विस्थापन की समस्या उत्पन्न हो रही है। साथ ही परिवारों के समझ भूखमरी तथा गृह की भीषण समस्या उत्पन्न हो रही है। आधुनिकरण होने से इनकी स्थिति में काफी सुधार आया है। आज ये बड़े-बड़े पदों पर आसीन होने के साथ अपने अधिकारों से भलीभांति परिचित हैं तथा सामाजिक स्तर में भी पहले की अपेक्षा काफी सुधार आया हैं। धीरे-धीरे ये सभी सामाजिक सम्मेलनों, समारोहों आदि में खुलकर भाग ले रहे हैं। जहाँ एक ओर ये अपनी परम्पराओं से जुड़े हुए हैं वही एक समाज की मुख्य धारा से भी जुड़ने के लिए प्रयासरत हैं। वर्तमान में सरकार द्वारा भी इस दिशा में कानून बनाकर एक प्रयास किया गया है। संसद में जनजातीय व अन्य वनवासी समुदाय (वनाधिकार मान्यता) विधेयक 2006 पर बहस का जवाब देते हुए सरकार ने भी माना कि जिन इलाकों में आदिवासियों की बहुलता है वहाँ न सिर्फ जंगल घने हैं बल्कि वन्य प्राणी भी सुरक्षित हैं। साथ ही विधेयक 2006 इस सोच को भी सामने लाता है कि स्थानीय समुदायों के सहयोग के बिना वनों के प्रबन्धन की दिशा में सही ढंग से आगे नहीं बढ़ा जा सकता पर बहुसंख्यक आदिवासियों को नजर अंदाज कर यह कैसे सम्भव है। नये वन अधिनियम के जरिये वनवासियों द्वारा अतिक्रमित भूमि को नियमित किया जायेगा अब यनवासियों को वन्य भूमि पर रहने वाले स्वामित्व प्राप्त करने वहाँ अपना आवास बनाने और आजीविका के लिए खेतीबाड़ी करने के विधि सम्मत अधिकार प्राप्त होंगे। साथ ही यदि किसी व्यक्ति के अधिकार को मान्यता मिलने की प्रक्रिया में कोई त्रुटि हुई तो वह एक निर्धारित अवधि में अपील कर सकेगा। केन्द्रीय राज्य मन्त्री नमोनारायण मीणा का कहना है कि यह अधिनियम एक ऐतिहासिक महत्व का है। इसके परिणाम विस्मयकारी होंगे। उनके अनुसार यह अधिनियम वनवासियों के जीवन में सुख और सुविधाओं के नये युग का सूत्रपात करेगा।

ऊपर के विवरण से यह तथ्य प्रकट होता है कि शहरीकरण एवं औद्योगीकरण का सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार का प्रभाव जनजातीय समाजों में पड़ा है। सकारात्मक प्रभाव के कारण जनजातीय समाजों में विकास की गति तीव्र हुई है। नकारात्मक प्रभाव के कारण जनजातीय समाजों में शोषण, उत्पीड़न एवं स्वास्थ्य की समस्या उत्पन्न हो गयी है और सरकार द्वारा बनाये गये कानून और प्रयास पर्याप्त नहीं हो रहे हैं।

निष्कर्ष :

जनजातीय समाज ने कभी दासता स्वीकार नहीं की। देश पर किसी भी हमले का प्रत्युत्तर देने में वे हमेशा सबसे आगे रहते थे। देश भर में जनजातीय समुदायों द्वारा संथाल, हूल, कोल, बिरसा, भील जैसे कई विद्रोहों में किए गए संघर्ष और उनके बलिदान सभी नागरिकों को प्रेरित कर सकते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से किए गए प्रयत्नों ने इन्हें समाज की मुख्य धारा में जोड़ने में महती भूमिका निभायी है। जनजातीय क्षेत्रों में बेहतर आधारभूत सुविधाओं के विस्तार से उनमें शिक्षा का स्तर बढ़ने एवं यातायात व संचार के साधनों के विस्तार ने उन्हें क्षेत्र विशेष से बाहर निकालकर सभ्य समाज से जोड़ दिया है। परिणामतः उनकी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति भी बदली है और वे अब सशक्तीकरण की ओर बढ़ रहे हैं।

सन्दर्भ :

1. आर.एन. श्रीवास्तव, 'फिफ्टी इयर्स ऑफ ट्राईबल डेवलपमेंट', ज्ञानदीप प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000.

2. अबष्ठ, एन.के., ए क्रिटिल स्टडी आफ ट्राइबल एजुकेशन, एस.चांद, दिल्ली, 1966.
3 कर्वे, इरावती, सोशल एजुकेशन आफ सेड्युल्ड ट्राइब, वन्य जाति, खण्ड-5 नं. 4, 1957. गवर्नमेंट आफ इंडिया, रिपोर्ट आन वर्किंग ग्रुप आन ट्राइबल डेबलपमेंट ड्यूरिंग सिक्सथ प्लान,
4 नई दिल्ली, 1980. दास ए.के. एंड एस.के. बैनर्जी, इंपैक्ट आफ इंडस्ट्रीयलाइजेशन आन द लाइफ आफ ट्राइबल्स, सी आर आई कलकत्ता, 1962.
5. वेली, एफ.जी., ट्राइब, कास्ट एन्ड नेशन, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुंबई, 1960
6. मजुमदार डी.एन., एट्राइब इन ट्रांजिशन एस्टडी इन कल्चर पैटनर्स, लौंग मैस ग्रीन एन्ड कंपनी, 1937
7. राय एस.सी., मुंडा एंड देयर कंट्री, सीटीबार लायब्रेरी, राँची, 1912.
8. वर्मा, यू. के., बिहार का जनजातीय जीवन, किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी, 1991. विद्यार्थी, एल.पी. एन्ड बी. के. राय, ट्राइबल कल्चर आफ इंडिया, कंसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली, 1976,
9. सक्सेना, के.बी., कल्चर चेंज इन ट्राइबल बिहार, बुकलैंड, पी.वी.टी., कलकत्ता, 1983.
10. सहाय, के.एन., अंदर द शैडो आफ कोस, इंस्टीट्यूट आफ सोसल रिसर्च एंड एपलायड एंथ्रोपोलोजी, 1976.
11. सिंह के.एस., बिरसा मुंडा एंड हिज मुवमेंटस, क्लासिकल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1979.
12. सिंह, जे.पी. एम.एन. वयस एंड आए.एस. मान, ट्राइबल वोमेन एंड डिबलपमेंट, टी.आर.आई. राजस्थान, 1985.
13. शर्मा, नीता बोरा, कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास को समर्पित मासिक पत्रिका फरवरी 2006, पेज 9-11, 2006
14. जुगरान, व्योमेश चंद्र, फिर भी उपेक्षित रह गये वनवासी, अमर उजाला, 13 फरवरी 2007, मेरठ संस्करण.
15. प्रभाकर, मनोहर, बदलेगी वनवासियों की तकदीर, अमर उजाला, 20 फरवरी 2007, मेरठ संस्करण.

❖❖❖

बुद्ध की परंपरा के वाहक कबीर

❍ रीता सिंह[1]

भारत का इतिहास अनेक संतों एवं महापुरुषों द्वारा पोषित और पल्लवित है; जैसे- महावीर, बुद्ध, कबीर, रैदास, नानक, राजा राममोहन राय, विवेकानंद आदि जिन्होंने समय-समय पर परिवर्तन के मुख्य वाहक के रूप में भूमिका निभाई है। हम यहाँ बुद्ध और कबीर के सन्दर्भ में चर्चा करेंगे। बुद्ध और कबीर अलग-अलग समय में समाज को सही दिशा देने का प्रयत्न करते हुए दिखाई पड़ते हैं। बुद्ध ने जो कार्य छठी सदी ईसा पूर्व में किया उसी कार्य को कबीर 15वीं शताब्दी में करते हुए दिखायी देते हैं। प्रश्न आता है कि दोनों का कार्य क्या था? उनका कार्य था, धार्मिक कर्मकाण्ड में उलझे समाज को उस कर्मकाण्ड रूपी मकड़जाल से बाहर करना, तमाम कुरीतियाँ जो समाज के विकास को अवरुद्ध कर रही थी (जैसे- ऊँच-नीच की भावना, असमानता, दिखावा, छुआछूत आदि) का विरोध करके, लोगों को मिलजुल कर रहने को प्रेरित करना।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में उत्तर वैदिक काल समाप्त हो रहा था। उस समय तक समाज में वैदिक परंपरा, धर्म, संस्कृति समाज के प्रत्येक वर्ग पर हावी थी। जीवन के प्रत्येक कार्य से कुछ ना कुछ कर्मकाण्ड जुड़ गया था। अनेक प्रकार के यज्ञ संस्कार आम जनमानस के लिए बोझ स्वरूप हो गए थे। वेदों के अंतिम भाग के रूप में आए 'उपनिषदों तक में यज्ञ को टूटी हुई नौका बताया जाने लगा' (मुण्डक उपनिषद्)। वैदिक परंपरा में ही वैदिक कर्मकांडों के प्रति विरोधी स्वर उभरने लगा था, परंतु विरोध का स्वरूप तब तक प्रबल रूप ना ले सका जब तक की छठी सदी ईसा पूर्व में अनेक संप्रदाय उभर कर न आ गए। इनमें लोकायत, जैन, बौद्ध, आजीवक, अक्रियावादी आदि संप्रदाय थे। जिन्होंने खुलकर धार्मिक कर्मकांडों का विरोध किया। इनके व्यापक विरोध को देखते हुए ही इतिहासकारों ने इसे धार्मिक आंदोलन अथवा धार्मिक क्रांति की संज्ञा दी (के.सी. श्रीवास्तव, 1997)।

जिस प्रकार छठी सदी ईसा पूर्व में एक धार्मिक-सामाजिक आंदोलन के फल स्वरुप महात्मा बुद्ध निकल कर आते हैं। उसी प्रकार कबीर भी 14वीं-15 वीं सदी के धार्मिक-सामाजिक आंदोलन अथवा भक्ति काल के फल स्वरुप सामने आते हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र में सर्वप्रथम हम महात्मा बुद्ध के विचार, दर्शन एवं कार्य को देखेंगे, तत्पश्चात कबीर के विचार दर्शन एवं कार्यों की विवेचना करेंगे। जिससे बुद्ध की परंपरा के वाहक कबीर को समझने में आसानी

---

1. *असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, पंडित राम लखन शुक्ल राजकीय पी.जी. कॉलेज, आलापुर, अम्बेडकरनगर, उ.प्र.*

होगी। चर्चा के मुख्य बिंदु बुद्ध के चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, दसशील सिद्धांत, निर्वाण, जन भाषा में उपदेश एवं उसी के सापेक्ष कबीर के विचार होंगे। बुद्ध और कबीर में अनेक समानताएं हैं परंतु कुछ असमानताएँ भी हैं। उसकी भी चर्चा इस शोध-पत्र में की जाएगी।

बुद्ध की शिक्षाओं और सिद्धांतों का मूल आधार चार आर्य सत्य हैं (संयुक्त निकाय)। यह चार आर्य सत्य हैं- दु:ख, दु:ख समुदाय, दु:ख निरोध, दु:ख निरोध-गामिनी-प्रतिपदा (दु:ख निवारक मार्ग अर्थात् अष्टांगिक मार्ग)।

दुख : बुद्ध कहते हैं, जीवन दुखों से भरा पड़ा है, सर्वत्र दु:ख व्याप्त है, जन्म भी दु:ख है, जरा भी दु:ख है, ब्याधि भी दु:ख है, मरण भी दु:ख है, अप्रिय मिलन भी दु:ख है, प्रिय का वियोग भी दु:ख है (झा एवं श्रीमाली 2015)। सब कुछ दु:ख में देखकर बुद्ध ने कहा- "सब्बम दु:खम" (संयुक्त निकाय)।

बुद्ध की भांति कबीर भी दु:ख के विषय में कुछ ऐसा ही विचार रखते हैं-

कबिरा मैं तो तब डरौ, जो मुझ में ही होई।
मीचू, बुढ़ापा, आपदा, सब काहू पै सोई। (कबीर, बीजक)

इस दोहे में कबीर ने बताया है कि मीचु (मृत्यु), बुढ़ापा(जरा), आपदा (रोग) से सभी का सामना होना है। यह सभी तत्व व्यक्ति के जीवन को दु:खमय बनाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि किस प्रकार बुद्ध के प्रथम आर्य सत्य को, कबीर भी दूसरे शब्दों में स्वीकार करते हैं।

दु:ख समुदाय : यह द्वितीय आर्य सत्य है जिसमें बुद्ध द्वारा यह बताया गया है कि दु:ख है और उसका कारण है। तृष्णा (इच्छा या लालसा) दु:ख का कारण है। तृष्णा से आसक्ति तथा राग की उत्पत्ति होती है। प्रत्येक दु:ख के पीछे कारण छिपा हुआ है अथवा संबंधित है। मानवीय इच्छाएँ व्यक्ति को दु:ख के द्वार पर पहुँचाती हैं। यदि व्यक्ति तृष्णा पर विजय प्राप्त कर ले तो वह दु:ख से छुटकारा प्राप्त कर सकता है।

कबीर ने भी विश्वव्यापी दु:ख का कारण तृष्णा को ही माना है (विजयेन्द्र स्नातक, 2019)। वह कहते हैं-

जो देखा सो दुखिया देखा। तनधर सुखिया कोई न देखा।।
जोगी दुखिया, जंगम दुखिया, तापस को दु:ख दूना।
आशा तृष्णा सब घट व्यापै। कोई महल नहीं सूना।। (कबीर, बीजक)

इस दोहे में कबीर भी संसार को दुखों से भरा देख रहे हैं। वह किसी प्राणी को सुखी नहीं देखने की बात करते हैं। आशा रूपी तृष्णा सर्वत्र व्याप्त है और कोई भी उससे अछूता नहीं है। जिस प्रकार बुद्ध ने दु:ख के कारण का अस्तित्व स्वीकार किया है ठीक उसी प्रकार कबीर भी दु:ख के कारण को स्वीकार करते हैं। दोनों ने ही तृष्णा अथवा लालसा को दु:ख का कारण बताया है।

दु:ख निरोध : यह बुद्ध द्वारा बताया गया तृतीय आर्य सत्य है। वह कहते हैं, यदि संसार में दु:ख है और उसका कारण भी है तो कारण का निरोध कर के दु:ख से छुटकारा भी पाया जा सकता है। मनुष्य तृष्णा के कारण ही दु:ख भोगता है। इस तृष्णा का त्याग करके दु:ख का नाश किया जा सकता है।

कबीर ने भी दु:ख का वही उपाय बताया है जो बुद्ध ने बताया है। बिना तृष्णा को त्यागे यह संसार दु:ख से मुक्त नहीं हो सकता। कबीर कहते हैं,

माया मुई न मन मुआ, मरि मरि गए शरीर।
आशा तृष्णा ना मूई, कहि गया दास कबीर।। (कबीर, बीजक)

इस दोहे में कबीर ने आशा रूपी तृष्णा की प्रबलता को दिखाया है। परंतु तृष्णा के त्याग से ही दुखों से छुटकारा पाया जा सकता है। अन्यथा व्यक्ति जन्म-मरण के चक्कर में फंसा ही रहेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों बुद्ध और कबीर ने दु:ख का कारण तृष्णा को माना है और तृष्णा के त्याग से ही दु:ख मुक्ति की बात कही है। यह तृष्णा मनुष्य के जीवन में सबसे अधिक अशांति की स्थिति पैदा करती है। इसी की वजह से मानव जाति सदियों से अनेक युद्धों में लगी रही है। युद्ध, अशांति, हिंसा, चोरी आदि समस्याओं का मूल कारण किसी न किसी मानव की अतृप्त इच्छाएँ या महत्वाकांक्षाएँ ही होती हैं। इससे आम जनजीवन कई बार प्रभावित होता देखा जा सकता है।

दु:ख निरोध-गामिनी-प्रतिपदा : यह बुद्ध द्वारा बताया गया चतुर्थ आर्य सत्य है, जिसका अर्थ है दु:ख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग। संसार में प्रिय लगने वाली वस्तुओं की इच्छा को त्यागना दु:ख निरोध मार्ग को प्रशस्त करता है। इच्छित वस्तुओं को त्यागना दुष्कर कार्य है। इसके लिए बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग बताए हैं। जिसके द्वारा व्यक्ति दु:ख निरोध का कार्य पूर्ण कर सकता है तथा दु:ख से मुक्ति प्राप्त हो सकती है। अष्टांगिक मार्ग को ही दु:ख निरोध-गामिनी-प्रतिपदा कहा गया है। अष्टांगिक मार्ग हैं-

1. सम्यक दृष्टि : अर्थात् सत्य और असत्य तथा सदाचार और दुराचार के विवेक द्वारा चार आर्य सत्य की सही दृष्टि अथवा समझ विकसित करना।
2. सम्यक संकल्प : अर्थात् इच्छा एवं हिंसा से रहित संकल्प करना।
3. सम्यक वाणी : अर्थात् सदैव सत्य तथा मधुर वचनों का प्रयोग करना, वाणी से भी हिंसा ना करना।
4. सम्यक कर्म : अर्थात् अच्छे कर्मों में लगे रहना।
5. सम्यक आजीव : अर्थात् सदाचार का पालन करके जीवन यापन करना।
6. सम्यक व्यायाम : अर्थात् नैतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए स्वतंत्र प्रयत्न करते रहना।
7. सम्यक स्मृति : अर्थात् सभी प्रकार की मिथ्या धारणाओं को त्याग कर सच्ची धारणा रखना।
8. सम्यक समाधि : अर्थात् मन एवं चित् की एकाग्रता।

बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग के द्वारा अत्यधिक सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करना अथवा अत्यधिक कायाक्लेश में संलग्न होना दोनों को वर्जित किया है। तत्कालीन समय में जहाँ भौतिकवादियों ने अत्यधिक सुख पूर्वक जीवन जीने का समर्थन किया था, वही जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर ने कायक्लेश का समर्थन किया था। भौतिकवादी अजित केसकम्बलिन के अनुसार कर्मो का पाप या पुण्य के रूप में कोई संचित फल नही होता है। मृत्यु के बाद सब कुछ नष्ट हो जाता है। अत: आनंदपूर्वक जीवन बिताना चाहिए। चार्वाक दर्शन भी जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करने का समर्थन करता है। जबकि जैन दर्शन सुख की बजाय काया क्लेश पर बल देता है। बुद्ध ने मध्यम प्रतिपदा(मध्यम मार्ग) का उपदेश दिया। उन्होंने न तो अत्यधिक सुख का समर्थन किया न अत्यधिक दुखपूर्वक जीवन बिताने का समर्थन किया।

कबीर ने भी बुद्ध की भांति मध्यम मार्ग का व्यवहारिक उपदेश दिया है। कबीर का मानना है कि व्यक्ति को संतुलित जीवन जीने का प्रयास करना चाहिए।

वह कहते हैं-

अति का भला न बोलना, अति का भला न चुप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।। (कबीर बीजक)

इस दोहे में हम देखते हैं कि कबीर कहते हैं कि व्यक्ति को न तो बहुत वाचाल होना चाहिए, न ही एकदम मौन हो जाना चाहिए। दोनों ही स्थितियों में उसे परेशानी का सामना करना पड़ सकता है। यह ठीक उसी प्रकार

नुकसानदायक है जिस प्रकार अत्यधिक बारिश या धूप का होना। कबीर किसी भी कार्य की अति या अधिकता से बचने की बात करते हैं। अति सदैव पीड़ा या कष्ट ही देती है। अतियों के बीच का मार्ग अपनाना ही श्रेयस्कर है। कबीर ने सम्यक वाणी का समर्थन किया है। वह कहते हैं-

ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय।। (कबीर बीजक)

सम्यक कर्म का भी उपदेश कबीरदास देते हैं। उन्होंने त्याज्य कर्मों को एक दोहे के माध्यम से कहा है-

जुआ, चोरी, मुखबिरी, ब्याज, घूस, पर-नार।
जो चाहे दीवार को, ऐती वस्तु निवार।। (कबीर बीजक)

इस दोहे में त्याज्य कर्मों के साथ त्याज्य आजीविका के भी अंग आ गए हैं। अर्थात् सम्यक आजीव की भी बात कबीर ने की है। बुद्ध ने मिथ्या आजीविका त्याग पर बल दिया है और ठीक उसी प्रकार कबीर भी मिथ्या कर्म और मिथ्या आजीविका के साधनों को त्यागने पर बल देते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस प्रकार बुद्ध अष्टांगिक मार्ग या मध्यम प्रतिपदा के माध्यम से दुख मुक्त होने की बात करते हैं। उसी प्रकार कबीर भी मध्यम मार्ग द्वारा दुख से मुक्ति की बात करते हैं। दोनों ने ही अति से बचने की सलाह दी है।

दसशील : बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग के साथ मुक्ति के लिए दसशील का पालन भी आवश्यक बताया है। यह दसशील हैं- 1. अहिंसा 2. सत्य 3. अस्तेय 4. ब्रह्मचर्य 5. मद्य का सेवन ना करना 6. व्यभिचार ना करना 7. असमय भोजन ना करना 8. सुखद बिस्तर पर ना सोना 9. धन संचय ना करना 10. सुगंधित पदार्थों का सेवन न करना

इनमें से प्रथम पांच पंचशील बौद्ध उपासक वर्ण (गृहस्थ) के लिए है एवं संपूर्ण दसशील भिक्षुओं के लिए है। इसी प्रकार से कबीर ने भी नैतिक आचरणों पर बल दिया है। अनेक दोहों के माध्यम से वह सदाचार एवं नैतिकतापूर्ण आचरण की बात करते हैं। पर-स्त्री गमन की कबीर ने निंदा की है। वह भौतिकतावादी सोच को त्याग कर सदैव परम तत्व की प्राप्ति का उपदेश देते हैं। कबीर कहते हैं-

जब लागि जीवे हरि गुन गा ले, धन जोबन है दस दिन कारे।
चौरासी जो तरना चाहे, छोड़ कामिनी का चस्का रे। (कबीर बीजक)

निर्वाण : बुद्ध ने मनुष्य के जीवन का चरम लक्ष्य निर्वाण को बताया है। निर्वाण का अर्थ है 'दीपक का बुझ जाना' अर्थात् जीवन मरण के चक्र से मुक्त हो जाना। ज्ञान प्राप्ति के बाद के ही व्यक्ति इस अवस्था को प्राप्त होता है। बुद्ध की भांति कबीर ने भी ज्ञान प्राप्ति को चरम लक्ष्य बताया है। जिसके बाद व्यक्ति जीवन मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। कबीर कहते हैं-

दीपक दीया तेल भरी, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुना, बहुरि न आवो हट्ट।। (कबीर बीजक)

जनभाषा का प्रयोग : बुद्ध ने अपना उपदेश पाली भाषा में जनता तक पहुँचाया। पाली तत्कालीन समय में आम जनमानस में प्रचलित क्षेत्रीय भाषा थी। अपने संदेशों को लोगों तक पहुँचाने का सबसे उपयुक्त माध्यम, बुद्ध को जनभाषा ही लगी। ठीक उसी प्रकार से कबीर ने भी अपने संदेश आम जनता तक पहुँचाने के लिए जनभाषा का ही प्रयोग किया जिसे सधुक्कड़ी या पंचमेल भाषा भी कहते हैं। सधुक्कड़ी भोजपुरी, अवधी, बघेली आदि बोलियों का मिश्रण थी।

असमानता : बुद्ध और कबीर के विचारों में काफी समानताएँ देखने को मिलती हैं। परन्तु साथ ही कुछ

असमानताएँ भी हैं। जैसे- ईश्वर के अस्तित्व को लेकर एवं गृहस्थ जीवन को लेकर। ईश्वर के अस्तित्व पर बुद्ध मौन हैं। वह (बुद्ध) ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते हैं। हालाँकि, बुद्ध को पुनर्जन्म पर विश्वास है। वह जन्म-मरण को कर्मों का फल मानते हैं। जबकि कबीर की ईश्वर में गहरी आस्था है। वह निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं। वह दशरथ पुत्र राम में आस्था नहीं रखते बल्कि परम तत्व राम में आस्था प्रकट करते हैं (एक राम दसरथ घर डोले, निराकार घट-घट में बोले)। इसी प्रकार गृहस्थ जीवन को देखें तो जहाँ बुद्ध ने अपने गृहस्थ जीवन से मुक्त होकर सन्यास को ग्रहण किया और अपने उपदेशों का प्रचार किया वही कबीर ने गृहस्थ जीवन जीते हुए अपने संदेश को जन-जन तक पहुँचाया।

हम देखते हैं कि महात्मा बुद्ध और कबीर विचारों और कार्यों से एक ही परम्परा के पोषक दिखाई पड़ते हैं। जिन बिन्दुओं की चर्चा हमने ऊपर की है, उससे हम यह कह सकते हैं कि बुद्ध की परंपरा के वाहक के रूप में कबीर को देखा जा सकता है क्योंकि जिस प्रकार बुद्ध छठी सदी ई.पू. के धार्मिक-सामाजिक आन्दोलन का नेतृत्व करते हुए समाज को व्यर्थ के कर्मकाण्ड से बचाने का प्रयास करते हैं। ठीक उसी प्रकार से मध्यकालीन समय में हुए धार्मिक-सामाजिक आन्दोलन (भक्ति आन्दोलन) का नेतृत्व कबीर करते हैं और समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं अनावश्यक कर्मकाण्ड का पुरजोर विरोध करते हैं।

सन्दर्भ :

1. मिश्र, शिवकुमार, भक्ति-आन्दोलन और भक्ति-काव्य, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2021
2. कबीर, बीजक (टीकाकार एवं संपादक प्रमोद चन्द्र शास्त्री), रुपेश ठाकुर प्रसाद प्रकाशन, वाराणसी, 2013
3. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013
4. थापर, रोमिला, भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
5. झा, द्विजेन्द्रनारायण एवं श्रीमाली, कृष्णमोहन, प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली, 2015
6. स्नातक, विजयेन्द्र, कबीर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2019
7. सुरती, उर्वशी, कबीर : जीवन और दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015
8. पांडे, गोविन्द चन्द्र, स्टडीज इन द ओरिजिन्स ऑफ बुद्धिज्म, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, 2015
9. श्रीवास्तव, के.सी., प्राचीन भारत का इतिहास, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 1997

❖❖❖

ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य में बौद्ध संदर्भ

❍ अनामिका सिंह[1]

संक्षिप्ति :

वेदांत और बौद्ध भारतीय दर्शन की दो ऐसी समृद्ध चिंतनधाराएँ हैं जिनमें विचारों के आदान-प्रदान की अथवा उनमें सैद्धान्तिक तर्क-वितर्क की सुदीर्घ परम्परा चली है। यह शोध लेख 'ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य' में आए बौद्ध सन्दर्भों को आधार बनाकर आचार्य शंकर द्वारा की गई उसकी समीक्षा के माध्यम से परम्पराद्वय के परस्पर सम्बन्धों की दृष्टि से उनके विकास अथवा ह्रास को देखने का अभिनव प्रयास करता है। दूसरे शब्दों में, ग्रन्थ विशेष, सन्दर्भ विशेष के माध्यम से दोनों दर्शन सम्प्रदायों के परस्पर सम्बन्धों की दृष्टि से प्रचलित भ्रान्तियों का निराकरण कर अनुसन्धाताओं तथा समाज को भावी विकास की गति के सन्दर्भ में दिशा-निर्देश देना ही इस शोधपत्र का अभीष्ट है।

मुख्य शब्द : सर्वास्तिवाद, विज्ञानवाद, शून्यवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद, क्षणभंगवाद, संस्कृत धर्म, असंस्कृत धर्म, आकाश, निरोध, आलयविज्ञान, सहोपलम्भनियम, स्मृति आदि।

आचार्य शंकर जिस वैदिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। बौद्ध विचारधारा उससे भिन्न है तथापि दोनों विचारधाराएँ एक ही देश की संस्कृति से जन्मीं हैं, इसलिए उनमें वैषम्य के साथ साम्य होना भी अवश्यंभावी है। इन दोनों विचारधाराओं को दर्शन के क्षेत्र में अपने-अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए परस्पर संवाद में संलग्न होना अपरिहार्य हो गया था। इस आवश्यकता में ब्रह्मसूत्र[1] ने अग्रणी भूमिका निभाई। इस ऐतिहासिक ग्रन्थ ने वैदिक साहित्य में विकीर्ण ब्रह्म-विषयक विचारों को सूत्र शैली में एकत्र व व्यवस्थित कर प्रस्तुत किया तथा साथ ही वेदान्त के दृष्टिकोण से अन्य वैदिक, अवैदिक दर्शनों के साथ बौद्ध दर्शन के प्रति भी समालोचना की प्रवृत्ति दिखलाई। ब्रह्मसूत्र के पश्चात् संवाद की इस परम्परा का सीमित निर्वहन गौडपाद ने किया। समन्वयात्मक वेदान्तीय अद्वैतवाद के प्रणेता आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र पर रचित अपने भाष्य में जहाँ एक ओर अपने सिद्धान्त का सयुक्तिक प्रतिपादन किया वहीं दूसरी ओर इसी ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय के द्वितीय पाद- 'तर्कपाद' में समुदायाधिकरण-4 तथा अवाभाधिकरण-5 के अन्तर्गत क्रमशः (सूत्र संख्या 18-27) सर्वास्तिवाद तथा (सूत्र संख्या 28-32) के माध्यम से विज्ञानवाद और शून्यवाद की समीक्षा कर बौद्ध दर्शन

---

1. अध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग, आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, वाराणसी।

के माध्यम से बौद्ध दर्शन के प्रति भी अपनी अभिनव दृष्टि का परिचय दिया। यह शोध लेख ब्रह्मसूत्राशांकर भाष्य में उल्लिखित बौद्ध दर्शन के प्रधान बिन्दु बुद्ध, सम्प्रदाय, पारिभाषिक शब्द, अवधारणाएँ, युक्तियाँ आदि का विश्लेषण कर यह जानने का प्रयास करेगा कि आचार्य शंकर द्वारा बौद्ध दर्शन की गई यह समीक्षा कितनी न्यायोचित है तथा परम्परा द्वय के सम्बन्धों की दृष्टि से इसके दूरगामी परिणाम और प्रमाण क्या हो सकते हैं।

बुद्ध :

आचार्य शंकर के पूर्ववर्ती वेदान्तायाचों में ब्रह्मसूत्रकार ने बुद्ध के प्रति मौन धारण किया और गौडपाद ने बुद्ध का स्पष्ट नामोल्लेख करते हुए[2] उनके प्रति आस्था के संकेत दिए[3] जिसे वेदान्त के प्रसंग में ऐतिहासिक घटना माना जा सकता है। आचार्य शंकर ने, बुद्ध का उल्लेख बौद्ध दर्शन के उपदेष्टा के रूप में किया है।[4] इसके अन्तर्गत बुद्ध के व्यक्तित्व में कई अन्य विशेषण भी जोड़े गए है; यथा- असम्बद्ध प्रलाप करने वाला, लोक-कल्याण के विपरीत तीन परस्पर विरुद्ध मतों का प्रतिपादन कर समाज में भ्रान्ति व विद्वेष फैलाने वाला, देशना-विशेष के माध्यम से मोक्षमार्ग से पथभ्रष्ट करने वाला आदि। वस्तुतः शंकर के शब्दों में, बुद्ध व उनकी यह विचारधारा (बौद्ध दर्शन) न केवल अनादरणीय है अपितु उपेक्षणीय भी है।[5] यहाँ दार्शनिक स्तर पर वे बौद्ध दर्शन की समस्त विसंगतियों और व्यावहारिक कमियों के लिये सीधे बुद्ध को उत्तरदायी मानते है जबकि ऐतिहासिक स्तर पर बुद्ध के उपदेशों की सरलता और बौद्ध दर्शन की क्लिष्टता में पर्याप्त दूरी है।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि बुद्ध के प्रति आचार्य शंकर की दृष्टि संक्षिप्त व मार्मिक टिप्पणियों के माध्यम से तीखे व गहरे आक्षेप करने की रही है। आक्षेप क्रम में, आचार्य शंकर ने न केवल कठोरतम शब्दों का उपयोग किया है बल्कि आक्रोश से परिपूर्ण उनकी शैली दार्शनिक की अपेक्षा पूर्वाग्रह से युक्त एक सामाजिक व धार्मिक व्यक्ति की हो गई है। इस कथन का प्रमाण यह भी है कि उन्होंने बौद्ध दर्शन के प्रसंग में ही नहीं अपितु जैन दर्शन के खण्ड के प्रसंग में भी दो बार सुगतमत का स्मरण किया है।[6]

सम्प्रदाय :

वेदान्त के इतिहास में शंकर पहले ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने बौद्ध दर्शन को पूर्ववर्ती आचार्यों की तुलना में अधिक महत्त्व दिया हैं। वे बौद्ध दर्शन के प्रधान सम्प्रदायों (सर्वास्तिवाद, विज्ञानवाद व शून्यवाद) के स्पष्ट नाम लेते हुए उनकी समालोचना करते हैं (ब्रह्मसूत्रभाष्य, 2.2.18)।[7] आचार्य की दृष्टि में बौद्ध दर्शन के इन सम्प्रदायों की अनेकता और विविधता के दो प्रधान कारण हैं- 1. प्रतिपत्ति का भेद, 2. शिष्यों का भेद।[8] प्रतिपत्ति व शिष्यों के भेद से यद्यपि ये सम्प्रदाय परस्पर संगति नहीं रखते तथापि इनमें एक समानता है। आचार्य शंकर की दृष्टि में ये सभी-सर्ववैनाशिक[9] हैं।

पारिभाषिक शब्द :

बौद्ध पारिभाषिक शब्दों के उपयोग की दृष्टि से भी ब्रह्मसूत्र और माण्डूक्यकारिका की अपेक्षा शारीरकभाष्य अधिक समृद्ध है। आचार्य शंकर ने प्रत्येक सम्प्रदाय का जो विवरण दिया है उसमें सम्प्रदाय के मत को पारिभाषिक शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत करने का विशेष ध्यान रखा है।[10] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि पारिभाषिक शब्दों की अधिकता की दृष्टि से सर्वास्तिवाद प्रधान है। भारतीय दर्शन के इतिहास में, बौद्ध दर्शन अपनी समृद्ध पारिभाषिक शब्दावली के लिए जो महत्व रखता है, शंकर उससे सुपरिचित थे और इसका प्रमाण उन्होंने भाष्य में अधिकाधिक पारिभाषिक शब्दों का उपयोग करके दिया है।

अवधारणाएँ :

आचार्य शंकर ने बौद्ध दर्शन के परमाणुवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद, अनात्मवाद, क्षणभंगवाद, असंस्कृत धर्म, स्मृति, प्रत्यभिज्ञा, भोग व मोक्ष, विज्ञान, विज्ञेय, वासना, सहोपलम्भनियम, आलयविज्ञान, शून्य आदि प्रमुख अवधारणाओं

को समीक्षार्थ लिया हैं क्षणभंगवाद, बौद्ध दर्शन की ऐसी अवधारणा है जो (बौद्ध दर्शन के ही एक सम्प्रदाय शून्यवाद सहित) अन्य सभी बौद्ध-विरोधी दार्शनिकों की आलोचना का केन्द्र रही है। बौद्ध दर्शन के दो प्रधान सम्प्रदायों (सर्वास्तिवाद और विज्ञानवाद) का समस्त दार्शनिक चिन्तन इसी अवधारणा पर केन्द्रित है। आचार्य शंकर ने भाष्य में सिकता-कूप शब्द के माध्यम से क्षणभंगवाद की इस अवधारणा पर आक्षेप किया है।[11] आचार्य की दृष्टि में यह सिद्धान्त इतना निरर्थक है कि इसके माध्यम से जीवन की (तत्त्वमीमांसीय, प्रमाणमीमांसीय और मोक्षमीमांसीय) समस्याओं के हल ढूँढने का प्रयत्न, बालू के कुँए में पानी ढूँढने जैसा ही है।

आचार्य शंकर की दृष्टि में ब्रह्मसूत्र में साक्षात् शून्यवाद का खण्डन नहीं है इसलिए विज्ञानवाद के सन्दर्भ में प्रयुक्त एक सूत्र (2/2/31) के माध्यम से उन्होंने शून्यवाद पर टिप्पणी की है। शून्यवाद पर शंकर की टिप्पणियाँ इतनी संक्षिप्त हैं कि इनके विषय में यह विवाद हो गया कि वस्तुतः इसे शून्यवाद का खण्डन माना भी जाय अथवा नहीं। इस विवाद को परे रखकर टिप्पणी के शब्दों पर यदि ध्यान केन्द्रित किया जाता है तो यह स्पष्ट है कि उन्होंने शून्यवाद को प्रमाणातीत, अनिर्वचनीय और अव्यावहारिक बताया है तथा साथ ही इसे खण्डन के योग्य भी नहीं माना है।[12]

युक्तियाँ :

युक्तियाँ, दर्शन की प्राण हैं। इनके माध्यम से न केवल दर्शन के सिद्धान्तों का परिचय ही प्राप्त होता है अपितु उन सिद्धान्तों के पीछे छिपी, दार्शनिक की दृष्टि भी उद्घाटित होती है। आचार्य शंकर की बौद्ध दर्शन के प्रति क्या दृष्टि है इसका सबसे प्रबल प्रमाण वे युक्तियाँ हैं जो उन्होंने बौद्ध दर्शन के खण्डन में दी है।

शारीरकभाष्य में युक्तियों के दो वर्ग है- 1. पूर्वपक्ष की समर्थक युक्तियाँ, 2. पूर्वपक्ष की खण्डनात्मक युक्तियाँ। सम्प्रदायानुसार सिद्धान्त के समर्थन में दी गई युक्तियाँ, बौद्ध साहित्य का अनुकरण करती हैं। इन युक्तियों के माध्यम से शंकर ने यथासम्भव बौद्ध विचारधारा के प्रति न्याय किया है किन्तु जहाँ तक युक्तियों की मौलिकता का प्रश्न है, इसका पूर्ण श्रेय आचार्य को नहीं दिया जा सकता है, उसमें क्रम व व्यवस्था आचार्य की अपनी है। तथापि खण्डनात्मक युक्तियाँ बौद्ध सम्प्रदायों के प्रति आचार्य की दृष्टि और शैली की विविधता का प्रमाण है।

शंकर-दर्शन में अनुभव एवं श्रुति के अनन्तर तर्क को तृतीय सोपान पर स्वीकार किया गया हैं। तर्क यहाँ स्वतन्त्र प्रमाण के रूप में न मानकर श्रुतियों के अनुग्राहक माने गए हैं (श्रुत्यनुकूलस्तर्क एव हि तर्कः)। तथापि बौद्ध आलोचना के प्रसंग में शंकर के तर्कों की यह विशेषता है कि वे यहाँ श्रुति के प्रति आग्रह नहीं दिखाते हैं। बौद्ध सम्प्रदाय की तत्त्वमीमांसा को युक्तियों के माध्यम से असंगत, अपूर्ण, परमार्थ व व्यवहार दोनों दृष्टियों से असफल और अतार्किक सिद्ध करने का यह प्रयत्न वस्तुतः शंकर द्वारा तर्क के प्रति बौद्धों की आस्था का सम्मान ही है।

ब्रह्मसूत्र द्वारा सर्वास्तिवाद के खण्डन में जो युक्ति दी गई उसमें उनके दो प्रधान निष्कर्ष थे- 1. क्षणभंगवाद मानने से लोकव्यवहार की सुसंगत व्याख्या नहीं हो सकती और 2. अचेतन पदार्थ जगत् की उत्पत्ति में समर्थ नहीं है। अतः स्थिर चेतन तत्त्व की सत्ता मानना आवश्यक है। आचार्य शंकर ने इन सूत्रों पर अपने भाष्य में सूत्रकार के उक्त आशय को ही विस्तारपूर्वक पुष्ट किया है।

सर्वास्तिवाद के विरुद्ध आचार्य शंकर द्वारा दी गई युक्तियों की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें क्षणभंगवाद की आलोचना, व्यवहार के स्तर पर मान्य अचेतन संसार की क्षणिकता को लेकर नहीं की गई है। अपितु आपत्ति का प्रधान बिन्दु सर्वास्तिवाद में मान्य चित्त का क्षणिक स्वरूप है जिसकी गणना यह दर्शन-सम्प्रदाय घटपटादि की तरह व्यवहार के स्तर पर करता है।[13]

इसी प्रकार आचार्य ने सर्वास्तिवाद में मान्य असंस्कृत धर्म (प्रतिसंख्यानिरोध व अप्रतिसंख्या निरोध) का

स्वरूप पदार्थ-विनाश माना है और विनाश को कार्य मानकर उसके कारण की अपेक्षा की है।[14] शंकर की यह आपत्ति क्षणभंगवाद के स्वरूप से हटकर कार्यकारणभाव के धरातल से की गई है जो बौद्ध दृष्टि से संगति नहीं रखती है।

आचार्य शंकर ने विज्ञानवाद के खण्डन में जिन युक्तियों का प्रयाग किया है, उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- 1. बाह्यार्थ के पक्ष से युक्तियाँ, 2. शंकर के पक्ष से युक्तियाँ।

विज्ञानवाद के विरुद्ध, बाह्यार्थवाद के पक्ष से कुल चार युक्तियाँ प्रस्तुत की गई हैं। इनमें से दो युक्तियों का लक्ष्य व्यवहार में विज्ञेय की सत्ता, आवश्यकता व उपयोगिता को सिद्ध करना है।[15] तृतीय युक्ति क्षणभंगवाद से सहोपलम्भ-नियम की असंगति को बताती है।[16] चतुर्थ में, आचार्य ने विज्ञानवाद में बाह्यार्थ के लिए प्रस्तावित स्वप्न के दृष्टान्त पर आपत्ति की है।[17]

उपर्युक्त युक्तियों के अलावा अन्य युक्तियाँ शंकर ने अपने दर्शन के पक्ष से भी प्रस्तुत की है।[18] इसका प्रधान लक्ष्य बाह्यार्थ का खण्डन करना न होकर, विज्ञानवाद में प्रस्तावित विज्ञान के स्वरूप अथवा विज्ञान के आधार पर व्यवहार के वैचिन्न्य की व्याख्या पर आपत्ति करना है। वासना व विज्ञान का सम्बन्ध, वासना के लिए नित्य आश्रय की अपेक्षा अथवा आलयविज्ञान के स्वरूप पर आपत्ति आदि युक्तियाँ वस्तुतः उक्त प्रधान युक्ति की ही पूरक हैं।

निष्कर्ष :

1. वेदान्त और बौद्ध विचारधाराओं में वेदान्त पक्ष से ब्रह्मसूत्र ने सर्वप्रथम सयुक्तिक और खण्डनात्मक संवाद को प्रारम्भ किया।
2. वेदान्त और बौद्ध तत्त्वचिन्तन को अद्वैत के धरातल पर लाने का सर्वप्रथम प्रयास गौडपाद ने किया।
3. दो प्रसिद्ध अवैदिक दर्शनों (जैन और बौद्ध) की ब्रह्मसूत्र के माध्यम से समीक्षा करते हुए शंकर ने बौद्ध दर्शन को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया है।
4. शंकर की बौद्ध दृष्टि के आधार सयुक्तिक पूर्वपक्ष, सयुक्तिक खण्डन, पारिभाषिक शब्दों के पर्याप्त उपयोग, बुद्ध के प्रति विचार आदि रहे हैं जो ब्रह्मसूत्रकार और गौडपाद की अपेक्षा इस दृष्टि को अधिक व्यापक बनाते हैं।
5. बौद्ध दर्शन की तत्त्वमीमांसा की समीक्षा के प्रसंग में बुद्ध के प्रति शंकर की दृष्टि न्यायसंगत नहीं है। इस विवरण से उनका आक्रोश और पूर्वाग्रह (धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक) स्पष्ट दिखाई देता है।

   एक ओर बौद्ध तत्त्वमीमांसा की विसंगतियों के लिए बुद्ध को उत्तरदायी बनाना तथा दूसरी ओर अधिकारि-भेद का समाधान देने से प्रतीत होता है कि बुद्ध की महत्ता के विषय में शंकर स्वयं स्पष्ट नहीं हैं।
6. बौद्ध सम्प्रदायों की आन्तरिक मतभिन्नता के प्रति शंकर की दोष-दृष्टि इसलिए उचित प्रतीत नहीं होती है कि यह प्रक्रिया वेदान्त सहित सभी दर्शन-सम्प्रदायों में विद्यमान रही है और दार्शनिक चिन्तन के विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया है।
7. समीक्षा हेतु अवधारणाओं के चयन में दार्शनिक शंकर की दृष्टि मार्मिक व लक्ष्यभेदी रही है जो बौद्ध दर्शन के उनके गूढ़ ज्ञान को स्पष्ट करती है।
8. नित्यतावाद के सर्वथा विरोध सिद्धान्त क्षणभंगवाद के खण्डन के प्रसंग में दी गई उनकी युक्तियों में अभिनव दृष्टि का अभाव प्रतीत होता है क्योंकि शंकर से पूर्व शून्यवाद सहित अन्य वैदिक सम्प्रदायों में भी इनसे न्यूनाधिक्य साम्य वाली युक्तियाँ मिलती हैं।

9. बौद्ध दर्शन के प्रति शंकर की दृष्टि बाह्यरूप से बौद्ध विरोध होते हुए भी प्रभाव और सामंजस्य के कतिपय गम्भीर तत्त्व अपनी पृष्ठभूमि में समाहित किये हुए है जिसके कारण उन पर प्रच्छन्न-बौद्ध जैसा आरोप लगाया गया है।

सन्दर्भ :

1. बादरायण रचित ब्रह्मसूत्र को 'वेदान्तसूत्र' भी कहा जाता है क्योंकि वेदान्त दर्शन ब्रह्मसूत्र से ही फलित हुआ है। सिन्हा, हरेन्द्रप्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1983, पृ. 289.
2. क्रमते न हि बुद्धस्य ज्ञानं धर्मेषु तापिनः।
   सर्वे धर्मास्तथा ज्ञानं नैतबुद्धेन भाषितम्। गौडपाद, माण्डूक्यकारिका, नवम् संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2024, कारिका 4/99
3. ज्ञानेजाऽऽकाशकल्पेन धर्मान्यो गगनोपमान्। ज्ञेयाभिन्नेन संबुद्धस्तं वन्दे द्विपदां वरम्। गौडपाद, माण्डूक्यकारिका, नवम् संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2024, कारिका 4/1
4. अपि च बाह्यार्थ-विज्ञान-शून्यवादत्रयमितरेतरविरुद्धमुपदिशतासुगतेन। शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938, सूत्र 2/2/32.
5. 1. सर्वथाप्यनादरणीयोऽयं सुगतसमयः श्रेयस्कामैरित्यभिप्रायः।
   2. सौगतवदार्हतमपि मतमसंगतमित्युपेक्षितव्यम्। शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938, सूत्र 2/2/32
6. शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938, सूत्र 2/2/33 और 36
7. तत्रैते त्रयो वादिन भवन्ति-केचित् सर्वास्तिवादिनः, केचिद् विज्ञानास्तित्ववादिनः, अन्ये पुनः सर्वशून्यत्ववादिन इति। शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938,सूत्र 2/2/18
8. स च बहुप्रकारः प्रतिपत्तिभेदाद्विनेयभेदाद्वा। शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938, सूत्र 2/2/32
9. अतश्चानुपपन्नो वैनाशिक तन्त्रव्यवहारः। शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938, सूत्र 2/2/32.
10. द्रष्टव्य- शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938, अधिपति-कारिका 2/25, 28-30, अप्रतिसांख्यासंख्या 2/2/22, 24; आकाश 2/2/22, 24; धर्म 2/2/20, 24, 28, 29; निरोध द्वय 2/2/24; निःस्वभाव 2/2/26; शून्यवाद 2/2/32 आदि।
11. (क) ..... क्षणभंगवादी वैनाशिको नापत्रपेत। सूत्र 2/2/25.
    (ख) किं बहुना सर्वप्रकारेण यथा यथाऽयंवैनाशिकसमय उपपत्तिमत्वाय परीक्ष्यते, तथा तथा सिकताकूपवद्विदीर्यत एव। शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938, सूत्र 2/2/32
12. शून्यवादिपक्षस्तु सर्वप्रमाणविप्रतिषिद्ध इति तन्निकरणाय नादरः क्रियते। शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938, सूत्र 2/2/31
13. शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938, सूत्र 2/2/18-26
14. शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938, सूत्र 2/2/22
15. शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938, सूत्र 2/2/28
16. शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938, सूत्र 2/2/28
17. शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938, सूत्र 2/2/29
18. शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938, सूत्र 2/2/31

❖❖❖

खेलों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग : क्रांति की ओर

❍ सौरभ सिंह[1]

जैसे-जैसे हम प्रौद्योगिकी-समृद्ध भविष्य की ओर बढ़ रहे हैं, हम खेल की दुनिया को तेजी से विकसित होते हुए देख रहे हैं। जबकि सांख्यिकीय डेटा ने हमेशा खेल उद्योग में एक केंद्रीय भूमिका निभाई है, एक तकनीक ने दर्शकों की व्यस्तता और रणनीतिक गेमिंग के स्तर में उल्लेखनीय वृद्धि की है। हम खेल उद्योग में एआई के आगमन के बारे में बात कर रहे हैं।

पिछले दो दशकों में, कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने हमारे खेलों से जुड़ने और विश्लेषण करने के तरीके को पूरी तरह से बदल दिया है। खेलों में एआईध्एमएल दुनिया को एथलीटों, प्रसारकों, विज्ञापनदाताओं और अंत में दर्शकों के लिए स्मार्ट बना रहा है जो वास्तविक समय के आंकड़े प्राप्त कर सकते हैं।

इसके अलावा, खेल पूर्वानुमान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की महत्वपूर्ण भूमिका, जो एक सूचित निर्णय लेने की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाती है, खेल में एआई के शीर्ष लाभों में से एक है।

आज के युग में, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) तकनीक ने हर क्षेत्र को प्रभावित किया है, और खेल जगत अपवाद नहीं है। AI खिलाड़ियों के प्रदर्शन को बेहतर बनाने, प्रशिक्षण को अनुकूलित करने, रणनीति बनाने और यहाँ तक कि खेलों का प्रसारण और दर्शक अनुभव को बढ़ाने में क्रांतिकारी बदलाव ला रहा है।

खेल और गेमिंग में एआई सांख्यिकी

खेल उद्योग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बाजार में हाल के वर्षों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इस वृद्धि का श्रेय एआई प्रौद्योगिकियों में प्रगति, खेल संगठनों के बढ़ते निवेश और डेटा-संचालित अंतर्दृष्टि की बढ़ती मांग को दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए, वैश्विक खेल विश्लेषिकी बाजार के 2030 तक 22 अरब डॉलर के मूल्यांकन तक पहुँचने का अनुमान है।

इसके अलावा, वैश्विक कृत्रिम बुद्धिमत्ता खेल बाजार के वर्ष 2030 तक +19.9 बिलियन तक पहुँचने का अनुमान है। यह बताता है कि खेलों और इसके वैश्विक बाजार में एआई का उपयोग विस्तारित हुआ है और अधिक खेल टीमों, लीगों और प्रौद्योगिकी के रूप में बढ़ने का अनुमान है। प्रदाता खेलों के लिए एआई समाधान

1. असिस्टेंट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा, पं. दीन दयाल उपाध्याय राजकीय महाविद्यालय, सेवापुरी, वाराणसी।

अपनाते हैं।

बाजार के विकास को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों में खिलाड़ियों की निगरानी और ट्रैकिंग, वास्तविक समय के खेल डेटा विश्लेषण, खेल सट्टेबाजी के लिए एआई और एआई खेल भविष्यवाणियों की बढ़ती मांग शामिल है। साथ ही, प्रशंसकों और खेल प्रेमियों के साथ बातचीत करने के लिए वर्चुअल असिस्टेंट और चौटबॉट की मांग भी बढ़ रही है।

एक अन्य अध्ययन से पता चलता है कि होमकोर्ट, ईएसपीएन, एआई स्मार्टकोच आदि जैसे मोबाइल एप्लिकेशन का उपयोग खिलाड़ियों के कौशल का आकलन करने के लिए किया जाता है, जिससे उन्हें सुधार करने का एक अच्छा माध्यम मिलता है।

उपरोक्त डेटा साबित करता है कि एआई खेल उद्योग को डेटा और सूचना-समृद्ध बनाने के लिए कैसे प्रभावित करता है। न केवल लोकप्रिय खेल बल्कि कुछ खेल उद्यम अपने व्यवसाय को चलाने के लिए पूरी तरह से एआई और मशीन लर्निंग पर निर्भर हैं। यदि आप उनमें से एक हैं, तो इसके उपयोग के मामलों पर जाने से पहले आप जानना चाहेंगे कि कैसे। आइए एक नजर डालें कि कैसे खेल के लिए AI उद्योग में क्रांति ला रहा है।

खेलों के लिए आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस फ्रेमवर्क का परिचय

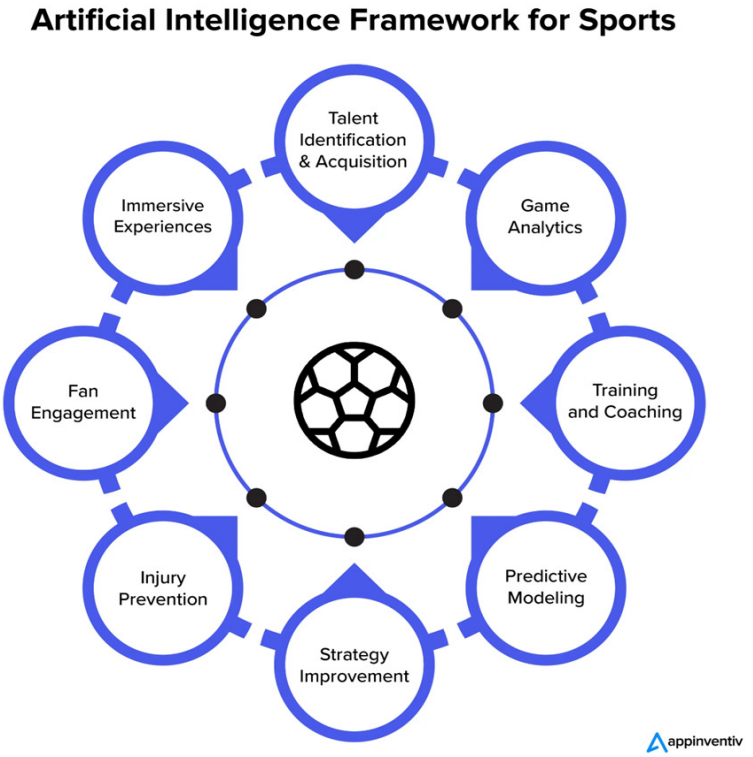

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एक व्यापक शब्द है जो विभिन्न प्रकार की तकनीकों को शामिल करता है जिन्हें हम 'स्मार्ट' तकनीक कहते हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता लगातार अंतर्दृष्टि के लिए डेटा का विश्लेषण, कार्यों को स्वचालित करने, संचालन को अनुकूलित करने और ग्राहक अनुभव को बढ़ाकर हजारों व्यवसायों में क्रांति ला

रही है।

अपनी पूर्वानुमानित क्षमताओं के साथ, एआई व्यवसायों को सूचित निर्णय लेने और विभिन्न उद्योगों में नवाचार और दक्षता बढ़ाने में मदद करता है। खेलों के लिए एक कृत्रिम बुद्धिमत्ता ढांचे में डेटा संग्रह और विश्लेषण शामिल है। रणनीति और प्रशिक्षण को बेहतर बनाने के लिए, यह वास्तविक समय के खिलाड़ी ट्रैकिंग, प्रदर्शन आँकड़े और पूर्वानुमानित मॉडलिंग का उपयोग करता है। यह ढांचा चोट की रोकथाम, प्रशंसक जुड़ाव और गहन अनुभवों के लिए एआई एल्गोरिदम का लाभ उठाकर खेल और प्रदर्शन में सुधार के क्षेत्र को बदल देता है।

खेल उद्योग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्राथमिक उद्देश्य मैदान पर और बाहर प्रतियोगिताओं को और अधिक उग्र बनाना है। ऐसे कुछ क्षेत्र हैं जहां एआई और मशीन लर्निंग ने खेल की दुनिया में एक ठोस छाप छोड़ी है।

शीर्ष खेल AI उपयोग

प्रतिभा की पहचान और अधिग्रहण

प्रतिभा की पहचान और अधिग्रहण एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें बायोमैकेनिक्स, खिलाड़ी प्रदर्शन माप और खिलाड़ी भर्ती जैसे विभिन्न पहलू शामिल हैं। बायोमैकेनिक्स एथलीटों की शारीरिक क्षमताओं और आंदोलन पैटर्न का आकलन करने, संभावित प्रतिभा की पहचान करने में मदद करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

खेलों में **IoT** का उपयोग करने से खिलाड़ी के प्रदर्शन को मापने में सहायता मिलती है, जिसमें भर्ती के लिए उनकी उपयुक्तता का आकलन करने के लिए खिलाड़ियों के कौशल, क्षमताओं और समग्र प्रदर्शन का व्यवस्थित रूप से मूल्यांकन करना शामिल है।

गेम एनालिटिक्स

गेम एनालिटिक्स में विभिन्न प्रकार के घटक शामिल हैं जो खेल आयोजनों की समग्र समझ और विश्लेषण में योगदान करते हैं। खेल विश्लेषण में एआई का एक पहलू अंपायर सहायता है, जिसमें मैचों के दौरान सटीक निर्णय लेने में अंपायरों की सहायता के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग करना शामिल है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण बॉल ट्रैकिंग सिस्टम है जो वास्तविक समय में गेंद की गति और प्रक्षेप पथ की निगरानी करता है।

एक अन्य घटक मैच की घटनाओं का विश्लेषण है, जिसमें टीम के प्रदर्शन और रणनीतियों में अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए खेल के विभिन्न पहलुओं, जैसे लक्ष्य, फाउल और प्रतिस्थापन की जाँच करना शामिल है। एआई एल्गोरिदम भविष्यवाणियां करने और खेल सट्टेबाजी उद्देश्यों के लिए अंतर्दृष्टि प्रदान करने के लिए बड़ी मात्रा में डेटा का विश्लेषण कर सकता है। कुल मिलाकर, गेम एनालिटिक्स खेल आयोजनों को समझने और उनका विश्लेषण करने, मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए विभिन्न तकनीकों और पद्धतियों का उपयोग करने का एक व्यापक दृष्टिकोण है।

प्रशिक्षण और कोचिंग

खेल के क्षेत्र में प्रशिक्षण और कोचिंग में जिम्मेदारियों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। इसमें सामरिक योजना शामिल है, जिसमें टीम की सफलता की संभावनाओं को अधिकतम करने के लिए रणनीति और गेम प्लान तैयार करना शामिल है।

इसके अतिरिक्त, खिलाड़ी की चोट का मॉडलिंग प्रशिक्षण और कोचिंग के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह संभावित जोखिमों की पहचान करने और निवारक उपायों को लागू करने में मदद करता है। टीम गठन का मूल्यांकन एक और महत्वपूर्ण कार्य है, क्योंकि इसमें एक एकजुट और संतुलित टीम बनाने के लिए व्यक्तिगत खिलाड़ियों की ताकत और कमजोरियों का मूल्यांकन करना शामिल है। ये विभिन्न प्रशिक्षण और कोचिंग पहलू

एक खेल टीम के समग्र विकास और सफलता में योगदान करते हैं।

पूर्वानुमानित मॉडलिंग

एआई कंप्यूटर पूर्वानुमानित मॉडलिंग के माध्यम से परिणामों की भविष्यवाणी करते हैं। बायोमेट्रिक्स, बाहरी कारकों और ऐतिहासिक डेटा को ध्यान में रखकर, ये मॉडल खिलाड़ी की चोटों का पूर्वानुमान लगा सकते हैं, जिससे चोट की रोकथाम तकनीकों के विकास में सहायता मिलती है। वे गेम परिदृश्यों का अनुकरण भी करते हैं, जो रणनीतिक योजना बनाने में मदद करता है।

रणनीति में सुधार

एआई-संचालित विश्लेषण में अब एक प्रतिद्वंद्वी परिप्रेक्ष्य भी शामिल है। टीमें पैटर्न और प्रवृत्तियों की पहचान करने के लिए प्रतिद्वंद्वी डेटा का विश्लेषण करके अधिक सफल गेम प्लान बना सकती हैं। एआई सिस्टम गेम के दौरान सर्वोत्तम लाइनअप संयोजनों की अनुशंसा करते हैं और वास्तविक समय में सामरिक समायोजन करते हैं।

चोट की रोकथाम

रीयल-टाइम प्लेयर बायोमेट्रिक मॉनिटरिंग एक महत्वपूर्ण घटक है। इससे थकावट, तनाव या नुकसान के जोखिम के संकेतकों की पहचान करना संभव हो जाता है। प्रशिक्षकों और चिकित्सा कर्मियों को सूचित किया जाता है, जिससे त्वरित हस्तक्षेप संभव हो पाता है और अंततः चोट लगने का जोखिम कम हो जाता है।

खिलाड़ियों का प्रदर्शन विश्लेषणः

AI एल्गोरिदम बड़ी मात्रा में डेटा का विश्लेषण करके खिलाड़ियों के प्रदर्शन में कमियों और सुधार के क्षेत्रों की पहचान कर सकते हैं। यह डेटा सेंसर डेटा, वीडियो फुटेज और मैच के आंकड़ों सहित विभिन्न स्रोतों से आ सकता है। ।प् कोचों को खिलाड़ियों को उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार प्रशिक्षण योजना बनाने और चोटों को रोकने में मदद कर सकता है।

प्रशिक्षण अनुकूलनः

AI व्यक्तिगत खिलाड़ियों और टीमों के लिए अनुकूलित प्रशिक्षण योजनाएँ बनाने में मदद कर सकता है। यह खिलाड़ी की ताकत और कमजोरियों, पिछले प्रदर्शन और विरोधियों के डेटा को ध्यान में रखता है। ।प् वर्चुअल प्रतिद्वंद्वी भी बना सकता है जो खिलाड़ियों को विभिन्न रणनीतियों और परिस्थितियों का अभ्यास करने में मदद करते हैं।

रणनीति निर्माणः

AI जटिल डेटा सेट का विश्लेषण करके और संभावित परिणामों का अनुमान लगाकर खेलों में रणनीति बनाने में मदद कर सकता है। यह कोचों को विरोधियों की रणनीतियों का पता लगाने, सर्वश्रेष्ठ गेम प्लान विकसित करने और रणनीति के दौरान रीयल-टाइम समायोजन करने में मदद कर सकता है।

प्रसारण और दर्शक अनुभवः

AI खेल प्रसारण को अधिक आकर्षक और जानकारीपूर्ण बनाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। यह रीयल-टाइम आँकड़े और विश्लेषण प्रदान कर सकता है, दर्शकों को विभिन्न कैमरा कोणों तक पहुँच प्रदान कर सकता है, और यहां तक कि व्यक्तिगत दर्शकों के लिए अनुकूलित अनुभव भी बना सकता है। ।प् भाषा अनुवाद और वास्तविक समय टिप्पणी प्रदान करके खेलों को वैश्विक दर्शकों के लिए अधिक सुलभ बना सकता है।

नैतिक चिंताएं:

AI के उपयोग से खेलों में कई नैतिक चिंताएं भी जुड़ी हुई हैं। डेटा गोपनीयता, एल्गोरिदम पूर्वाग्रह और नौकरी विस्थापन कुछ प्रमुख मुद्दे हैं। यह महत्वपूर्ण है कि **AI** का उपयोग जिम्मेदारी से और नैतिक दिशानिर्देशों के अनुरूप किया जाए।

निष्कर्ष :

AI खेल उद्योग में क्रांति ला रहा है, खिलाड़ियों, प्रशिक्षकों, दर्शकों और सभी के लिए खेलों के अनुभव को बेहतर बना रहा है। **AI** न केवल खेलों के प्रदर्शन को बढ़ाने में मदद कर सकता है, बल्कि इसे अधिक समावेशी, रोमांचक और सुलभ भी बना सकता है। जैसे-जैसे ।प् तकनीक विकसित होती रहेगी, हम खेलों में इसका और भी अधिक अभिनव अनुप्रयोग देख सकते हैं। इस प्रकार, **AI** का उपयोग खेलों में एक नया अध्याय खोल रहा है। यह खेल की दुनिया को बदल रहा है और खिलाड़ियों को उनके खेल को बेहतर बनाने में मदद कर रहा है।

संदर्भ :

1. https://appinventiv.com/blog/ai-in-sports/
2. https://www.britannica.com/technology/artificial-intelligence
3. https://www.researchgate.net/publication/335575740_Analysis_of_Artificial_Intelligence_AI_Application_in_Sports
4. https://www.mckinsey.com/capabilities/quantumblack/our-insights
5. https://research.ibm.com/projects/generative-ai-for-sports-and-entertainment

❖❖❖

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववादी चिंतन

❍ अनुभा श्रीवास्तव[1]

संक्षिप्ति :

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक कुशल संगठन कर्ता, विचारक, चिंतक दार्शनिक, अर्थशास्त्री, समाजसेवी, राजनेता, इतिहासकार, पत्रकार होने के साथ साथ भारतीय विचारों से ओतप्रोत एक महान व्यक्तित्व के धनी थे। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी मेहनत और लगन से संघ परिवार में अपनी एक अलग पहचान बनाई थी भारतीय जनसंघ के जनवरी 1965 के विजयवाड़ा अधिवेशन में उपस्थित सभी प्रतिनिधियों ने एकात्म मानव दर्शन को स्वीकार किया था। जो पंडित दीनदयाल उपाध्याय की एक बड़ी वैचारिक देन कहा जा सकता है। एकात्म मानववाद एक ऐसा दर्शन जो पूरे मानव कल्याण का एक समग्र विचार प्रस्तुत करता है। एकात्म मानववाद प्रत्येक मनुष्य की शरीर बुद्धि मन और आत्मा का एक एकीकृत कार्यक्रम है। मनुष्य को पूरी तरह सुखी रखना है तो शरीर के साथ-साथ मन बुद्धि और आत्मा के सुख का भी विचार करना होगा केवल भौतिक प्रगति ही नहीं आध्यात्मिक उन्नति का भी विचार करना होगा हम सबके हैं। सब हमारे हैं ऐसी चेतना का विकास करना होगा।

प्रस्तावना

15 अगस्त 1947 को देश ने आजादी का सूरज देखा जो बंटवारे के रक्त से लाल था भारत जिसने आजादी के साथ विरासत में तमाम चुनौतियों और समस्याओं को प्राप्त किया था, समस्याओं से ग्रसित वहीं भारत आज आजादी के 76 वर्षों के बाद 60 करोड़ से अधिक युवाओं के साथ एक अरब लोगों की एक ऐसी जमात के रूप में पूरे विश्व के सामने एक आर्थिक ताकत के रूप में देखा जा सकता है। दीनदयाल उपाध्याय की अवधारणा थी की आजादी के बाद भारत का विकास का आधार अपनी भारतीय संस्कृति हो ना कि अंग्रेजों द्वारा छोड़ी गई पश्चिमी विचारधारा हालांकि भारत में लोकतंत्र आजादी के तुरंत बाद स्थापित कर दिया गया था परंतु दीनदयाल उपाध्याय के मन में यह आशंका थी कि लंबे वर्षों की गुलामी के बाद भारत ऐसा नहीं कर पाएगा उनका विचार था कि लोकतंत्र भारत का जन्मसिद्ध अधिकार है ना कि पश्चिम का एक उपहार। उनके अनुसार लोकतंत्र अपनी सीमाओं से परे नहीं जाना चाहिए और जनता की राय उनके विश्वास और धर्म के आलोक में सुनिश्चित करना चाहिए।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने प्रत्यक्ष राजनीति में जाने से पूर्व राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से अपना सार्वजनिक

---

1. असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, हेमवती नंदन बहुगुणा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नैनी, प्रयागराज

जीवन आरंभ किया और वह भारतीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बन गए। दीनदयाल जी का संघ के प्रति लगाव किशोरावस्था में ही हो गया था जिसका श्रेय बलवंत महाशिंदे को जाता है जो स्वयं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक थे। उनकी स्पष्टवादिता और सादगी से बलवंत जी बहुत प्रभावित थे वह जल्द ही गहरे मित्र हो गए। संघ के विस्तार के लिए बलवंत जी ने ही दीनदयाल जी को संघ में सम्मिलित होने का न्योता दिया पर सघं के सिद्धांतों को लेकर दीनदयाल जी के मन में संदेह था कि क्या यह संघ कट्टरवाद का समर्थन है इसका मूलभूत सिद्धांत सिर्फ हिंदू धर्म की ही स्थापना और उसकी रक्षा है अन्य धर्म के प्रति संघ का व्यवहार पक्षपातपूर्ण है। संघ अन्य धर्म के प्रति उदासीन क्यों है। इसके जवाब में भाऊराव देवरस जी ने कहा कि हिंदू धर्म भारत का सबसे प्राचीन धर्म है अन्य सभ्यता और संस्कृत का प्रादुर्भाव इसी से हुआ है। गंगा की निकलने वाली धारा अलग-अलग जगह में अलग-अलग नाम से पुकारी जाती है लेकिन उसका स्वरूप और उसका कार्य एक ही है। ठीक इसी प्रकार हिंदू धर्म की स्थापना वास्तव में सभी धर्म की स्थापना है। इस प्रकार दीनदयाल जी के मन का संदेह पूरी तरह से खत्म हो गया और उन्होंने संघ के कार्यकर्ता बनने का निश्चय कर लिया। 14 जनवरी 1938 के दिन वे संघ में सम्मिलित हुए। संघ का प्रमुख उद्देश्य संपूर्ण देश को एकता, अखंडता के सूत्र में पिरोना है वह देश के छोटे से छोटे स्थान में भी लोगों को जागरूक करने का अभियान चला रहे थे जिसमें सुदूर लखीमपुर जिला भी सम्मिलित था जिसका प्रचारक दीनदयाल को नियुक्त किया गया कुछ ही दिनों में लखीमपुर में संघ का परचम लहरा गया वह अपने दायित्व पर शत प्रतिशत खरे उतरे उनकी कर्मठता देखकर के अन्य सभी प्रचारक विस्मित थे और वे संघ परिवार में अब तक सभी के प्रिया प्रचारक बन चुके थे।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ. हेडगेवार जी ने अपने जीवन के अंतिम समय तक भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को राजनीति से दूर रहकर ही अपना काम करना सही माना ।बाद में संघ के उत्तराधिकारी माधव सदाशिव राव गोलवलकर ने डॉक्टर श्यामा प्रसाद मुखर्जी जो कांग्रेस के विकल्प के रूप में पार्टी बनाना चाहते थे को अपनी संघ के कुछ सर्वश्रेष्ठ स्वयंसेवक का नाम देने का वादा किया जिनमें दीनदयाल उपाध्याय का नाम भी प्रमुख रहा। जिन्होंने मुखर्जी की असामयिक मृत्यु के बाद भारतीय जनसंघ को ऊंचाइयों तक पहुंचाया पडित जी आगे चलकर संघ के संयुक्त प्रांतीय प्रचारक बने वह जनसंघ में 1952 में सम्मिलित हुए एवं 1967 में पार्टी का अध्यक्ष बनने तक महासचिव के पद पर नियुक्त रहे। डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के निधन के पश्चात उन्होंने पार्टी के निर्माण की जिम्मेदारी अपने कंधों पर ले ली एवं इस कार्य में शानदार सफलताएं अर्जित की। पंडित उपाध्याय ने लखनऊ के पांचजन्य (साप्ताहिक) एवं स्वदेशी (दैनिक) का संपादन किया। भारतीय जनसंघ की स्थापना डॉक्टर श्यामा प्रसाद मुखर्जी के द्वारा वर्ष 1951 में हुई एवं दीनदयाल उपाध्याय को प्रथम महासचिव नियुक्त किया गया। वह लगातार दिसंबर 1967 तक जनसंघ के महासचिव बने रहे उनकी कार्यक्षमता, खुफिया गतिविधियों और परिपूर्णता के गुणो से प्रभावित होकर डॉक्टर श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने उनके लिए गर्व से यह सम्मान पूर्वक कहा था कि यदि मेरे पास दो दीनदयाल हो तो मैं भारत का राजनीतिक चेहरा बदल सकता हूं परंतु शायद ईश्वर को कुछ और ही मंजूर था और अचानक वर्ष 1953 में डॉक्टर श्यामा प्रसाद मुखर्जी के हर समय निधन से पूरे संगठन की जिम्मेदारी दीनदयाल उपाध्याय के कंधों पर आ गयी। भारतीय जनसंघ के 14 वार्षिक अधिवेशन में दीनदयाल उपाध्याय को दिसंबर 1967 में कालीकट में जनसंघ का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। देश की तात्कालिक चुनौतियों के लिए भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई थी। भारतीय जनसंघ (वर्तमान भारतीय जनता पार्टी) के अध्यक्ष भी बने इन्होंने ब्रिटिश शासन के दौरान भारत द्वारा पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता और पश्चिमी लोकतंत्र का आंख बंद करके कभी भी समर्थन नहीं किया उन्होंने लोकतंत्र की अवधारणा को सरलता से स्वीकार तो किया लेकिन पश्चिमी कुलीन तंत्र, शोषण और पूंजीवाद मानने से साफ

इनकार कर दिया है असल में वह एक ऐसा राजनीतिक दर्शन विकसित करना चाहते थे जो भारत की प्रगति और परंपरा के अनुकूल है और राष्ट्र की सर्वांगीण विकास करने में समर्थ हो, अपने इसी दर्शन का नाम दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्मक मानववाद रखा जो समस्त सृष्टि की विचारधारा है जिसमें जीवन की समग्रता से चिंतन और विकास जीवन के विकास का प्रबंध भी किया गया है संपूर्ण मानवता ही एकात्म मानववाद का केंद्र है।

एकात्म मानववाद सर्वप्रथम भारतीय जनसंघ के ग्वालियर अधिवेशन में 1964 में विचारार्थ प्रस्तुत किया गया और अगले ही वर्ष 1965 के विजयवाड़ा अधिवेशन में इसे स्वीकार कर लिया गया अप्रैल 1965 में पुणे में एक चतुरदिवसीय भाषण माला का आयोजन किया गया जिसमें की पंडित दीनदयाल उपाध्याय के द्वारा एकात्म मानववाद की विस्तृत व्याख्या की गई और आगे चलकर एक पुस्तक के रूप में भारतीय जनसंघ के केंद्रीय कार्यालय द्वारा 1968 में इसे प्रकाशित भी किया गया।

1965 के जनवरी मास में विजयवाड़ा में जनसंघ के अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन में पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के द्वारा दिया गया भाषण एकात्म मानववाद की अभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि को बहुत विस्तृत रूप से प्रस्तुत करता है। उस भाषण में उन्होंने कहा था- जब तक अंग्रेजों का हमारे देश पर साम्राज्य था देश में चले सभी आंदोलन एवं राजनीति का लक्ष्य स्वराज प्राप्त करना ही था। स्वराज मिल जाने के बाद हमारा स्वरूप क्या होगा हम किस दिशा की ओर चलेंगे आदि विषयों का किसी ने कोई विचार नहीं किया था ।बिल्कुल यह विचार नहीं हुआ था ऐसा तो नहीं कहा जा सकता है गांधी जी ने हिंद स्वराज में यह बताया है कि स्वाधीन भारत का स्वरूप कैसा होगा। उससे पहले तिलक ने भी गीता रहस्य में स्वाधीनता आंदोलन की तात्विक भूमिका का विवेचन किया था। इसके अतिरिक्त कांग्रेस और अन्य राजनीतिक दलों ने समय-समय पर जो प्रस्ताव किए थे उनमें भी इसी प्रकार के विचार प्रकट हुए थे परंतु दीनदयाल जी को यह लगता था कि इस विषय पर जितनी गंभीरता से अध्ययन किए जाने की आवश्यकता थी उतनी गंभीरता से वह नहीं हुआ। अंग्रेजी शासन की समाप्ति के बाद स्वतंत्र भारत की राजनीति, समाज व्यवस्था ,जीवन दर्शन आदि पर विदेशी शासको का जो प्रभाव था वास्तव में वह समय के साथ-साथ दूर होना चाहिए था किंतु इसके विपरीत वह प्रभाव उत्तरोत्तर और अधिक बढ़ता गया।

पंडित जी यह मांगते थे कि प्रत्येक राष्ट्र के लिए अपने स्व का विचार करना आवश्यक होता है स्वत्व के बिना स्वराज का कोई अर्थ नहीं होता ।आखिर प्रत्येक राष्ट्र अपनी प्रकृति के अनुसार प्रयास करते हुए सुखी और संपन्न जीवन व्यतीत कर सकने के लिए ही स्वतंत्रता की अभिलाषा रखता है। सभी देश की अपनी ऐतिहासिक सामाजिक और आर्थिक स्थिति होती है और उस समय उसे देश के जो भी नेता और विचारक होते हैं वे उस परिस्थिति में से देश को आगे बढ़ाने की दृष्टि से मार्ग निर्धारित करते हैं अपनी समस्या के समाधान के लिए जो हल उन्होंने सुझाए वह उसी प्रकार के अलग परिस्थिति में रहने वाले समाज पर पूरी तरह से सही हो और उसके वही वांछित परिणाम निकले यह सोचना गलत है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपने राजनीतिक क्षेत्र में जो भी कृतित्व किया उसे वह अपनी राष्ट्र के प्रति निष्ठा मानते थे और राष्ट्र निर्माण के एक पुनीत कार्य का हीं एक अंग मानते थे ।उनका मानना था कि किसी भी राष्ट्र जीवन की उन्नत के लिए राष्ट्र नीति ,उसके लिए आवश्यक राजनीति ,अर्थनीति आदि सभी पहलुओं पर मूलगामी चिंतन किए जाने की आवश्यकता है जो अपने देशकाल और परिस्थितियों के अनुरूप और स्वाभाविक हो।

भारतीय संस्कृति समग्रतावादी है और सार्वभौमिक भी है भारत ने संपूर्ण सृष्टि रचना में एकात्म देखा है भारतीय संस्कृति सनातन काल से एकात्ववादी रही है जो यह कहती है की सृष्टि के एक-एक कण में परंपरा

वलंबन है भारत में इसे ही अद्वैत कहा है। भारत ने सभ्यता के विकास में परस्पर सहयोग को ही मूल तत्व माना है पंडित जी ने एकात्म मानवाद के सर्वांगीण विकास और अभ्युदय के लक्ष्य को ही भारतीय दर्शन का मूल तत्व माना है। दीनदयाल जी कहते थे कि भारतीय संस्कृति एकात्म मानववादी है इसके अनेक प्रत्यय है यथा धर्म ,चिति एवं विराट आदि इन प्रत्ययों को राजनीति के क्षेत्र में प्रस्तुत करना एक क्रांतिकारी पहल थी। आजादी के आंदोलन में महात्मा गांधी ने भारतीय लोगों की मूल प्रवृत्ति और प्रत्ययों का उपयोग किया था किन्तु आजाद भारत पश्चात प्रत्ययों का अनुगामी बन गया । भारतीय संस्कृति के संदर्भ में हमने अपनी मूल विचारधारा ,मान्यताओं और प्रगति को न अपना करके पश्चात तत्वों पर अत्यधिक विश्वास किया । दीनदयाल ने विश्व के राजनीतिक विचार मंथन में भारतीयता का हस्तक्षेप किया इसी के परिणाम स्वरूप राजनीतिक पटल पर एकात्मक मानववादी दर्शन का अवतरण हुआ पंडित जी भारत की राजनीतिक समस्याओं का हल एकात्म मानववादी दर्शन में देखते हैं। एकात्मक मानववाद मानव जीवन व संपूर्ण सृष्टि के एकमात्र संबंध का दर्शन है जिसका पूर्ण वैज्ञानिक विवेचन पंडित जी के द्वारा किया गया था।

एकात्म मानववादी दर्शन की विशेषता यह है कि वह केवल राष्ट्र चिंतन तक ही सीमित नहीं है बल्कि उससे भी परे जाता है क्योंकि एकात्मक मानववाद में समाज को स्वयंभू माना गया है और राज्य एक संस्था है प्रत्येक व्यक्ति इस संस्था का अंग है ।वास्तविकता यह है कि व्यक्ति नाम की जो वस्तु है वह एकांगी नहीं बल्कि बहु अंगी है परंतु महत्वपूर्ण यह है कि व्यक्ति अनेक अंगों वाला होकर भी परस्पर सहयोग ,समन्वय को पूरकता और एकात्मकता के साथ चल सकता है। जनवरी 1965 के विजयवाड़ा के दिए गए अपने भाषण में पंडित दीनदयाल जी ने एकात्म मानववाद के संदर्भ में अपनी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए कहा था कि- इसके साथ ही हमें यह भी सोचना होगा कि किन कर्तव्य विमोद अवस्था में फंसे आज के विश्व को प्रगति पद पर अगर सर करने के लिए क्या हम कुछ कर सकते हैं हमें चाहिए कि आज की दुनिया पर बोझ बनकर दर रहते हुए केवल अपने स्वार्थ का ही विचार ना करते हुए अपनी संस्कृति और परंपरा में दुनिया को देने योग्य क्या-क्या बातें हैं इसका चिंतन कर जागतिक प्रगति के कार्य में सहयोग दें विगत हजार वर्षों में लग रहा अत: दुनिया के अन्य राष्ट्रों की तुलना में हम बराबरी में खड़े नहीं हो सके परंतु अब हम स्वाधीन हो गए हैं अब हमें इस कमी को पूरा करना चाहिए एक आत्मा मानव दर्शन का आयाम कितना विशाल है इससे ध्यान में आ सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्त तक भारत विदेशी शासन सत्ता का गुलाम रहा लेकिन स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने के पश्चात भी हमने अपनी दशा का आत्मचिंतन कर नई भारतीय व्यवस्था देने के स्थान पर अपनी मानसिक गुलामी का परिचय देते हुए पश्चिम की ही विचारधारा और व्यवस्थाओं को अपना लिया। संविधान में भी लोकतांत्रिक समाजवाद के लक्ष्य को हमने अपना लक्ष्य बनाया उपाध्याय जी यह मानते थे कि लोकतंत्र और समाजवाद दोनों ही विचारधाराए पश्चिमी परिस्थितियों की देन है जो हमारे भारतीय परिस्थितियों में ना तो एक साथ संभव है और ना ही इसे वांछित परिणाम प्राप्त किया जा सकते हैं इसलिए उन्होंने बार-बार भारतीय हितों को ध्यान में रख करके एक नई व्यवस्था प्रदान की। वास्तव में पंडित जी द्वारा प्रस्तुत एकात्म मानववादी दर्शन एक ऐसा स्वदेशी सामाजिक आर्थिक मॉडल प्रस्तुत करता है जिसमें विकास के केंद्र में मानव हो ।पंडित जी ने पश्चिमी पूंजीवादी व्यक्तिवाद तथा मार्क्सवादी समाजवादी दोनों का विरोध इस आधार पर किया कि यह दोनों ही विचारधारा केवल मानव के शरीर और मन की आवश्यकताओं पर तो विचार करती हैं इसलिए वे भौतिकवादी उद्देश्य पर आधारित है किंतु मानव के संपूर्ण विकास के लिए इनके पास समग्र दृष्टि नहीं है।

पूंजीवाद ,समाजवाद ,साम्यवाद आदि विचारधारा और सिद्धांत का उदय देश और काल की उपलब्ध परिस्थितियों की विशेष देन है इन्हीं में से बहुत सी विचारधाराए कालांतर में व्यापक रूप धारण कर लेती हैं। कई लोग स्वतंत्रता को निरंकुशता मानते हैं पश्चिम का भी विचार है कि समाज ,प्रकृति ,सृष्टि सब चीज मेरे

लिए हैं यानी व्यक्ति के लिए है कहते हैं की प्रकृति पर विजय प्राप्त करो अंग्रेजी में एक शब्द प्रयोग होता है अर्थात हर वस्तु का अपने लिए उपयोग । इसी अहंकार भाव ने पूंजीवाद तथा समाजवाद जैसी विचारधाराओं को जन्म दिया ।आज का समाजवाद सच्चे अर्थों में समाजवाद नहीं है वह भी एक प्रकार का व्यक्तिवादी है साम्यवाद में भी मजदूरों की सत्ता है समाज की नहीं इसमें भी एक समूह की तानाशाही है इन समस्त विचारध ारा के मूल में संघर्ष और प्रतियोगिता है इसमें सफलतम ही जीवित रहेगा का सिद्धांत दिखाई देता है। साम्यवादी भी प्रतियोगिता पर नहीं वर्ग संघर्ष पर विश्वास करते हैं यहां पर भी वर्गों की प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्धा दिखाई देती है इस प्रकार पश्चिम में पूर्णता का विचार नहीं होता टुकड़ों टुकड़ों में होता है। जबकि हमारी दृष्टि में अपूर्णता का विचार अधूरा है। उपाध्याय जी मानते हैं कि जीवन का ,समाज का आधार संघर्ष नहीं बल्कि सहयोग है प्रकृति भी सहयोग के आधार पर चलती है ।मनुष्य और समस्त जीव जंतु तथा प्राणी मात्र एक दूसरे के पूरक है इनमें संघर्ष नहीं है क्योंकि यह सभी अपने जीवन के लिए एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

भारतीय दर्शन यह नहीं मानता है कि दुनिया में समर्थ ही जिंदा रहे कमजोर नहीं । सभ्यता यह नहीं सिखाती है कि कमजोर से उसके जीवन जीने का अधिकार छीन लो बल्कि सभ्यता का अर्थ यही है कि कमजोर की रक्षा हो सके ।आयुर्वेद , चिकित्सा शास्त्र आदि की आवश्यकता ही इसलिए पड़ी ताकि एक दुर्बलतम व्यक्ति को भी सफल बनाया जा सके और उसे जीवित रखा जा सके सबल से दुर्बल की रक्षा के लिए ही राज्य रूपी संस्था अस्तित्व में आई ।समाज में मत्स्य न्याय न हो इसीलिए राज्य की स्थापना की गई समर्थ दुर्बल को समाप्त न कर दे इसलिए हम नियम ,कानून और एक सभ्य समाज की संकल्पना करते हैं। हमने संघर्ष को आधार नहीं माना ईर्ष्या ,द्वेष आदि दुर्गुणों को आधार नहीं बनाया। हमारा आधार एकात्मकता है सदगुण है यद्यपि की हमारे यहां भी छुआछूत, जाति पाति आदि अनेक दुर्गुण उत्पन्न हुए परंतु हमने उन्हें मिटाने के प्रयत्न किये। इसीलिए हम समानता को नहीं एकात्मकता को ज्यादा व्यावहारिक मानते हैं क्योंकि समानता तो भाई-भाई में भी नहीं हो सकती। इस संसार में अनेक तत्व है जिसमें एकता लाई जा सकती है ।पश्चिमी जगत समानता की बात करता है जैसे सबको वोट देने का अधिकार देकर समान बना दिया जाए लेकिन क्या हम प्रत्येक व्यक्ति को समान योग्यता, क्षमता, बुद्धि , तर्कवाद प्रदान कर सकते हैं। इतना ही नहीं बल्कि हम सबको प्रगति का समान अवसर भी नहीं प्रदान कर सकते ।जैसे दक्षिण में रहने वाले को उत्तर की जलवायु कैसे देंगे। इस प्रकार हमारे जीवन का आधार समानता नहीं आत्मीयता रहा है हमारा आधार संघर्ष और स्वार्थ नहीं है क्योंकि हम प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर का अंश मानते हैं।

उपाध्याय जी ने लगभग दो दशकों के अध्ययन व अनुभव के बाद अपनी विचारधारा को एकात्मक मानववाद के नाम से भारतीय जनसंघ के सिद्धांत और नीति प्रलेख में उदघो षित किया। उसकी प्रस्तावना में वे शंकराचार्य व चाणक्य का स्मरण करते हुए कहते हैं कि -'आज भारत के इतिहास में क्रांति लाने वाले दो पुरुषों की याद आती है ।एक वह कि जब सद्गुरु शंकराचार्य सनातन बौद्धिक धर्म का संदेश लेकर देश में व्याप्त अनाचार समाप्त करने चले थे और दूसरा वह कि जब अर्थशास्त्र धारणा का उत्तरदायित्व लेकर संघ राज्यों में बिखरी राष्ट्रीय शक्ति को संगठित कर साम्राज्य की स्थापना करने चाणक्य चले थे। आज इस प्रारूप को प्रस्तुत करते समय वैसा ही तीसरा महत्वपूर्ण प्रसंग आया है जबकि विदेशी धारणाओं के प्रतिबिंब पर आधारित मानव संबंधी अधूरे व अपुष्ट विचारों के मुकाबले विशुद्ध भारतीय विचारों पर आधारित मानव कल्याण का संपूर्ण विचार एकात्मक मानववाद के रूप में सुपुष्ट भारतीय दृष्टिकोण को नये सिरे से सूत्रबद्ध करने का काम हम प्रारंभ कर रहे हैं।''

पश्चिमी विचारको की ही भांति उनके अध्ययन का केंद्र व्यक्ति ही है ।उन्होंने व्यक्ति को (व्यष्टि) समाज को (समष्टि) नाम से संबोधित किया है लेकिन एकात्मक मानव दर्शन की व्यक्ति और समाज की समझ

पश्चिम की समझ से बहुत अलग है ।हमारी संपूर्ण व्यवस्था का केंद्र मानव होना चाहिए। व्यक्ति ही समष्टि का जीवमान प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है। भौतिक उपकरण मानव के सुख के साधन है साध्य नहीं। शरीर ,मन, बुद्धि और आत्मा युक्त पूर्ण मानव ही एकात्मक मानव है जो अनेक एकात्मक समष्टियो का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। एकात्म मानववाद के आधार पर हमें जीवन की सभी व्यवस्थाओं का विकास करना होगा।

उपाध्याय जी ने स्वयं कहा है –भारतीय संस्कृति की विशेषता यह है कि वह संपूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती है। उसका दृष्टिकोण एकात्मक वादी है। टुकड़े-टुकड़े की दृष्टि से विचार करना विशेषज्ञ की दृष्टि में ठीक हो सकता है परंतु व्यावहारिक दृष्टि में अनुपयुक्त है ।पश्चिम की समझ का प्रमुख कारण उनका जीवन के संबंध में टुकड़े-टुकड़े में विचार करना तथा उन सबको लगाकर जोड़ने का प्रयत्न करना है । व्यक्ति बहुरंगी है समाज के लिए व्यक्ति और व्यक्ति के लिए समाज अत्यंत आवश्यक है। दोनों अभिन्न है। मानव सावयव है जीव है ,आत्मा है जिस प्रकार व्यक्ति में शरीर ,मन, बुद्धि आत्मा होते हैं ठीक उसी प्रकार समष्टि के देश, संस्कृति धर्म और चिति चार अंग होते हैं इसी आधार पर उपाध्याय जी ने कहा कि- इस समाज का मैं एक अंग हूं इस समाज से आगे यदि पूर्ण मानव का विचार करें तो उसका भी मैं अंग हूं। वास्तविकता यह है कि व्यक्ति नाम की जो चीज है वह एकांगी नहीं अपितु बहुरंगी है। इसमें अनेकता का रंग है परंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि अनेक भागो वाला होकर भी परस्पर सहयोग, समन्वय, पूरकता और एकात्मकता के साथ चल सकता है।

एकात्मक मानव दर्शन व्यष्टि और समष्टि में संघर्ष नहीं मानता है अपितु एक दूसरे का पूरक मानता है। यह परिवार को समष्टि निर्माण में सर्वप्रमुख मानता है परिवार से विकसित सद्गुण आचारधर्म आगे चलकर समष्टि धर्म बन जाते हैं ।परिवार व्यक्ति और समाज को जोड़ने का सर्वप्रमुख उपकरण है। यह प्रथम इकाई है जो व्यक्ति को समाजीकरण की तरू तक ले जाती है। इसलिए उपाध्याय जी ने कहा कि सामूहिक जीवन के इन संस्कारों को मजबूत करके ही प्रगति की जा सकती है ।प्रत्येक व्यक्ति में मैं का विचार त्याग कर हम और हमारा विचार विकसित करना होगा ।

हमारी संस्कृत में मानव की प्रकृति को ध्यान में रखकर उसके शरीर ,मन, बुद्धि ,आत्मा सब का विचार सामने रखा है इसी आधार पर भारतीय संस्कृति ने मानव के सामने कर्तव्य के रूप मे चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ ,काम और मोक्ष का आदर्श रखा । यहां व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में उसकी भौतिक प्रगति के साथ-साथ नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति भी अभिप्रेत है। जिससे समाज की सहयोग धरणा हो सके। इन पुरुषार्थों से युक्त पूर्ण मानव हमारी आराधना का निष्कर्ष और साधन है। इन चारों पुरुषार्थों की उपासना से ही उसे सुख प्राप्त होता है इनमें से किसी एक ही पुरुषार्थ को मानव कर्तव्य की प्रेरणा का मूल या मानव जीवन की सफलता का मापदंड मनाना गलत होगा। भारतीय संस्कृत में इन चारों का एकत्रित विचार किया है इसमे धर्म को आध ारभूत पुरुषार्थ है। अर्थ और काम पुरुषार्थों की साधना धर्म के आधार पर करने से उनकी प्राप्ति सुखदायक होती है और वह व्यक्ति के विकास में सहायक होकर अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष का अर्थात जीवन की लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। तथापि शरीर ,मन ,बुद्धि और आत्मा का समुच्चय बना व्यक्ति केवल'' मैं ''तक सीमित नहीं है वह ''हम ''से भी संलग्न है इसलिए व्यक्ति के साथ समष्टि का भी विचार आवश्यक हो जाता है। यद्यपि समाज अनेक व्यक्तियों से बनता है फिर भी समाज का अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व भी होता है। समाज के भी शरीर, मन बुद्धि और आत्मा होते हैं और उसे भी धर्म, अर्थ ,काम और मोक्ष पुरुषार्थों की साधना करनी पड़ती है अर्थात क्योंकि व्यक्ति और समाज एकात्म के बंधन से आपस में जुड़े होते हैं ।व्यक्ति और समाज की पुरुषार्थ साधना एक दूसरे से बेमेल या विरोधी ना होकर परस्पर पूरक और पोषक होती है। इसीलिए व्यक्ति और

समष्टि की पुरुषार्थ साधना में सहायक अनेक संस्थाओं का निर्माण हुआ। व्यक्ति इनमें से अनेक संस्थाओं का अंग होता है इसीलिए कहा गया है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व एकांगी ना होकर विविधागी होता है। इन विविध संबंधों में एकता और एकात्मकता का ध्यान रखकर ही व्यक्ति विचार और व्यवहार करता है तो उसका समन्वित विकास होकर वह सुखी होता है और साथ ही समाज भी सुखी होता है।

Works Cited:

1. उपाध्याय, दीनदयाल, भारतीय अर्थनीति: विकास की एक दिशा (लखनऊ राष्ट्र धर्म प्रकाशन लिमिटेड) 1958
2. उपाध्याय, दीनदयाल, 'राष्ट्रीय जीवन की समस्याएं' (लखनऊ, राष्ट्र धर्म पुस्तक प्रकाशन), 1960
3. उपाध्याय, दीनदयाल, 'राष्ट्रीय चिंतन' (मुंबई जयको पब्लिशिंग हाउस), 1968
4. उपाध्याय, दीनदयाल, 'एकात्म मानववाद', केंद्रीय कार्यालय, भारतीय जनता पार्टी, 11, अशोक रोड दिल्ली, मई, 2014
5. नेने, वासुदेव, विनायक, पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खंड 2, एकात्म मानव दर्शन सुरुचि' प्रकाशन केशव कुंज झंडेवाला, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1986 (पुनर्मुद्रण 2014.)
6. उपाध्याय, दीनदयाल, एकात्मक मानववाद, प्रकाशन दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, 1972
7. उपाध्याय, दीनदयाल, 'राष्ट्रीय जीवन की दिशा', राष्ट्र धर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, 1971.

❖❖❖

कुम्भ : भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिचय, प्रयागराज के संदर्भ

- अंजना सिंह[1]
- श्वेता[2]

कुम्भ की भव्यता जो की लगातार बढ़ती जा रही है उसकी चर्चा की गयी है। प्रयागराज उन चार तीर्थ स्थानों में से एक है जहाँ पर कुम्भ के पर्व को मनाया जाता है। भारतीय समुदाय में हिंदुओं के पर्व कुम्भ के बीच का संबंध ज्ञात किया गया है। कुम्भ के संदर्भ में प्रयागराज जैसे क्षेत्र को विषय क्षेत्र के रूप में चुना गया है क्योंकि प्रयागराज का कुम्भ चारों स्थानों (हरिद्वार, उज्जैन, नासिक तथा प्रयागराज) में सबसे भव्य रूप में संपादित होता है। प्रयागराज जो कि उत्तर प्रदेश का एक छोटा सा जिला है जिसका क्षेत्र 5,482 वर्ग किमी है उसमें से कुम्भ मेले का आयोजन होना तथा विश्व का सबसे ज्यादा जनसंख्या एकत्रित होने वाला क्षेत्र बन जाता है कुम्भ के दौरान। कुम्भ की भव्यता दिन प्रतिदिन, वर्ष दर वर्ष और अधिक बढ़ती जा रही है जिसमें की भारतीय यात्री ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लोग भाग ले रहे है। कुम्भ में विदेशी यात्रियों की बढ़ती मात्रा का कारण शायद यह भी है कि सम्पूर्ण विश्व धीरे-धीरे अपनी सांस्कृतिक क्षेत्र या पृष्ठभूमि से दूर होते जा रहे हैं। विश्व के सबसे बड़े सांस्कृतिक महोत्सव की शुरुआत का वर्णन 640 वर्ष के पूर्व के समय से प्राप्त होता है। कुम्भ मेले का अपना एक अलग स्वरूप है यह महीने दो महीने चलने वाला एक सांस्कृतिक पर्व है कुम्भ के अर्थ से ज्ञात होता है कि पर्व का प्रचलन किसी कुम्भ अर्थात घड़े (अमृत कलश) के द्वारा प्रारम्भ हुआ होगा। अमृत कलश के किसी दानव के हाथों में से जाने से बचाते समय हुए युद्ध के दौरान जिन चार जगहों में ये बूंदें गिरी थी वहाँ पर कुम्भ का आयोजन किया जाता है जिसमें कि प्रयागराज एक प्रमुख स्थान रखता है। यह दुनिया के सबसे बड़े तीर्थ त्योहार, कुम्भ मेले का एक ऐतिहासिक अध्ययन है। प्रयागराज, उत्तरी भारत का एक राजनीतिक शहर है, जिसमें होने वाले विश्व के सबसे बड़े जमघट पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। इसमें मेले के एतिहासिक महत्व तथा परिवर्तनों का पता लगाने, प्रयागराज के साथ कुम्भ का क्या संबंध है तथा कुम्भ से प्रयागराज के हो रहे सांस्कृतिक विकास पर प्रकाश डालने की पूर्ण कोशिश की गयी है।

कुम्भ भारतवर्ष का सबसे बड़ा जन शैलाब है। यहाँ देश ही नहीं बल्कि विदेशों से भी लोग इस पर्व का आनंद लेने तथा गंगा स्नान के लिए आते हैं। कुम्भ का महत्व तो पूरे भारत में ही है परंतु जहाँ जहाँ इसे पर्व के रूप या मेले के रूप में आयोजित किया जाता है वो जगह सिर्फ चार जगह ही हैं जहाँ पर अमृत कलश से छलकी कुछ बुँदे गिरी हैं ये स्थान हरिद्वार, उज्जैन, नासिक तथा प्रयागराज हैं। हमारे द्वारा प्रयागराज के 2019

1. एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, बसंत महिला महाविद्यालय, राजघाट, वाराणसी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय

2. असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, बसंत महिला महाविद्यालय, राजघाट, वाराणसी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय

के कुम्भ अर्थात अर्ध कुम्भ, जो हर छः वर्ष के बाद होता है, के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की गयी है।

प्रयागराज जिले का परिचय

प्रयागराज जिला 24°47' उत्तर से 25° उत्तर अक्षांश के बीच और 81°19' और 82°21' पूर्व देशांतरों के बीच स्थित है। इसमें 5,246 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र शामिल है। यह जिला राज्य के दक्षिणी भाग में स्थित है जो भारत के विंध्य पठार के समीप और गंगा के समतल में है। प्रयागराज जिला पूर्व मे भदोही और मिर्जापुर द्वारा घिरा हुआ है, पश्चिम में कौशाम्बी तथा बांदा द्वारा तथा उत्तर में प्रतापगढ तथा जौनपुर द्वारा और बांदा तथा मध्य प्रदेश द्वारा दक्षिण मे घिरा है। जिला मे गंगा और यमुना नदी बहती हैंद्य जिले में आठ तहसील शामिल हैं, जिनका नाम सदर, सोरांव, फूलपुर, हंडिया, बारा, करछना, कोरांव और मेजा है। प्रयागराज जिले मे मेजा तहसील क्षेत्रफल के अनुसार सबसे बड़ी आबादी वाली तहसील है और सदर तहसील जिले की सबसे बड़ी तहसील है। प्रयागराज जिले में 20 विकास खंड, 2715 गाँव और 10 कस्बे हैं।

'प्रयागराज जिले को इलाहाबाद और कौशाम्बी में 1997 में विभाजित किया गया था। द्विविभाजन से पहले इसके द्वारा 7,261 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र को कवर किया गया था तब 9 तहसील और 28 सीडी ब्लॉक थे। दोआब क्षेत्र 2,015 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र को कवर करता है तीन तहसील के साथ, और 8 सीडी ब्लॉक कौशाम्बी के रूप में बनाए गए थे।

जिले का सामान्य प्रतिरूप

प्रयागराज मूल रूप से उत्तर प्रदेश के उच्च न्यायालय, उत्तर प्रदेश के महालेखा परीक्षक, रक्षा लेखा के प्रधान नियंत्रक (पेंशन) पीसीडीए, उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद (यूपी बोर्ड) कार्यालय के साथ एक प्रशासनिक और शैक्षिक शहर है, जो कि एक प्रमुख संस्थान है।

प्रयागराज शहर उत्तर प्रदेश के सबसे बड़े शहरों में से एक है और तीन नदियों- गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती के संगम पर स्थित है। बैठक बिंदु त्रिवेणी के रूप में जाना जाता है और विशेष रूप से यह स्थान हिंदुओं के लिए एक पवित्र भूमि है। आर्यों की पहले की बस्तियाँ इस शहर में स्थापित की गई थीं, जिसे 'प्रयाग' के नाम से जाना जाता था। यह अच्छी तरह से समझा जा सकता है है कि, "प्रयागस्य प्रवाशेषु पापम् नाशवती तत्क्षणम्" (सभी पापों को प्रयाग में प्रवेश मात्र से साफ किया जाता है)। यह शहर ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का दिल भी था।

तालिकाः 1 प्रयागराज जिले की जनसांख्यिकीय स्थिति

वास्तविक जनसंख्या	59,59,798	जनसंख्या वृद्धि	20.74%
1. पुरुष	31,33,479	प्रति वर्ग किलोमीटर	5,482
2. स्त्री	28,26,319	घनत्व वर्ग किलोमीटर	1,086
साक्षारता अनुपात	74.41	कुल बच्चों की जनसंख्या (0-6 वर्ष)	885,355
1. पुरुष साक्षारता	85.00	1. लड़के (0-6)	4,67,694
2. स्त्री साक्षारता	62.67	2. लड़कियां (0-6)	417,661
साक्षरों की संख्या	44,34,686	लिंग अनुपात (प्रति 1000)	902
1. पुरुष	26,63,457	बच्चों का लिंग अनुपात (0-6)	893
2. स्त्री	17,71,254	बच्चों का अनुपात	148.7%

स्त्रोत : **statistical bulletin of Allahabad district (2011)**

प्रयागराज का सांस्कृतिक रूप में परिचय

प्रयागराज का संदर्भ हिंदू पुराणों जितना पुराना है। पदम पुराण में, प्रयाग को इलाहाबाद के रूप में भी जाना जाता है, तथा सभी तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ के रूप में जाना जाता है, ब्रह्मा सृष्टिकर्ता देव के रूप में प्राकृत योग करने के लिए इस भूमि का चयन किया था। प्रयाग सोम, वरुण और प्रजापति का जन्मस्थान भी है। प्रयाग ब्राह्मणवादी एवं बौद्ध साहित्य के मनीषियों से सबद्ध रहा है। प्रयागराज भरद्वाज ऋषि, पानस ऋषि एवं दुर्वासा ऋषि की धरती थी। ऋषि भारद्वाज यहाँ 5000 ईसा पूर्व में रहते थे और 10,000 से अधिक शिष्यों को पढ़ाते थे तथा ये शिष्य इनके साथ ही यही प्रयाग की धरती मे ही निवास करते थे। प्राचीन वस्तुओं से निर्मित सबसे प्राचीन स्मारक, अशोक स्तंभ में तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के शिलालेख हैं। शिलालेख तथा उनके साथी राजाओं और राजा समुद्रगुप्त की प्रशंसा का वर्णन 643 ईसा पूर्व में चीनी यात्री हुआन त्सांग के द्वारा लिखी पुस्तक में देखने को प्रकट होता है। ऐसा माना जाता है कि प्रयाग को कई हिंदुओं द्वारा बसाया गया था, जो इस स्थान को पवित्र मानते थे।

कुम्भ की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

कुंभ मेला भारत में एक महान धार्मिक स्नान मेला और तीर्थयात्रा क्षेत्र है, जिसे पृथ्वी पर सबसे बड़ा धार्मिक आयोजन भी कहा जाता है। हर बारह साल में एक महीने से अधिक समय तक, यह पवित्र परंपरा लाखों लोगों को प्रयागराज में गंगा, यमुना और सरस्वती नदियों के संगम में स्नान के लिए लाती है। इस तीर्थयात्रा का आकार, विशेष रूप से तीन मुख्य स्नान दिवसों पर, लंबे समय से व्यापक पैमाने पर विस्मय का ध्यान केंद्रित करता है, जो की लाखों लोगों को यहाँ ले आता है। इस विस्मय का केंद्र तीन नदियों के तट पर फैले विशाल तम्बू के शहर की छवियों से उपजा है; तथा शाही जुलूस, पवित्र पुरुषों और नग्न तपस्वियों में, सबसे 'शुभ' (पवित्रतम) दिनों में नदी में स्नान करने की कतार में; और सघन रूप से भरे तीर्थयात्री जो लाखों लोगों द्वारा नदी तट की ओर खीच लता हैं। दुनिया भर में इन घटना की उल्लेखनीयता की ज्वलंत रंग तस्वीरें, एक विदेशी तमाशा की वैश्विक छवि बना रही है। लेकिन कुंभ मेला मीडिया के तमाशे से कहीं अधिक है। नदियों के सूखे बाढ़ के मैदान पर बीस-वर्ग मील में 'कुंभ सिटी' के अस्थायी और अभी तक जटिल बुनियादी ढांचे को बनाने की सरासर मानवीय उपलब्धि आश्चर्यजनक है। लाखों लोगों के घर (टेंट) हैं और किसी भी स्थायी शहर की तरह सड़क और पुल, बिजली स्टेशन और बिजली, स्वच्छता सुविधाएँ और क्लीनिक, पुलिस और अग्निशमन विभाग और परिवहन और दूरसंचार जैसी सुविधाएँ भी हैं। और यह हर बारहवें वर्ष में होता है, तथा साथ ही साथ सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न का संकेत भी देता है कि वे सभी क्यों आते हैं ? हजारों तपस्वियों के लिए इस महान तीर्थ का क्या महत्व है ? जो एक महीने के लिए यहां आते हैं और एक दिन के लिए आने वाले तीर्थयात्रियों के लिए हिंदू धार्मिक जीवन में कुंभ मेले का स्थान तीर्थ स्थान के संदर्भ में होता है, जो धार्मिक मेलों के रूप में जाना जाता है, जो भारत की लंबाई और चौड़ाई के मेलों के रूप में जाना जाता है। यह सदियों से चली आ रही परंपरा का हिस्सा है। मौडेन इंडिया में, परिवहन और संचार में तकनीकी विकास ने तीर्थयात्रा के उत्साह को पहले से अधिक लोकप्रिय बना दिया है।

तीर्थ

भारत भर में हजारों तीर्थ-स्थल हैं, जिन्हें तीर्थ कहा जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'पार करने वाले स्थान' (मोक्ष प्राप्त होती है जहाँ) कई तीर्थ भारत के पवित्र नदियों के किनारे भी स्थित हैं। वे ऐसे स्थल हैं जहाँ धार्मिक संस्कार सरल या विस्तृत रूप में होते हैं, और अधिक शक्तिशाली आध्यात्मिक फल प्राप्त कराते हैं। वे ऐसी जगहें हैं, जहाँ किसी की प्रार्थनाएँ अधिक आसानी से सुनी जाती हैं, जहाँ किसी की उदारता को बढ़ाया जाता है। प्रयाग, प्रयागराज का प्राचीन नाम है, जिसे तीर्थ राज कहा जाता है, जिसका अर्थ है 'तीर्थों का

राजा'। यहाँ कहा जाता है कि गंगा, यमुना, सरस्वती नदी के संगम किनारे, तीर्थ अनगिनत तीर्थयात्रियों के पापों और दुखों को अवशोषित करते हैं। स्वयं तीर्थयात्री, मानव भार के इस भार को खत्म करने के लिए एक स्थान की तलाश में प्रयाग भी आते हैं, जहाँ उनका आत्म दर्शन भी कराया जाता है। जबकि प्रयाग में निश्चित रूप से कई महत्वपूर्ण मंदिर हैं, इस पवित्र स्थान की प्राथमिक 'वेदी' नदी तट है, जहाँ नदियाँ आपस में मिलती हैं और एक साथ बहती हैं, जहाँ लोग स्नान के सरल संस्कार के लिए आते हैं, और पौराणिक कथाओं के अनुसार, जहाँ अन्य तीर्थ हैं साथ ही स्नान भी करते हैं। यह प्रयाग की शक्ति है। शहर के पारंपरिक नक्शा नदियों के संगम पर केंद्रित है, जिसमें सभी हिंदू देवताओं को परिदृश्य और नदी की स्थापना में एकत्रित किया गया है। यह एक ऐसा मानचित्र है जहां दिव्य उपस्थिति और सांसारिक शहर को एक साथ चित्रित किया गया है।

संगम

भारत की महान नदियों को दैवीय उत्पत्ति कहा जाता है और इन नदियों के जल को देवी शक्ति का एक तरल रूप भी माना जाता है, जो स्वयं सृष्टि की ऊर्जा रूप हैं। गंगा और यमुना दोनों नदियाँ हिमालय के उच्च पर्वत गंगोत्री और यमुनोत्री में से आती हैं। संगम जहाँ दो नदियों का संगम होता है, संगम के रूप में जाना जाता है और यह स्नान के लिए विशेष रूप से पवित्र है। जैसा कि गंगा को मंदाकिनी भी कहा जाता है (जिसका अर्थ है 'स्वर्ग की नदी') । प्रयाग में गंगा के किनारे सबसे बड़ा संगम है। यहीं पर गंगा और यमुना नदियाँ अदृश्य सरस्वती नदी से मिलती हैं। यह स्थान जहाँ तीन नदियों का संगम होता है, उसे त्रिवेणी कहा जाता है। जब प्रयाग में नदियाँ मिलती हैं, तो वे चौड़ी होती हैं और बरसात के मौसम में बाढ़ के पानी के साथ और चौड़ी हो जाती हैं। यहाँ से, गंगा वाराणसी होकर बहती है, और फिर बिहार और बंगाल से होकर गुजरती है। अंत में, एक हजार मील की दूरी तय करने पर, डेल्टा में एक महान संगम है, जहां गंगा बंगाल की खाड़ी में समुद्र से मिलती है।

प्रयाग में कुंभ मेले के लिए तीर्थ यात्रियों का संगम स्थल है। तीर्थयात्रियों के लिए, इस स्थान पर स्नान करना बहुत पवित्र क्षण को चिह्नित करता है। यहाँ नदियों को अमृत के साथ बहने का श्रेय प्राप्त है, कुंभ मेले के शुभ काल के दौरान 'अमरता का अमृत' बहता है यहाँ यह माना जाता है।

अमृत कलश

'असत्य से, हमें सत्य की ओर ले चलो, अंधकार से, हमें प्रकाश की ओर, मृत्यु से हमें अमरता की ओर ले चलो।' उपनिषदों की यह उद्धृत-प्रार्थना एक अधिक सार्वभौमिक सत्य को पुनः प्रकाशित करती है जो संस्कृतियों और धर्मों को फैलाती है, विस्तृत करती है- अमरता की लालसा में। कुंभ मेले से जुड़ी हिंदू कहानी में, यहाँ तक कि देवता मृत्यु पर काबू पाने की कोशिश करते हैं, और पौराणिक कथा के अनुसार, प्रयाग की धरती पर अमृत की एक बूंद गिरी थी। पुराने लोगों में से, लोग कहते हैं, कि देवताओं ने अपने लिए अमरता का अमृत माँगा जो छीर सागर में से निकला था। उन्होंने समुद्र की गहराई से अमृत लाने के लिए मंथन करने का फैसला किया। जिसके लिए उन्होने विष्णु जी को बाध्य किया और वे एक कछुआ बन गये और उसका खोल आधार बन गया जिस पर मंथन रखा जा सकता है। हिमालय पर्वत 'मंदरा' मंथन की छड़ी बन गया और सर्प 'वासुकी' वह रस्सी बन गये जिसके साथ मंथन करने का विचार किया गया था। फिर भी उस अमृत को प्राप्त करने के लिए, देवताओं को दानवों की सहायता की आवश्यकता थी, असुरों ने मंथन की रस्सी के एक छोर को खीचा जो सर्प का मुख था जबकि देवताओं ने दूसरे को खींने का निश्चय किया। प्रत्येक पक्ष मजबूती से मंथन कारता रहा जब तक उन्हे अमृत न प्राप्त हुआ तब तक। अमृत निकालने के बाद असुरों ने अमृत को अपने पास रख लिया था। अमृत प्राप्त करने के लिए जब विष्णु जी मोहिनी नाम की युवती के रूप में गए

तब असुरों ने अमृत को इसे उस युवती को दे दिया और विष्णु जी ने उसे तुरंत देवताओं को दे दिया, जो इसे स्वर्ग ले गए। इस अमृत कलश को पाने में जो 12 दिन तक देवताओं द्वारा असुरों में युद्ध हुआ उससे अमृत की चार बूंदें पृथ्वी पर गिर गई। परंपरा के अनुसार, ये बूंदें उन चार स्थानों पर पहुँची जहाँ आज कुंभ मेला मनाया जाता है:

1. हरिद्वार जहाँ गंगा मैदानी इलाकों में प्रवेश करती है,
2. त्रिवेणी संगम पर प्रयाग,
3. महाराष्ट्र में गोदावरी नदी पर नासिक में, और
4. मध्य प्रदेश में क्षिप्रा नदी पर उज्जैन में।

प्रत्येक स्थान पर हर बारह साल में एक ज्योतिषीय रूप से निर्धारित, चक्रीय अनुक्रम में एक मेला आयोजित किया जाता है जो कुंभ मेले को लगभग तीन साल के अंतराल में चारों जगह में से किसी एक जगह होने में सक्षम बनाता है।

तालिका: 2 कुम्भ के दौरान बृहस्पति, सूर्य और चंद्रमा की राशि

स्थान	नदी	राशिचक्र	महीना
हरिद्वार	गंगा	सूर्य, चंद्रमा और बृहस्पति मेष राशि में	चैत्र (मार्च-अप्रैल)
प्रयाग	गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती	सूर्य, चंद्रमा मेष राशि में या गुरु वृषभ राशि में	माघ (जनवरी-फ़रवरी)
नाशिक	गोदावरि	गुरु सिंह राशि में या सूर्य, चंद्रमा कर्क राशि में	भद्रपदा (अगस्त-सितंबर)
उज्जैन	शिप्रा	सिंह राशि में गुरु, मेष राशि में सूर्य	विशाखा (अप्रैल-मई)

कुंभ मेले का आध्यात्मिक आकर्षण क्या है ? अधिकांश तीर्थयात्रियों के लिए, नदियों में एक पवित्र डुबकी सबसे आध्यात्मिक मूल्य रखती है। वे पूरी तरह से एक बार, दो बार, तीन बार पानी में डुबकी लगाते हैं, और फिर अपने हाथों में पानी लेकर नदी में फिर से देवताओं और पूर्वजों को अर्पित करने के लिए डालते हैं। वे फूलों और तेल के दीयों का प्रसाद बनाते हैं, उन्हें गंगा माँ के पानी में प्रवाहित करते हैं। शाम के समय, तीर्थयात्री नदी के तट पर एक आरती (दीपक अर्पण तथा प्रसाद) के लिए आते हैं, जो कि पुजारियों द्वारा किया जाता है जो नदी में विशाल, बहु तेल के दीपक वाले बर्तन को उठाते हैं तथा आरती करते हैं। इसी लिए लोग दूर दूर से आते हैं। उन कल्पवासियों के लिए जिन्होंने पूरे एक महीने तक रहने की कसम खाई है, गंगा स्नान एक या दो बार एक दिन में करते है। यहाँ एक साधारण दिन पर, नदी के किनारे स्नान एक निरंतर गतिविधि है, सुबह होने से पहले भी लोग गंगा स्नान करते तीन पारंपरिक शाही स्नान दिवस हैं: मकर संक्रांति, मौनी अमावस्या और वसंत पंचमी। पौष पूर्णिमा, माघी पूर्णिमा और महा शिवरात्रि जैसे अन्य आध्यात्मिक रूप से शुभ दिन हैं लेकिन तीन मुख्य शाही जुलूस के महान स्नान दिन हैं। अखाड़ों के प्रमुख, संन्यासियों के मठवासी, कुंभ मेले के आदि लोग स्नान के लिए आते हैं। वे हाथियों, ट्रैक्टरों या ट्रकों की सवारी करते हुए आते हैं, जिन्हें फूलों से सुसज्जित किया जाता है और शाही छतरी द्वारा सजाया जाता है। उनके पीछे अखाड़ों के सदस्य, उनके मठ के प्रतीक चिह्न, उनके पवित्र वस्त्र या पूरी तरह से नग्न शरीर जो पवित्र स्नान के लिए राख से ढंके हुए हैं साधु आते हैं। अखाड़ों के साधुओं को इन शुभ दिनों पर संगम पर स्नान करने को प्राथमिकता और विशेष अधिकार दिए जाते है।

अखाड़ा

गुरु-शिष्य कि धार्मिक परंपरा में सामाजिक त्याग के बाद वे एक साथ रहते हैं जहा गुरु द्वारा शिष्य कि शिक्षा प्रदान कि जाती है तथा मोक्ष का मार्ग प्राप्त कराया जाता है।

उच्चतम स्तर पर अखाड़े को उनकी पारंपरिक प्रणाली के आधार पर तीन अलग-अलग संप्रदायों में से एक में वर्गीकृत किया जाता है। भारत में 14 अखाड़े जो माघ मेले में हैं। इन 14 अखाड़ों को आगे निर्वाणी, दिगंबर और निर्मल सम्प्रदाय के रूप में विभाजित किया गया है। इन अखाड़ों को सन्यासी, वैरागी और उदासीन संप्रदाय के नाम से भी जाना जाता है।

(ए) निर्वाणी: शैव भगवान शिव के अनुयायी हैं जिन्हें संन्यासी के नाम से भी जाना जाता है। इसमें अखाड़ों के साथ-साथ साधु, संत और नागाओं की संख्या सबसे अधिक है।

(बी) दिगंबर: वैशवती भगवान विष्णु के अनुयायी हैं जिन्हें वैरागी के नाम से भी जाना जाता है।

(सी) निर्मल: इसे उदासीन के नाम से भी जाना जाता है, कई देवताओं के अनुयायी।

इस सबसे बड़े धार्मिक आयोजन (2019) में 14 अखाड़ों की पेशवाई निकाली गयी है, जिसमें ये बहुत धूम धाम से गाजे बाजे के साथ कुम्भ में प्रवेश लेते हैं। 2013 में सिर्फ 13 ही अखाड़ों द्वारा प्रवेश लिया गया था परंतु इस बार 2019 में यहाँ 1 और अखाड़े का प्रवेश बढ़ गया है जो कि बहूत महत्वपूर्ण बात भी है।

14 अखाड़ों की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित है-

श्री निरंजनी अखाड़ा : इसकी स्थापना 826 ई. में गुजरात के मांडवी में हुई मानी जाती है। इनके ईष्ट देव भगवान शंकर जी के पुत्र कार्तिक जी हैं।

इनमें दिगंबर साधु, महंत तथा महामंडलेश्वर आदि होते हैं। प्रयागराज, हरिद्वार, उज्जैन, उदयपुर तथा त्र्यंबकेश्वर में इनकी शाखाएँ हैं।

1. श्री जुनदत्त (जूना) अखाड़ा : जूना अखाड़ा 1145 ई. में कर्णप्रयाग उत्तराखंड मे स्थापित हुआ था। भैरव अखाड़े के नाम से भी यह विख्यात है। इनका केंद्र वाराणसी के हनुमान घाट पर माना जाता है। मयदेवी हरिद्वार के पास भी इनका आश्रम है। इस अखाड़े में नागा साधु निवास करते हैं। इसके पीठाधीश्वर स्वामी अवधेशनन्द गिरि जी महराज हैं।
2. श्री महानिर्वाण अखाड़ा : स्थापना 671 ई. में हुई है। झारखंड के बैजनाथ या हरिद्वार के नीलधारा में से इनका कोई एक जन्म स्थान है जोकि निश्चित नहीं है। ईष्ट देव इनके कपिल महामुनि जी हैं। इतिहास के द्वारा, 1260 ई. में एमएचएनटी भगवानन्द गिरि जी के नेतृत्व में 22 हजार नागा साधुओं के कनखल स्थित मंदिर को आक्रमणकारी सेना के कब्जे से छुड़ाया था।
3. श्री अटल अखाड़ा : गोंडवाना क्षेत्र में 569 ई. में स्थापित हुआ द्य ईष्ट देव भगवान गणेश जी हैं, मुख्य पीठ पाटन में है। आश्रम प्रयागराज, हरिद्वार, उज्जैन, कनखल तथा त्र्यंबकेश्वर में स्थित है।
4. श्री आवाहन अखाड़ा : स्थापना 646 में हुई थी, 1603 में पुनर्स्योजन किया गया था द्य इनके ईष्ट देव श्री दत्तात्रेय और गजानन जी दोनों हैं। इनका केंद्र काशी में स्थित है। आश्रम ऋषिकेश में भी स्थित है। प्रमुख संत स्वामी अनूप गिरि तथा उमराव गिरि जी हैं।
5. श्री आनंद अखाड़ा : इसकी स्थापना 855 ई. में हुयी थी मध्यप्रदेश के बेरार में। इसका केंद्र भी वाराणसी ही है। शाखाएँ प्रयागराज, हरिद्वार, उज्जैन में है।
6. श्री पंचाग्नि अखाड़ा : इसकी स्थापना 1136 ई. में हुई थी। ईष्ट देव इनके गायत्री है और इंनका प्रधान केंद्र काशी है। इनके सदस्यों में चारों पीठ के महामंडलेश्वर, शंक्राचार्य, साधु, व ब्रह्मचारी शामिल हैं। आश्रम प्रयागराज, हरिद्वार, उज्जैन, तथा त्र्यंबकेश्वर में स्थित है।

7. श्री नागपंथी गोरखनाथ अखाड़ा : स्थापना 866 ई. में अहिल्या गोदावरी संगम पर हुई थी। संस्थापक पीर शिवनाथजी हैं। इनके मुख्य देवता गोरखनाथ जी हैं तथा इनमें बारह पंथ शामिल हैं। यह संप्रदाय योगिनी कौल नाम से प्रसिद्ध है और इनकी त्र्यंबकेश्वर शाखा त्र्यंबकमठिका नाम से प्रसिद्ध है।
8. श्री वैष्णव अखाड़ा : स्थापना 1595 ई. में दारागंज में स्थापित हुआ। इसमें तीन संप्रदाय हैं निर्मोही, निर्वाणी, तथा खाकी। अखाड़ा मारुति मंदिर के पास स्थित है।
9. श्री उदासीन पंचायती बड़ा अखाड़ा : स्थापना 1710 ई. में हुई थी। इस संप्रदाय के संस्थापक श्री चंद्राचार्य उदासीन हैं। इनमें उदासीन साधु, मंहत व महामंडलेश्वर की संख्या ज्यादा है। शाखाएँ आश्रम प्रयागराज, हरिद्वार, उज्जैन, कनखल, भदौनी, साहेबगंज, मूलतान, नेपाल तथा त्र्यंबकेश्वर में स्थित है।
10. श्री उदासीन नया अखाड़ा : 1710 ई. में स्थापना हुई है। इसे श्री उदासीन पंचायती बड़ा अखाड़ा के कुछ साधुओं ने अलग होकर बनाया था। इनके प्रवर्तक मंहत सुधीरदसजी थे। इनकी शाखाएँ प्रयागराज, हरिद्वार, उज्जैन, कनखल तथा त्र्यंबकेश्वर में स्थित है।
11. श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा : स्थापना 1784 ई. में हुई थी। श्री दुर्गसिंह महाराज द्वारा इसकी स्थापना की गयी है। इनकी इष्ट पुस्तक श्री गुरु ग्रंथ साहिब है। शाखाएँ प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन और त्र्यंबकेश्वर में हैं।
12. निर्मोही अखाडा : अखाड़े की स्थापना 1720 में रामनंदाचार्य महाराज जी द्वारा की गयी थी। अखाड़े के मठ और मंदिर उत्तर प्रदेश, उतराखंड, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, तथा बिहार में है।
13. किन्नर अखाडा : अभी तक कुम्भ में सिर्फ 13 ही अखाड़ों की पेशवाई होती थी परंतु 2019 में 14 अखाड़ों की पेशवाई हुई है वह चौदहवां अखाड़ा यही किन्नर अखाड़ा ही है। इस अखाड़े में करीब 2500 साधु और संन्यासियों के आने का अनुमान किया गया था। किन्नर अखाड़े की महामण्डलेश्वर लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी जी हैं।

साल 2016 में उज्जैन में कुम्भ के समय किन्नर अखाड़ा अस्तित्व में आया द्य प्रयागराज कुम्भ में इस बार 2019 में पहली बार ये कुम्भ में पधारे हैं, प्रयागराज कुम्भ में अभी तक सिर्फ 13 अखाड़ों जिनमें नागा साधुओं की शान ही कुम्भ की जान हुआ करती थी वही पेशवाई करते थे द्य परंतु प्रयागराज कुम्भ मे इस बार एक नया अध्याय जुड़ गया है जो कि किन्नर अखाड़े के आहने या भाग लेने से हुआ हैद्य

अखाड़े और उनके मुख्यालय

क्रम संख्या	अखाड़ों के नाम	संप्रदाय	मुख्यालय
1	जूना अखाडा	शैव	वाराणसी
2	निरंजनी अखाडा	शैव	प्रयागराज
3	महानिर्वाणी अखाड़ा	शैव	प्रयागराज
4	आवाहन अखाड़ा	शैव	वाराणसी
5	अटल अखाड़ा	शैव	वाराणसी
6	आनंद अखाड़ा	शैव	नासिक
7	अग्नि अखाड़ा	शैव	जूनागढ़
8	दिगंबर अखाड़ा	वैष्णव	सबरखानथा
9	निर्वाणी अखाड़ा	वैष्णव	अयोध्या, फैजाबाद
10	निर्मोही अखाड़ा	वैष्णव	मथुरा

11	निर्मल अखाड़ा	उदासीन	हरिद्वार
12	बड़ा उदासीन अखाड़ा	उदासीन	प्रयागराज
13	नया उदासीन अखाड़ा	उदासीन	हरिद्वार
14	किन्नर अखाड़ा –	उज्जैन	

नागा साधु

नागा साधु को हिन्दू धर्मावलम्बी साधु भी कहते हैं जो कि नग्न रूप में रहते हैं तथा ये युद्ध कला में माहिर होने के लिए प्रसिद्ध होते हैं। ये नागा साधु की परम्परा शांकराचार्य जी द्वारा की गयी थी। ये सभी नागा साधु आश्रम में रहते हैं। ये आश्रम हरिद्वार और बाकी के दूसरे तीर्थ स्थानों में हैं। इनका जीवन जीने का तरीका आम आदमी से अधिक कठोर तथा अनुशासन वाला होता है। ऐसा माना जाता है कि इन नागा साधुओं का गुस्सा बहुत ही जादा भयानक होता है। कहा जाता है कि भले ही दुनिया अपना रूप बदलती रहे लेकिन शिव और अग्नि के ये भक्त इसी स्वरूप में रहेंगे। इनके जीवन में खानपान तथा विचारों दोनों पर संयम बहुत जादा होता है। नागा साधु में भी दर्जे होते हैं जसे कि त्रिशूल, तलवार, शंख और चिलम से वे अपने दर्जे को दर्शाते हैं।

ये साधु प्राय: कुम्भ में दिखाई देते हैं। नागा साधुओं को लेकर कुम्भ मेले में बड़ी जिज्ञासा और कौतूहल रहता है, खासकर विदेशी पर्यटन में। कपड़े न पहनने के कारण शिव भक्त नागा साधु दिगंबर भी कहलाते हैं, अर्थात् आकाश ही जिनका वस्त्र होता है। कपड़ों के स्थान पर ये भ-भूत या धूनी की राख लपेटे ये साधु कुम्भ मेले में सिर्फ शाही स्नान के समय ही खुलकर श्रद्धालुओं के सामने आते हैं। अधिसंख्य नागा पुरुष ही होते हैं, कुछ महिलाएँ भी नागा साधु हैं पर वे सार्वजनिक रूप से समान्यत: नग्न नहीं रहतीं अपितु एक गेरुवा वस्त्र लपेटे रहती हैं।

भारत में इस सनातन धर्म के वर्तमान स्वरूप की नींव आदिगुरु शंकराचार्य जी ने राखी थी। शंकराचार्य ने सनातन धर्म की स्थापना के लिए कई कदम उठाए, जिनमें से एक था देश के चार कोनों पर चार पीठों का निर्माण करना। ये पीठ थे गोवर्धन, शारदा, द्वारिका और ज्योतिर्मठ पीठ हैं।

कल्पवास

संगम तट पर कुम्भ मेले के समय कल्पवास का एक विशेष ही महत्व है। हमारे पुराणो जैसे कि पदम पुराण तथा ब्राह्मण पुराण के अनुसार, कल्पवास कि अवधि पौष मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी से प्रारम्भ होकर माघ मास की एकादशी तक होता है। महर्षि दत्तात्रेय द्वारा पदम पुराण में कल्पवास की पूर्ण व्यवस्था का वर्णन किया गया है। उनके अनुसार बताया गया है कि, कल्पवासी को इक्कीस नियमों का पालन करना चाहिए। जैसे कि कुछ नियम इस प्रकार हैं- दयाभाव, ब्रह्मचर्य, व्यसनों का त्याग, सन्यास इत्यादि। ऐसा माना जाता है कि कल्पवास के पहले दिन तुलसी तथा शालिग्राम की स्थापना कर पूजा की जाती है। टेंट के बाहर किसी कोने में कल्पवासी द्वारा जौ बीज रोपित की जाती है, जो कल्पवास समाप्ति पर कल्पवासी द्वारा साथ ले कर जायी जाती है, परंतु उसके द्वारा लगाया गया तुलसी का पौधा वह गंगा जी में विसर्जित कर के जाता है। कल्पवासी जमीन पर सोता है, तथा इस दौरान फलाहार करता है। व्यक्ति द्वारा भजन कीर्तन, प्रभु चर्चा, प्रभु की लीला के दर्शन तथा प्राय: दिन में दो बार स्नान किया जाता है।

कल्पवासी द्वारा कल्पवास प्रारम्भ करने के बाद उसे 12 वर्ष तक कल्पवास करना पड़ता है जो कि एक परंपरा है। आज भी कल्पवास नयी तथा पुरानी पीढ़ी के लिए आध्यात्म की राह का एक पड़ाव है जिससे स्वनियंत्रण और आत्मशुद्धि का प्रयास किया जाता है।

नेत्र कुम्भ 2019

कुम्भ 2019 में जो कि 12 जनवरी से 4 मार्च तक नेत्र कुम्भ का आयोजन किया गया था। आध्यात्म, संस्कृति एवं सौहार्द्र के इस महासमागम में आए व्यक्तियों कि नेत्र कुम्भ के माध्यम एसआर नेत्रों का समुचित नि:शुल्क जांच की सुविधा उपलब्ध करवाई गई। नेत्र कुम्भ के लिए प्रशाशन तथा मेले द्वारा विशेष व्यवस्था करायी गयी है। 50 दिनों तक चलने वाले इस नेत्र कुम्भ के मध्याम से 10 लाख लोगों कि आँखों कि जांच के साथ 1 लाख लोगों को नि:शुल्क चश्में भी प्रदान करने का तथा 10 हजार लोगों का आपरेशन कर ज्यादा से ज्यादा लोगों को लाभ पहुँचाने का प्रयास किया जाएगा। यह 2019 के कुम्भ मेले की मुख्य व्यवस्था में से एक है।

कुम्भ 2019 की भव्यता

भारत आध्यमिकता का देश है। यह कहना कठिन नहीं है, क्योंकि विश्व की सबसे बड़ी धार्मिक जमगढ़ यही भारत देश के उत्तर प्रदेश राज्य के प्रयागराज जिले में होता है। विविधता होने के कारण भारत देश में व्रत और त्योहारों का मनाया जाना स्वाभाविक है। यहाँ धार्मिक आध्यात्मिक आयोजन बहुत ही भव्य व आस्था के साथ मनाए जाते हैं, कुम्भ मेला भी इसी में से एक है, यहाँ शामिल होने देश विदेश से लोग आते हैं। वर्ष 2019 में भी कुम्भ मेले का आयोजन किया गया। प्रयागराज में जो कि मान्यता अनुसार अर्ध कुम्भ है। प्रयागराज में इस अर्ध कुम्भ का आयोजन 15 जनवरी से प्रारम्भ होकर 4 मार्च 2019 को समाप्त हुआ। देश या विश्व जो भी कहले इस मेले कि धार्मिक मान्यता बहुत पुरानी तथा परंपरागत मनी जाती है। ज्ञातव्य है कि सरकार द्वारा इस अर्ध कुम्भ को दिव्य कुम्भ तथा भव्य कुम्भ का नाम दिया गया है।

2019 में नेत्र कुम्भ के खासियत के साथ ही साथ एक नयी चीज भी देखने को मिली कि संगम क्षेत्र में शाही स्नान वाले दिन सभी स्नानार्थियों के ऊपर हेलिकॉप्टर द्वारा फूलों की वर्षा की गई। इसके साथ ही साथ पहली बार किन्नर अखाड़े के कुम्भ में भाग लेने से 2019 के कुम्भ की भव्यता और अधिक बढ़ गई

सरकार द्वारा कुम्भ को भव्य बनाने के लिए 192 देशों को दूतावास के माध्यम से निमंत्रण भेजा गया, साथ ही साथ देश के गावों को भी कुम्भ का निमंत्रण भेजा गया। कुम्भ के प्रचार करने हेतु सरकार ने रोड शो का भी आयोजन किया तथा कुम्भ मेले में 72 देशों के ध्वज भी लगाए गए।

निष्कर्ष

प्रस्तुत लघु शोधके अंतर्गत कुम्भ की स्थिति, विस्तार तथा लगातार उसकी बढ़ती भव्यता का ज्ञान एकत्रित करने का प्रयास किया गया है तथा यह निष्कर्ष प्राप्त किया गया है कि कुम्भ का भौगोलिक वितरण कुछ इस प्रकार का है कि प्रत्येक जगह जिन चार स्थानों पर कुम्भ लगता है सभी किसी न किसी नदी के किनारे स्थित हैं। हरिद्वार गंगानदी के किनारे, प्रयाग गंगा, यमुना तथा अदृश्य सरस्वती नदी के संगम के किनारे, उज्जैन शिप्रा नदी और नासिक गोदावरी नदी के किनारे पर स्थित है। प्रयागराज का कुम्भ ज्यादा प्रसिद्ध है क्योंकि यह गंगा यमुना तथा अदृश्य सरस्वती नदी के किनारे पर स्थित है तथा यहाँ पर कुम्भ, अर्द्ध कुम्भ एवम इसके अलावा प्रत्येक वर्ष माघ मेले का आयोजन होता है जिसमें कि कुम्भ या अर्द्ध कुम्भ जैसा ही आयोजन किया जाता है। लोग यहाँ आते हैं, स्नान करते हैं तथा कुछ लोग एक महीने तक कल्पवास भी करते हैं। परंतु इस मेले में नागा साधु लोग सम्मिलित नहीं होते हैं तथा न हीं ये मेला इतना भव्य तथा विस्तृत होता है। कुम्भ हो, अर्द्ध कुम्भ हो या माघ मेला हो, विदेशी लोगों का इस मेले को ले कर उत्साह उतना ही होता है। कुम्भ मेला और प्रयागराज जिले के बीच के संस्कृतिक संबंध की बात करें तो यह ज्ञात होता है कि प्रयागराज एक ऐतिहासिक भूमि के रूप में तो प्रसिद्ध है ही साथ ही साथ यह कुम्भ की भव्यता से भी बहुत प्रभावित होता है प्रत्येक वर्ष दर वर्ष

कुम्भ के लिए आने वाले लोगों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। इतिहास की मान्यता के अनुसार कुम्भ को मनाने का कारण, अमृत कलश के लिए हो रहे देवताओ और दानवों के बीच युद्ध के दौरान चार स्थानों पर अमृत की बूंदे गिरी जिसके कारण ये स्थान पवित्र हो गए। यह कह सकते हैं कि यहाँ की धरती में अमृत है इस कारण यहाँ पर कुम्भ का आयोजन किया जाता है। कुम्भ के प्रत्येक बारह वर्ष बाद मनाने का कारण यह है कि, हिन्दू जो कि भगवानमें मान्यता रखते हैं। उनके द्वरा यह माना जाता है कि भगवान जहाँ स्वर्ग में निवास करते हैं। उनका एक दिन हमारे पृथ्वी के एक वर्ष के बराबर होता है। चूंकि अमृत कलश को पाने के लिए किए गए युद्ध में देवताओं तथा दानवों को बारह दिन का समय लगा था जिस कारण से कुम्भ का आयोजन बारह वर्ष बाद किया जाता है। यह पर्व पृथ्वी लोक में भारत के चार स्थानों प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन और नासिक में हर बारह वर्ष पर महाकुंभ के रूप में और प्रयाग व हरिद्वार में दो महाकुंभ के बीच में छठवें वर्ष अर्द्ध कुम्भ के रुप में मनाया जाता है।

कुम्भ एक ऐसा पर्व हैजहां समस्त मानव जाति के बीच वंश, वर्ण, धर्म का भेद मिट जाता है। सबके मन में ईश्वर में लीन होने और मोक्ष प्राप्त करने की कामना होती है। यहाँ विश्व के हर कोने से आनेवाले करोड़ों तीर्थ यात्रियों और पर्यटकों को देखना अपने आप में अद्‌भुत, जीवंत और अनूठा होता है। यह पर्व विश्व का सर्वाधिक श्रेष्ठ और विशालतम धार्मिक समागम वाला होता है, जहाँ विश्व के कोने-कोने से अलग अलग मान्यताओं वाले, भाषाओं वाले, परम्पराओं वाले, संप्रदायों वाले लोग आते हैं और पवित्र नदियों के संगम के जल में स्नान कर मोक्ष के भागीदार बनते हैं।

कुम्भ हमारी संस्कृति में कई दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पूर्णता को प्राप्त करना ही हमारी संस्कृति का लक्ष्य है। प्रयागराज का कुम्भ अन्य कुंभों मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रकाश की ओर ले जाता है। यह ऐसा स्थान है जहाँ बुद्धिमत्ता का प्रतीक सूर्य का उदय होता है। इस स्थान को ब्रह्मांड का उद्‌गम और पृथ्वी का केंद्र माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि ब्रह्मांड की रचना से पहले ब्रह्मा जी ने यहाँ अश्वमेध यज्ञ किया था। दशाश्वमेध घाट और ब्रह्मेश्वर मंदिर इस यज्ञ का प्रतीक स्वरूप अभी भी यहाँ मौजूद है। इस यज्ञ के कारण भी कुम्भ का विशेष महत्व है। ऐसा माना जाता है कि कुम्भ और प्रयाग एक दूसरेके पर्यायवाची हैं। सम्पूर्ण रुप से देखाजाय तो यह ज्ञात होता है कि गंगा और कुम्भ दोनों ही लोगो की संस्कृति के लिए बहुत आवश्यक अंग हैं। जीवन में मुख्य रूप से हिन्दू धर्म के लोगो के लिए इसका महत्व ही अलग प्रकारका है। कुम्भ केवल भारतीय लोगों के लिए ही नहीं बल्कि विदेशी लोगों के लिए भी एक रूचि का विषय या संस्कार है। कुम्भ के लिए माना जाता है कि कुम्भ में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, समस्त देवियाँ, सातों द्वीपो और सभी महासागर विद्यमान हैं। उसमें अथर्ववेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का ज्ञान समाहित है। इसलिए जो कुछ भी इस जगत में है और जो कुछ भी जीवंत है, कुम्भ उसका प्रतीक है। इसी कुम्भ की प्राप्ति की कामना से समस्त श्रद्धालु कुम्भ मेले में आते हैं। कुम्भ मेला एक उत्सवया यूं कहा जा सकता है कि वास्तव में एक पर्व है।

संदर्भ:

- अरोरा, एन.(2013): टाइम्स आफ इंडिया: रिवर आफ फेथ
- सिंह, पी. (2012 नवंबर): "प्रेलीमिनारी रिपोर्ट फ्रम द फील्ड", पब्लिक हेल्थ प्रोग्राम इन महा कुम्भ मेला बाइ गवर्नमेंट
- भारती, आशीष. केस स्टडि ऑन कुम्भ मेला
- बिहार स्टेट डिसस्टर मैनेजमेंट अथॉरिटी, मास गड़ेरिंग इवैंट मैनेजमेंट, आ कसे स्टडि ऑफ महा कुम्भ, 2013, इलाहाबाद
- मिनिस्टरी ऑफ हैल्थ एंड फॅमिली वेलफैर, गवर्नमेंटऑफ इंडिया, सेटटिंग अप ऑफ मोबाइल टेलेमेडिसिन यूनिट

इन कुम्भ मेला 2016 एट उज्जैन, मध्य प्रदेश
- अर्बन इंडिया प्रोजेक्ट, कुम्भ मेला, डिटेल्ड रिसर्च क्वेस्शन्स
- द इंडियन एंड फॉरेन टुरिस्ट विसिट्स इन इंपोर्टेंट टुरिस्ट प्लेसेस ऑफ उत्तर प्रदेश इन 2011 टु 2015 एंड 2012 टु 2016 एंड 3013 टु 2017
- श्रीवास्तव, कृष्ण चंद्र (1985) 'प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति ' पृष्ठ 812.
- टंडन, हरिमोहन दस (2001): 'प्रयाग राज'।

❖❖❖

वृद्धावस्था की समस्याओं पर आधारित इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास

- मंजुला अशोक बिसनाल[1]
- अमरनाथ प्रजापति[2]

संक्षिप्ति :

प्राचीनकाल से ही सामाजिक समस्याओं को साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया जा रहा है। इक्कीसवीं सदी के साहित्य में विविध विषयों की चर्चा हो रही है। गद्य साहित्य के अनेक विधाओं के माध्यम से समाज का यथार्थ रूप प्रस्तुतकिया जा रहा है। साहित्य के माध्यम से स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श और किन्नर विमर्श के ज्वलंत मुद्दों को लोगों तक पहुँचाने का कार्य किया जा रहा है। इन सब विमर्शों के बाद वृद्धावस्था को लेकर भी अनेक उपन्यास लिखे गये हैं। वृद्धों की सामाजिक स्थिति और उनकी समस्याओं को उपन्यास में अभिव्यक्त किया जाने लगा है। वृद्धजन पर लिखे गए उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है- पारिवारिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक आदि दृष्टिकोण से वृद्धों की समस्याओं एवं उनकी संवेदनाओं को अभिव्यक्त करना।

बीज शब्द : वृद्धावस्था, युवापीढ़ी, भारतीय संस्कृति, मानवीय मूल्य, संवेदना, उपेक्षित।

प्राचीनकाल से ही वैदिक एवं पौराणिक ग्रंथों में वृद्ध लोगों के बारे में उल्लेख मिलता है। मानव जीवन को चार अवस्थाओं में विभाजित किया गया है- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। संन्यास आश्रम में आकर वृद्ध लोग ज्यादातर धार्मिक आचरण में अपना समय बिताते हैं। भारतीय संस्कृति में वृद्धजन को सम्मान भाव से देखा गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि "मातृदेवो भवः पितृदेवो भवः।[1]" इस तरह कहा जा सकता है कि माता-पिता भगवान के समान होते हैं। उनके प्रति पूज्यभाव रखना आवश्यक है। रामायण और महाभारत जैसे पौराणिक ग्रंथों में भी वृद्ध पात्रों के बारे में अभिव्यक्ति मिलती है।

वृद्धवस्था के संदर्भ में दिलीप मेहरा जी का मत है कि "वृद्धावस्था की परिस्थितियों, घटनाओं आदि का चिंतन करना अर्थात् वृद्धावस्था की समस्याओं को समझकर उनके लिए उचित समाधान करना।"[2] हिन्दी साहित्य में वृद्धों की संवेदना और उनकी जीवन की विविध समस्याओं के बारे में अभिव्यक्ति इक्कीसवीं सदी में तीव्रता से हो रही है तथा बाजारवादी संस्कृति का प्रभाव युवा पीढ़ी पर किस हद तक पड़ रहा है उसे उजागर करने का प्रयास किया जा रहा है।

---

1. शोधछात्रा, हिंदी विभाग, कर्नाटक राज्य अक्कमहादेवी महिला विश्वविद्यालय, विजयपुर, कर्नाटक, मो. 9945126667

2. शोध पर्यवेक्षक, सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, कर्नाटक राज्य अक्कमहादेवी महिला महाविद्यालय, विजयपुर।

भूमंडलीकरण के इस युग में समाज में काफी बदलाव होने लगा है। माता-पिता बुढ़ापे में अपने पुत्रों की देख- भाल में रहने के बजाए वृद्धाश्रम में रह रहे है। उन्हें एक बेजान वस्तु की तरह देखा जा रहा है। आर्थिक रूप से बच्चों पर निर्भर वृद्धों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति भी आती है कि बुढ़ापे में भी काम करने लगते हैं। इस तरह वृद्ध जीवन से जुड़ी हुई सूक्ष्म विचारों को उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

वृद्धावस्था की समस्याओं को आधार बनाकर अनेक उपन्यास लिखे गए हैं। प्रत्येक उपन्यास में अलग-अलग दृष्टिकोण के माध्यम से वृद्ध जीवन पर प्रकाश डाला गया है। संक्षेप में कुछ प्रमुख उपन्यास इसप्रकार है- काशीनाथ सिंह का 'रेहन पर रग्घू'(2006), चित्रा मुद्गल का 'गिलिगडु' (2007), हृदयेश का 'चार दरवेश'(2011), रमेशचंद्र शाह का 'कथा सनातन' (2012), ज्ञान चतुर्वेदी का 'हम न मरब' (2014), तरुण भटनागर का 'लौटती नहीं जो हँसी' (2014), टेकचन्द्र का 'दाई' (2017), गोविन्द मिश्र का 'शाम की झिलमिल' (2017), गीतांजलि श्री 'रेत समाधि' (2018) आदि।

काशीनाथ सिंह द्वारा रचित 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास वृद्धावस्था पर आधारित है जिसमें आधुनिकता के प्रभाव के कारण परिवार के बिखरते स्वरूप को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र रघुनाथ अपने बच्चों को उत्तम शिक्षा दिलाता है तथा बुढ़ापे में अपने ही पुत्रों से उपेक्षित होता है। वह अपनी संस्कृति से बंधा हुआ है। बुढ़ापे में अपनी जमीन को छोड़कर अपने बहू के साथ रहने के लिए चला जाता है। एक विस्थापित वृद्ध का चित्रण यहाँ पर हुआ है। नामवर सिंह इस उपन्यास के बारे में इस प्रकार कहते हैं, "इसे उस दृष्टि देखें, जैसा लेखक ने कहा है, अगर बनारस हमारा नगर है तो पहाड़पुर, जो इस उपन्यास का केंद्र है, मेरा घर है। इसलिए रेहन पर रग्घू घर की कहानी है, 164 पृष्टों में एक घर की कहानी। जो पहाड़पुर गाँव है उसमें रामनाथ, छविनाथ आदि कई नाथ है।"[3]

चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'गिलिगडु' में नष्ट हो रही मानवीय संवेदना को अभिव्यक्त किया गया है। इसमें दो वृद्धों के जीवन की शारीरिक और मानसिक समस्याओं के बारे में प्रस्तुत किया गया है। यह कथा 13 दिन तक चलता रहता है। बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी की मित्रता की गहनता यहाँ पर देख सकते हैं। बाबू जसवंत सिंह अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद अपने बेटे के पास रहने के लिए आते हैं तो उन्हे अनेक समस्याओं से गुजरना पड़ता है। घर का मुखिया साथ ही बूढ़े होने के कारण भी उन्हें कोई सम्मान नहीं मिलता है। बाबू जसवंत सिंह कहते है, "कानपुर से आते ही उन्हें इस बात से प्रसन्नता हुई थी कि चलो बेटे-बहु ने टॉमी की जिम्मेदारी सौंपकर उन्हें अपने गृहस्थी की किसी जिम्मेदारी के काबिल समझा। अब तो उन्हे यह भी लगने लगा है कि इस घर में वे सही अर्थों में किसी के लिए बुजुर्ग हैं तो वह केवल टॉमी है।"[4] इस तरह जसवंत सिंह के दिल्ली आने के बाद उनके साथ किस तरह का दुर्व्यवहार किया जाता है, उसे मार्मिकता के साथ व्यक्त किया गया है।

हृदयेश द्वारा रचित 'चार दरवेश' उपन्यास में चार वृद्ध लोगों के जीवन के बारे में प्रस्तुत किया गया है। उन चार वृद्ध पात्रों का नाम है- चिंता हरण शर्मा, दिलीपचन्द, शिवशंकर और रामप्रसाद गुप्ता। यह चार वृद्ध शाम को पुलिया पर बैठकर वर्तमान समाज में हो रहे गतिविधियों के बारे में चर्चा करते थे। इन वृद्धों के जीवन में अनेक तरह की समस्याएँ थी। इनकी जीवन शैली भी अलग-अलग थी। रामप्रसाद गुप्ता बुढ़ापे में किसी पर आश्रित न होकर स्वतंत्र जीवन बिताने के बारे में कहते हैं। बुढ़ापे में आर्थिक रूप से सक्षम होना आवश्यक है। रामप्रसाद गुप्ता अपने पोते से इस प्रकार कहते हैं, "बेटे, पच्चीस हजार की रकम आज के जमाने में बड़ी नहीं होती है। बुढ़ापे में किसी के आगे हाथ फैलाने की नौबत न आये, बेटे इसी का यह इंतजाम है।"[5] इससे यह स्पष्ट होता है की वृद्धावस्था में आर्थिक स्वावलंबना से युक्त जीवन जीना चाहिए।

रमेशचंद्र शाह जी का द्वारा रचित 'कथा सनातन' में मुख्य पात्र है सनातन और उसके तीन मित्र मण्डल- सनक, सनत कुमार और सनन्दन। सनातन 70 वर्ष की आयु में रहकर जीवन को अलग रूप से जीना चाहते हैं। इस उपन्यास में सनातन धर्म और पौराणिक विचारों के बारे में निरंतर चर्चा किया गया है। ब्रह्मा जी के अस्तित्व के बारे में भी बताया गया है। सनातन अपनी जिज्ञासा के बारे में अपनी डायरी में इस प्रकार लिखते है- "अपनी शंकाओं को छिपाना-दबाना खुद अपनी आत्मा के साथ, अर्थात परमात्मा के साथ विश्वासघात करना है।"[6] इस प्रकार सनातन मन में जो भी शंकाएं आए उसे निवारण करना सही समझते हैं।

ज्ञान चतुर्वेदी का 'हम न मरब' में वृद्धावस्था का मार्मिक उल्लेख मिलता है। उपन्यास का आरंभ कबीर के इस दोहे- 'हम न मरब मरिहै संसार' से होता है। इसका आशय है कि, "भक्त संसार के स्वरूप को जान चुका है उसे ज्ञान प्राप्त हो गया है और ईश्वर की कृपा उस पर हो गयी है इसलिए वह कहता है कि हम नहीं सारा संसार मरेगा।"[7] इस उपन्यास में लेखक ने मृत्यु की यथार्थ रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। बब्बा नामक वृद्ध व्यक्ति की मृत्यु से कथा का आरंभ होता है। उनकी मृत्यु के बाद भी कुछ प्रमुख घटनाओं को उजागर करते हुए उपन्यास के अंत तक उत्सुकता को बनाया रखता है। प्रमुख रूप से इस उपन्यास में मृत्यु और बुढ़ापे का चित्रण किया गया है।

तरुण भटनागर का 'लौटती नहीं जो हँसी' में वृद्धावस्था के बारे में देख सकते है। इनका यह पहला उपन्यास है। हँसी के विविध पक्षों को यहाँ पर प्रस्तुत किया गया है। लोरमी नामक गाँव में बाबूजी जैसे पात्र को चित्रित करके नष्ट हो रहे मानवीय मूल्यों के बारे में बताया गया है। हँसी को प्रस्तुत समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का रूप दिया गया है। हँसी को जीवन में किस तरह प्रयोग करना चाहिए, उसके साधक-बाधक क्या है उसके बारे में लेखक ने सरल रूप से चित्रित किया है। लेखक उपन्यास के संदर्भ में कहते है, "लोरमी से हजारों किलोमीटर दूर भोपाल नाम के एक शहर में, शाहपुर झील के किनारे बने छोटे बासी पनही बदबू वाले पार्क में लाफ्टर क्लब के कुछ सत्तर-अस्सी साल के बूढ़े इकट्ठा हो रहे थे।"[8] वृद्ध लोगों में एक आशा थी की हँसी के माध्यम से उनकी समस्याएँ दूर हो सके।

डॉ. सूरज सिंह नेगी का 'रिश्तों की आँच' सन् 2016 में प्रकाशित हुआ है। उपन्यास की मुख्य पात्र का नाम है रामप्रसाद। वह अपना सम्पूर्ण जीवन को अपने घर के लिए अर्पित करता है। रामप्रसाद अपने से छोटे भाई-बहन रमेश और ममता के शिक्षण के बारे में हमेशा चिंता करते थे। जब रमेश और ममता उत्तम जीवन हासिल करते है तो रिश्तों का महत्व भूल जाते हैं। इस उपन्यास में नीम का पेड़ और रामप्रसाद के बीच रिश्ते को स्थापित किया गया है। दो पीढ़ियों के बीच का अंतर यहाँ पर व्यक्त किया गया है। इसमें लेखक युवा लोगों के बारे में बताते हुए कहते हैं, "ऑफिस में वैमनस्यता और खींचतान बढ़ती ही जा रही थी, पद या उम्र का लिहाज तो जैसा खत्म सा हो गया था। नई पीढ़ी के युवा ऑफिस में एक नया माहौल पैदा कर चुके थे।"[9] इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक संस्कृति के प्रभाव से युवा लोग वृद्धजन की उम्र और अनुभव को उपेक्षित कर रहे हैं।

वृद्ध जीवन की दृष्टि से 'दाई' टेकचन्द जी का एक महत्वपूर्ण उपन्यास माना जाता है। लेखक ने इस उपन्यास में रेशम बुआ नामक पात्र के द्वारा स्त्री जीवन पर प्रकाश डाला है। रेशम बुआ दाई का काम करते हुए अपना जीवन बिताती है, इस उपन्यास में उसकी जीवन की समस्याओं को व्यक्त किया गया है। रेशम बुआ बहु आयामी व्यक्तित्ववाली महिला थी। अपना सम्पूर्ण जीवन को अपनों के सुख के लिए बिताती है और उसे उनसे सिर्फ दुख ही मिलता है। आठ संतानों को प्राप्त करने के बाद भी अपनी रोजी रोटी के लिए खुद कमाती थी। जो कुछ वह कमाती थी सब उसके बेटे हड़प लेते थे। बुढ़ापे में भी जब वह अपने दाई कार्य से प्राप्त पैसों को बेटी के लिए रखना चाहती थी। तो उसके बड़े बेटे उस पैसे को शराब पीने के लिए माँगता है तो

रेशम बुआ नहीं देती है। माँ बेटे में झगड़ा होने लगता है, "रेशम के पेट पर लात लगाकर उसने ज्यों जोंर से धकेला तो रेशम लड़खड़ाती खाट के पांये पर जा टिकी और फिर फर्श पर।"[10] बेटा तो पैसा लेकर चला गया लेकिन रेशम बुआ के मन को बहुत बड़ा सदमा लगता है और इसी कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। इस तरह उपन्यास में बूढ़े माँ के प्रति बच्चों द्वारा हो दुर्व्यवहार को अभिव्यक्त किया गया है।

गोविंद मिश्र का 'शाम की झिलमिल' उपन्यास में वृद्धावस्था में आनेवाली स्वतंत्र विचारधारा को अभिव्यक्त किया गया है। एक वृद्ध को उपन्यास के केंद्र में रखकर कथा की ओर पाठक को आकर्षित करता है। वृद्ध पत्नी की मृत्यु के बाद अकेला हो जाता है और वह उस अकेलेपन से दूर होना चाहता है। वह अपनों पर आश्रित नहीं होना चाहता है। वह इस बुढ़ापे में अनेक कार्यों में अपने को व्यस्त रखकर अकेलेपन से बाहर आना चाहता है लेकिन उससे नहीं हो पाता। वह पूर्वप्रेमिका, नुकीली, खुशी आदि स्त्रियों के साथ अपना संध्याकालीन समय को बिताना चाहता है लेकिन वह नहीं हो सकता है। नुकीली वृद्ध को अकेले रहने से मना करती है। उस समय वृद्ध उससे कहता है, "क्यों नहीं, मैं अब स्वतंत्र रहना चाहता हूँ।"[11] इस तरह उपन्यास में बुढ़ापे में अकेलेपन और स्वतंत्र जीवन की जिजीविषा को लेकर वृद्ध अपने जीवन की अंतिम दिनों को किस तरह बिताता है उसे बहुत सुंदर रूप से अभिव्यक्त किया गया है।

गीतांजलि श्री के 'रेत समाधि' उपन्यास वृद्धावस्था पर आधारित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में मध्यमवर्गीय जीवन को दर्शाया गया है। उपन्यास की मुख्य पात्र के रूप में 80 साल की एक वृद्धा माँ को दिखाया गया है, जो अपने पति के मृत्यु के बाद अकेली और गुमसुम होकर कमरे में बंद रहती है। वह बूढ़ी माँ दीवार से छिपे रहकर दीवार बनती जा रही थी। इसलिए परिवार के लोग माँ को सभी के साथ खुशी से जीने के लिए कहते है। माँ को उस कमरे से बाहर आने के लिए कहते है। लेकिन माँ कहती है मैं नहीं उठूँगी। माँ जब उठती है तो एक अलग जीवन शैली को अपनाकर जीने लगती है। उस माँ में एसी जिज्ञासा और महत्वाकांक्षा पैदा होती है कि वह सरहद तक पार करना तय करती है। लेखिका माँ और बेटी की विचारधारा के बारे में कहती है, "ये ही कारण रहा होगा कि माँ उस सरहद के पार निकलने की भी ठान सकी जब कि बेटी बस बुढ़ाऊ चिंता में ग्रसित हुई की बुरे फँसे।"[12] इस वाक्य से यह बात स्पष्ट होता है कि वह बूढ़ी माँ जो बिस्तर से उठकर आधुनिक सोच के साथ अपने जीवन को बिताती है। इसके विरुद्ध में जो उस माँ की बेटी थी वह बूढ़ी विचारों से ग्रस्त होते जा रही थी। यह उपन्यास नई आधुनिक सोच पर आधारित है।

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि इक्कीसवीं सदी के अनेक उपन्यासों में वृद्धों के जीवन की संवेदनाओं तथा विवशताओं को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया गया है तथा बुढ़ापे में आनेवाली शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक,सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को सूक्ष्म रूप से चित्रित किया गया है। परिवार के लोगों से उपेक्षित होकर अपना जीवनबिताना तथा नष्ट हो रही मानवीय मूल्यों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है, साथ ही अकेलेपन को दूर करके स्वतंत्र जीवन जीने की जिजीविषा को भी उपर्युक्त उपन्यासों में देख सकते हैं। युवा पीढ़ी और वृद्ध लोगों के बीच के अंतर को स्पष्ट करते हुए पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव को भी उपन्यासों में अभिव्यक्त किया गया है।

संदर्भ :

1. डॉ. शिवचन्द्र सिंह (संपादक), साहित्योतिहास में वृद्ध विमर्श, दिशा इंटेरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, ग्रेटर नोएडा, 2017, पृ. 27
2. डॉ. दिलीप मेहरा (संपादक), हिन्दी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श, उत्कर्ष पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2021, पृ. 29

3. कामेश्वर प्रसाद सिंह (संपादक), चौपाल में 'रेहन पर रग्घू' अरु पब्लिकेशन्स प्रा. लि., नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ. 27
4. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, सामयिक पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2019, पृ. 10
5. हृदयेश, चार दरवेश, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2013, पृ. 96
6. डॉ. रमेशचंद्र शाह, कथा सनातन, राजपाल एण्ड सन्स, संकरण 2016, पृ. 132
7. https://gyansindhuclasses.com
8. तरुण भटनागर, लौटती नहीं जो हँसी,आधार प्रकाशन पंचकूला (हरियाणा), संस्करण 2014, पृ. 60
9. डॉ. सूरज सिंह नेगी, रिश्तों की आँच, हेरिटेज पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2023, पृ. 115
10. टेकचन्द ,दाई, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 69
11. गोविन्द मिश्र, शाम की झिलमिल, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 16
12. गीतांजलि श्री, रेत समाधि, राजकमल पेपरबैक्स, दरियागंज नई दिल्ली, 2022, पृ. 9

❖❖❖

हिंदी भाषा का आधुनिकीकरण : भाषा और साहित्य में नवीन परिवर्तन

❍ मिथिलेश कुमार[1]

परिचय

हिंदी भाषा का विकास और आधुनिकीकरण भारतीय साहित्यिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण विषय है। इसकी जड़ें सदियों पुरानी हैं, जो कि भारतीय इतिहास के विविध युगों में विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक परिवर्तनों के साथ गहराई से जुड़ी हुई हैं। हिंदी का आधुनिकीकरण न केवल भाषाई संरचनाओं और शब्दावली में बदलाव से संबंधित है, बल्कि इसमें साहित्यिक अभिव्यक्ति और माध्यमों के विकास को भी शामिल किया जाता है। हिंदी भाषा का इतिहास भारतीय उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक और भाषाई विविधता के संदर्भ में अध्ययन किया जा सकता है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों से लेकर मध्ययुगीन साहित्य तक, हिंदी ने कई रूपों और बोलियों में अपनी पहचान बनाई। मुगल काल में, हिंदी ने उर्दू के साथ मिलकर खड़ी बोली का रूप लिया, जिसने बाद में आधुनिक हिंदी के विकास का आधार बनाया। ब्रिटिश राज के दौरान, हिंदी भाषा ने औपनिवेशिक शिक्षा नीतियों के प्रभाव में और विकास किया, जिससे इसमें और अधिक संवादात्मक और साहित्यिक गुण जुड़े। हिंदी भाषा के आधुनिकीकरण की आवश्यकता विभिन्न कारणों से उपजी है। प्रमुख कारणों में शामिल हैं ग्लोबलीकरण और तकनीकी प्रगति वैश्विक संपर्क और संचार के बढ़ते माध्यमों के कारण हिंदी भाषा में तकनीकी शब्दों का समावेश आवश्यक हो गया है। यह न केवल तकनीकी ज्ञान के प्रसार को सुगम बनाता है बल्कि यह भाषाई समृद्धि को भी बढ़ाता है। भारत में राजनीतिक परिवर्तनों और सामाजिक जागरूकता में वृद्धि ने हिंदी भाषा के प्रयोग और विकास को नए आयाम दिए हैं। यह भाषा न केवल संवाद का माध्यम है बल्कि यह राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन की भावनाओं को भी व्यक्त करती है। नए साहित्यिक रूपों और विधाओं की प्रवृत्ति ने हिंदी साहित्य में ताजगी और मौलिकता को बढ़ाया है। युवा लेखकों और कवियों द्वारा अपनाई गई नई शैलियों और विचारों ने हिंदी साहित्य को नया रूप दिया है, जिससे यह और अधिक समकालीन और वैश्विक दर्शकों के लिए आकर्षक बन गया है। इस प्रकार, हिंदी भाषा का आधुनिकीकरण न केवल इसे वैश्विक मंच पर प्रतिस्पर्धी बनाता है, बल्कि यह इसे एक जीवंत और विकसित होती हुई भाषाई और साहित्यिक परंपरा के रूप में भी स्थापित करता है।

मुख्य शब्द : साहित्यिक, नैतिकता, सहजता, विविधता, जटिलताओं, आधुनिकता।

---

1. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, सिंघानिया विश्वविद्यालय, झुंझुनू, राजस्थान

हिंदी भाषा में नवीन परिवर्तन

हिंदी भाषा ने समय के साथ अनेक परिवर्तन देखे हैं, जिनमें भाषाई ढांचा, तकनीकी प्रगति, और नई पीढ़ी के इस्तेमाल के तौर-तरीके शामिल हैं। ये बदलाव न केवल हिंदी की गतिशीलता को दर्शाते हैं बल्कि इसके विकास के नए आयाम भी प्रस्तुत करते हैं।

1. भाषाई ढांचे में बदलाव

हिंदी भाषा के व्याकरण, शब्दावली, और उच्चारण में समय के साथ अनेक नवीनताएँ आई हैं। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों का हिंदी में समावेश होने से शब्दावली में विस्तार हुआ है। इसके अलावा, डिजिटल युग में तकनीकी शब्दों की भरमार ने हिंदी के शब्द-संग्रह को और भी समृद्ध किया है। व्याकरणिक ढांचे में भी बदलाव आया है, जिससे भाषा अधिक संवादात्मक और पहुँच में आसान बनी है।

2. तकनीकी प्रगति और डिजिटल मीडिया का प्रभाव

तकनीकी प्रगति ने हिंदी के उपयोग और प्रसार में क्रांति ला दी है। इंटरनेट, सोशल मीडिया प्लेटफार्म्स, और विभिन्न ऐप्स के माध्यम से हिंदी सामग्री का निर्माण और संचार अभूतपूर्व गति से बढ़ रहा है। इसके अलावा, ऑनलाइन शिक्षा के उपकरणों में हिंदी भाषा का इस्तेमाल शैक्षिक सामग्री को अधिक सुलभ बना रहा है, जिससे दूर-दराज के छात्रों तक भी पहुंच संभव हो पा रही है।

3. नई पीढ़ी द्वारा भाषा का इस्तेमाल और उसमें आई विविधताएं

नई पीढ़ी हिंदी भाषा को अपने ढंग से अपना रही है। युवा वर्ग नई शैलियों और जुमलों के माध्यम से हिंदी का उपयोग कर रहे हैं, जिससे भाषा में नैतिकता और सहजता आ रही है। साथ ही, यह नई पीढ़ी भाषा को अधिक लचीला और व्यापक बना रही है, जिससे हिंदी वैश्विक स्तर पर भी अपनी पहचान बना रही है।

इन परिवर्तनों का समावेश हिंदी भाषा को न केवल समृद्ध बना रहा है बल्कि यह भाषाई विकास के नए आयाम भी प्रस्तुत कर रहा है, जो इसकी उपयोगिता और प्रासंगिकता को बढ़ाते हैं। ये परिवर्तन हिंदी को एक जीवंत और विकसित भाषा के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

हिंदी साहित्य में आधुनिकीकरण

हिंदी साहित्य ने आधुनिकीकरण के पथ पर चलते हुए कई नवाचारों को अपनाया है। यह विश्लेषण हिंदी साहित्य के विभिन्न आयामों- उपन्यास, कविता, नाटक, युवा लेखकों के प्रयोग और सामाजिक-राजनीतिक विषयों के प्रतिनिधित्व -को उजागर करेगा।

1. विभिन्न साहित्यिक विधाओं में नवाचार

हिंदी साहित्य में उपन्यास, कविता और नाटक जैसी पारंपरिक विधाओं में आधुनिकता की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। उपन्यासों में कहानी कहने की शैली में परिवर्तन आया है, जहाँ आधुनिक उपन्यासकार जटिल पात्रों और अनूठे प्लॉट संरचनाओं का उपयोग कर रहे हैं। कविता में भी अभिव्यक्ति के नए रूपों का आगमन हुआ है, जैसे कि मुक्त छंद का उपयोग और विषयवस्तु में वैविध्यता। नाटक में भी पारंपरिक मंचन शैलियों के अलावा आधुनिक तकनीकी प्रयोग और अभिनव प्रस्तुतिकरण तकनीकों को शामिल किया गया है।

2. युवा लेखकों द्वारा साहित्यिक प्रयोग और उनके थीम्स

युवा हिंदी लेखक विविध और बोल्ड थीम्स पर आधारित साहित्यिक प्रयोग कर रहे हैं। इन लेखकों ने लैंगिक समानता, जातीय विषमता, और आर्थिक विषमताओं जैसे समकालीन मुद्दों को अपने लेखन में स्थान दिया है। इसके अलावा, ग्लोबलाइजेशन, प्रवासी अनुभवों और पहचान की खोज जैसे विषयों पर केंद्रित कृतियाँ भी

लिखी जा रही हैं, जो वैश्विक दर्शकों के साथ संवाद स्थापित करती हैं।

3. आधुनिक साहित्य में सामाजिक और राजनीतिक विषयों का प्रतिनिधित्व

हिंदी आधुनिक साहित्य में सामाजिक और राजनीतिक विषयों का प्रतिनिधित्व बहुत ही गहराई से किया जा रहा है। लेखकों द्वारा भारतीय समाज की विविधता और जटिलताओं को उनके लेखन में उजागर किया गया है, जैसे कि जाति व्यवस्था, धार्मिक तनाव, और राजनीतिक अस्थिरता। इस तरह के विषयों का चित्रण न केवल पाठकों को जागरूक बनाता है, बल्कि साहित्य के माध्यम से समाज में व्यापक परिवर्तनों की उम्मीद भी जगाता है।

समग्रता में, हिंदी साहित्य का आधुनिकीकरण उसे अधिक गतिशील, विविधतापूर्ण, और समकालीन मुद्दों के प्रति सजग बना रहा है। यह न केवल भाषाई विकास को दर्शाता है, बल्कि यह भी साबित करता है कि साहित्य किस प्रकार से समाज के साथ कदम मिलाकर चल सकता है और उसमें बदलाव ला सकता है।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में चुनौतियाँ और समाधान

आधुनिकीकरण एक जटिल प्रक्रिया है जो समय के साथ सांस्कृतिक और भाषाई पहलुओं में अनेक परिवर्तन लाती है। हिंदी भाषा और साहित्य में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया विभिन्न चुनौतियों के साथ आई है जिनका समाधान ढूँढना आवश्यक है।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में आने वाली चुनौतियाँ

1. भाषाई स्वीकार्यता आधुनिकीकरण के साथ हिंदी भाषा में अन्य भाषाओं के शब्दों का समावेश बढ़ा है, जिससे पारंपरिक भाषाविदों और साहित्यकारों में असंतोष उत्पन्न हो सकता है। इसे भाषाई अशुद्धि के रूप में देखा जा सकता है जो पारंपरिक भाषा की पवित्रता को बाधित करता है।

2. प्रौद्योगिकी और पहुँच भारतीय समाज के सभी वर्गों तक नई प्रौद्योगिकीय तकनीकों की पहुँच न होना भी एक चुनौती है। यह डिजिटल विभाजन को जन्म देता है जिससे कि एक बड़ा वर्ग आधुनिक साधनों और सूचनाओं से वंचित रह जाता है।

3. सांस्कृतिक संरक्षण और नवाचार आधुनिकता की ओर बढ़ते हुए संस्कृति के मूल तत्वों को संरक्षित रखना और फिर भी नवाचारों को अपनाना एक कठिन संतुलन है।

भाषाई पवित्रता और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाने की कोशिशें

1. भाषाई नीतियों का विकास भाषा की पवित्रता और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाने के लिए नीति निर्माताओं और साहित्यिक समुदायों द्वारा भाषाई नीतियाँ विकसित की जा सकती हैं। इसमें नए शब्दों के प्रवेश के लिए दिशा-निर्देश शामिल हो सकते हैं जो कि भाषा की गुणवत्ता को सुनिश्चित करते हैं।

2. शिक्षा और प्रशिक्षण भाषाई पवित्रता को बनाए रखते हुए आधुनिकता को अपनाने के लिए शिक्षा प्रणाली में भाषाई प्रशिक्षण को शामिल करना महत्वपूर्ण है। यह युवा पीढ़ी को पारंपरिक और आधुनिक भाषाई मानदंडों के बीच संवाद करने में सक्षम बनाता है।

3. तकनीकी समाधान डिजिटल उपकरणों और सॉफ्टवेयर का उपयोग करते हुए भाषा की पवित्रता को बनाए रखने के लिए तकनीकी समाधान विकसित किए जा सकते हैं। इसमें भाषाई संपादन टूल्स, व्याकरण जांचकर्ता और शब्दकोश शामिल हैं जो आधुनिक शब्दों के सही उपयोग को सुनिश्चित करते हैं।

समग्रता में, आधुनिकीकरण की चुनौतियों का सामना करते हुए भी, भाषाई पवित्रता और आधुनिकता के बीच एक स्थायी संतुलन स्थापित करने के लिए विविध और नवाचारी उपायों की आवश्यकता है। इस प्रकार के प्रयास से हिंदी भाषा अपनी सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखते हुए आधुनिक विश्व के साथ तालमेल बिठा

सकती है।

निष्कर्ष:

हिंदी भाषा का आधुनिकीकरण एक गतिशील प्रक्रिया है जिसमें भाषाई, साहित्यिक और सामाजिक परिवर्तन शामिल हैं। यह परिवर्तन न केवल भाषा की संरचना में, बल्कि इसके उपयोग, प्रयोग और प्रसार में भी दिखाई देता है। आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया का मूल्यांकन करने पर हमें समाज पर इसके व्यापक प्रभावों का भी पता चलता है। हिंदी भाषा में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया कई आयामों में देखी जा सकती है। पहला आयाम व्याकरण, शब्दावली, और उच्चारण में नवीनताओं का समावेश है। दूसरे देशों की भाषाओं से शब्दों का आयात और तकनीकी प्रगति के कारण नए शब्दों की सृष्टि हिंदी को और भी समृद्ध बना रही है। इसके अलावा, साहित्यिक रूपों में भी बदलाव आया है, जहाँ उपन्यास, कविता, और नाटक जैसी विधाओं में नवाचार देखने को मिलते हैं। नई शैलियों और विषयों का प्रयोग ने साहित्य को नया आयाम दिया है। आधुनिक हिंदी साहित्य में सामाजिक और राजनीतिक विषयों का गहन चित्रण होता है। यह न केवल समाज के विभिन्न वर्गों की आवाज को मंच प्रदान करता है, बल्कि जटिल समाजिक मुद्दों को उठाकर व्यापक जनचेतना और बहस को भी बढ़ावा देता है। आधुनिक साहित्य ने जाति, लिंग, और धार्मिक पहचान के मुद्दों को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है, जिससे पाठकों की सोच में विस्तार हुआ है। हिंदी भाषा और साहित्य के भविष्य की दिशाएँ तकनीकी नवाचार और भाषाई पवित्रता के संतुलन में निहित हैं। डिजिटल मीडिया और इंटरनेट का उपयोग करते हुए भाषा के विस्तार और पहुँच को बढ़ाना, साथ ही नई पीढ़ी के लेखकों द्वारा साहित्यिक प्रयोगों को प्रोत्साहित करना, महत्वपूर्ण कदम हो सकते हैं। भाषाई और सांस्कृतिक विविधता को बनाए रखते हुए नवाचारों को अपनाना भविष्य के लिए आवश्यक होगा।

अंत में, हिंदी भाषा और साहित्य का आधुनिकीकरण न केवल भाषा के स्वरूप और साहित्य की प्रकृति को बदल रहा है, बल्कि यह समाज में व्यापक बदलाव का भी संकेत है। यह प्रक्रिया हमें नई संभावनाओं की ओर ले जा रही है, जिससे हिंदी भाषा और साहित्य वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान और स्थान मजबूत कर सके।

संदर्भ :

1. चतुर्वेदी, मंगलानंद. हिंदी भाषा का वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण, भारतीय भाषा परिषद, 2018.
2. मिश्रा, विजयानंद, हिंदी साहित्य में आधुनिक प्रवृत्तियाँ, साहित्य अकादेमी, 2017.
3. शर्मा, राधिका, नई शताब्दी में हिंदी नाटक की दिशाएं, रंगमंच पत्रिका, 2019.
4. कुमार, प्रमोद, डिजिटल युग में हिंदी भाषा, संस्कृति और तकनीकी प्रगति, डिजिटल भारत संस्थान, 2020.
5. अग्रवाल, सुनील, आधुनिक हिंदी कविता : नवाचार और प्रयोग, कविता कुंज प्रकाशन, 2016.
6. राय, अमृता, हिंदी साहित्य में युवा लेखकों का योगदान, युवा साहित्य पत्रिका, 2021.
7. पाठक, विनीत, सामाजिक विषयों का चित्रण आधुनिक हिंदी साहित्य में, समाज और साहित्य, 2018.
8. गुप्ता, नीलिमा, हिंदी मीडिया में तकनीकी विकास, मीडिया अध्ययन संस्थान, 2019.
9. वर्मा, सुरेश, आधुनिक हिंदी उपन्यास की नई धाराएँ, नवलेखन प्रकाशन, 2017.
10. दत्त, रजनी, भारतीय युवा और हिंदी साहित्य का भविष्य, युवा मंच पत्रिका, 2020.
11. मेहता, कृष्णा, हिंदी कविता में आधुनिकता और विदेशी प्रभाव, कविता विश्व प्रकाशन, 2018.
12. सिंह, अजय, डिजिटल युग में हिंदी नाटक और रंगमंच, रंगकर्मी संस्थान, 2021.

❖❖❖

सत्राची फाउंडेशन, पटना

शोध, शिक्षा एवं प्रकाशन की समाजसेवी संस्था

यह संस्था –

– साहित्यिक सम्मान देती है।

– शोध पत्रिकाएँ प्रकाशित करती है।

– पुस्तकें प्रकाशित करती है।

– सेमिनार आयोजित करती है।

– राजभाषा/राष्ट्रभाषा सेवियों को प्रोत्साहित करती है।

– शोधकर्ताओं को स्तरीय शोध के लिए प्रोत्साहित करती है।

– नेट/जे.आर.एफ. के अभ्यर्थियों को निःशुल्क मार्गदर्शन देती है।

– हिन्दी साहित्य के शिक्षार्थियों को प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए तैयार करती है।